जुलाई-दिसंबर 2012 वर्ष-44 अंक-3/4

प्रतियोगिता विशेषांक

मूल्य ₹20

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के सौजन्य से प्रकाशित

परमाणु बीम प्रतिदीप्ति वर्णक्रमदर्शी

वैज्ञानिक (त्रैमासिक) RNI. No.:18862/70
दिल्ली, नयी दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान व उ.प्र. के शिक्षा विभागों द्वारा स्कूलों व कॉलेजों के लिए स्वीकृत।

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता- 2013

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति (भा.प.अ. केंद्र) के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2013 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं। लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिए। लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है। मूल्यांकन में नवीनतम जानकारी के साथ-साथ अच्छे रेखाचित्रों/ फोटोग्राफों, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है। अत: चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काली रोशनाई (इंडिया इंक) से बनायें। फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा। इन्हें लेख के अंत में संलग्न करें। नीचे दिये गये पते पर कृपया दो टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रतियां (लगभग 3000-4000 शब्दों में) भेजें।

अंतिम तिथि : 31 दिसंबर 2013

पुरस्कार

प्रथम	-	2000/रु.
द्वितीय	-	1500/रु.
तृतीय	-	1000/रु.
प्रोत्साहन	-	500/रु.

पांच प्रोत्साहन पुरस्कार एवं इतर हिंदी भाषी प्रतियोगियों को दो विशेष पुरस्कार 500/-रु. (प्रत्येक) के दिये जायेंगे। अत: अपनी मातृभाषा का स्पष्ट उल्लेख करें।

विशेष: पुरस्कृत रचनाएं 'वैज्ञानिक' की संपत्ति होगी। 'वैज्ञानिक' पत्रिका से संबंधित पदाधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे। यदि रचना एक ही लेखक द्वारा लिखी गयी हो तो उचित होगा। ईमेल से भेजी गयी प्रविष्टियां प्रशंसनीय होंगी।

प्रविष्टियां भेजने का पता

– श्री विपुल सेन -

प्रतियोगिता संयोजक एवं व्यवस्थापक, 'वैज्ञानिक'
वैज्ञानिक अधिकारी, ई.डी. एण्ड सी.डी., पी. पी. परिसर,
भा.प.अ.केंद्र (B.A.R.C.), मुंबई- 400085, फोनः 022 25591154
vsen@barc.gov.in, vipkavi@gmail.com

वैज्ञानिक

वर्ष - 44 अंक - 3/4

जुलाई-दिसंबर 2012

♦ संपादन मंडल ♦

डॉ. जगदीश चंद्र व्यास

(संयोजक)

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी

श्री कुलवंत सिंह

श्री कवींद्र पाठक

श्री प्रवीण दुबे

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री विपुल सेन

(संयोजक)

श्री पी.एम.गांधी

श्री डी.एन.सिंह

श्री संजय गोस्वामी

श्री राजेश कुमार मिश्र

श्री राजेश कुमार

सदस्यता शुल्क

आजीवन

व्यक्तिगत	संस्थागत
400 रु.	1000 रू.

वार्षिक

व्यक्तिगत	संस्थागत
50 रु.	100 रू.

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085

सभी पद अवैतनिक हैं

अ नु क्र म णि का

मुख पृष्ठ परिचय -4

संपादकीय -5

लेख

1. पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के पदार्थ विज्ञान में अनुप्रयोग
   - डॉ.यशवंत नाईक -7
2. रचना से रचयिता बनने की ओर
   - *डॉ.विनीता सिंघल* -22
3. राई अरगट-अभिशाप या औषधि
   - डा.सविता गुप्ता -28
4. शैलों के आयु-निर्धारण में आयोनियम-थोरियम अनुपात की भूमिका
   - *डॉ.विजय कुमार उपाध्याय* -40
5. मानव प्राण घातक विदेशज पशुजन्य रोग और जैव सुरक्षा द्वारा बचाव
   - *डॉ.रमेश सोमवंशी* -44
6. भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में जल ग्रहण विकास कार्यक्रम के कारण सूखते पारंपरिक तालाब
   - *अशोक कुमार सिंह* -51
7. चंदा मामा क्यों छुप गये थे?
   - *प्रो.सुरेश चंद्र* -58
8. कीटनाशकों व पीड़कनाशकों से मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभाव
   - *राघव शैलेंद्र कुमार सिंह* -62
9. क्या रत्नागिरी की कालबादेवी खाड़ी की तलछट मानसून प्रभावित हैं?
   - *अनिल बी.वळसंगकर* -70

टिप्पणियां

1. शनि का रहस्यमय चंद्रमा, टाइटन
   -दीनानाथ सिंह -75
2. रतनजोत : बायोडीजल का उत्तम हल
   -संजय गोस्वामी -76

विज्ञान समाचार

1. पदार्थ विज्ञान के क्षेत्र में (साभार बी.ए.आर.सी.न्यूजलेटर) -77

शुभकामना

1. वैज्ञानिक के पूर्व संपादक केंद्र से ससम्मान सेवानिवृत्त -81

बाल किशोर पन्ना - 1 -82

बुद्धि कौशल्य - (3) -83

बुद्धि कौशल्य (2) के समाधान -84

मनोगत-पाठकों से -86

वैज्ञानिक स्मरण

1. आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय (D Sc), आधुनिक रसायन शास्त्र के भारतीय पुरोधा -87
2. सन् 2012 गणित वर्ष (डॉ. श्रीनिवास रामानुजन् की 125 वीं जन्म तिथि पर) -89

आवरण पृष्ठ का संक्षिप्त विवरण

उच्च आवर्धन प्रकाशीय वर्णक्रमदर्शी

(High Resolution optical Spectroscopy)

इस उपकरण का उपयोग आइसोटोप परिवर्तन या बदलाव (Isotopeshift) की मात्रा एवं अति सूक्ष्म मात्रा में उपलब्ध पदार्थ की आण्विक संरचना की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है. अस्थिर आइसोटोप (रडियोसक्रिय समस्थानिक) जो नाभिकीय रिएक्टर या अन्य स्रोत से प्राप्त किए जाते हैं, उनके नाभिकीय गुण जैसे घूर्णन, चुंबकीय गुण, फर्मी सतह, विद्युत चालकता आदि, तथा अन्य गुण जैसे परमाणु त्रिज्या, बंध, परमाण्विक बल इत्यादि, महत्वपूर्ण गुणों की जानकारी इस यंत्र द्वारा प्राप्त की जाती है.

उदाहरण के लिए U^{235} एवं U^{238} (युरेनियम के समस्थानिकों) के बीच परिवर्तन की सापेक्ष माप इसके द्वारा की जा सकती है. यह उपकरण U^{235} के उत्सर्जन या अवशोषण स्पेक्ट्रम को रिकार्ड कर सकता है. इन वर्णक्रमों (स्पेक्ट्रा) में बहुत सारी विशिष्ठ वर्णक्रम रेखाएं होती है, जिनकी उपस्थिति और सापेक्ष तीव्रता से समस्थानिक की सांद्रता एवं सापेक्ष मात्रा का निर्धारण किया जाता है. यह उपकरण इन विशिष्ठ उत्सर्जन या अवशोषण रेखाओं की ऊर्जा एवं उनकी तीव्रता के मापन से इस बदलाव की मात्रा का आकलन करता है. सॅम्पल (प्रतिदर्श) का वर्णक्रम लेने के पहले उसे लेजर द्वारा उत्तेजित (फोटोआयोनाइजेशन) कर यह वर्णक्रम प्राप्त किया जाता है. इस यंत्र के महत्वपूर्ण घटक है.

1. लेसर एवं एटॉमिक बीम प्रक्रिया पात्र
2. एटॉमिक बीम
3. मोनोक्रोमेटर
4. समतल अवतल लेंस (F=12.5mm)
5. एम्प्लीफायर (लॉक-इन स्थिति में)
6. बीम स्प्लिटर
7. डीजीटल स्टोरेज स्कॉप
8. डीपीएमएस पम्प्ड Ti लेंसर
9. तरंगदैर्ध्य मीटर
10. संगणक

यह प्रणाली वस्तुतः त्वरक चालित सिस्टम प्रोद्योगिकी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग है. जिसका उपयोग नाभिकीय रिएक्टरों के ईंधन से प्राप्त अपशिष्ठ पदार्थ में मौजूद रेडियो समस्थानिक (जैसे एक्टीनाइड्स आदि विखंडन पदार्थों) का पता करना तथा उनकी फोटॉनों के अवशोषण के आधार पर अतिसूक्ष्म आण्विक संरचना को ज्ञात करना है. यह पद्धति परमाणु वाष्प लेसर आइसोटॉप विलगाव (AVLIS) के सिद्धांत पर आधारित है. इस प्रणाली में लेसर के फोकसन द्वारा उच्च तीव्रता की पराबैंगनी किरणों से चुने हुए आयोनाइजेशन का उपयोग कर आइसोटोप को आयनित किया जा सकता है, अथवा परमाणुओं की अवशोषण रेखाओं के आधार पर आइसोटोप की संरचना को अतिसूक्ष्म अवस्था में देखा या मापा जा सकता है. इस उपकरण में प्रयुक्त लेजर एक स्पंदित डाई लेजर होता है. जिसकी सहायता से विशिष्ठ आवृत्तियों को आवर्धित कर उनकी तीव्रता बढ़ाई जाती है. पूर्ण आयनीकरण के बाद अति सूक्ष्म संरचना को उच्च आवर्धनयुक्त माइक्रोस्कॉप से देखा जाता है. यह युक्ति परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों में प्रयुक्त या निसरित विखंडन उत्पाद, ईंधन सामग्री की संरचना को जानने के लिए उपयोगी है. इसके अलावा रिएक्टर में उपयोगी हो ऐसी आइसोटोप प्रजातियों में होनेवाले परिवर्तन का आकलन इस प्रणाली से करके आइसोटॉप की गुणवत्ता को उत्कृष्ट किया जा सकता है.

-संपादक

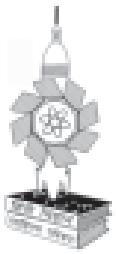

संपादकीय

बोहर मॉडल के सौ वर्ष

हमारे आसपास सभी दिशाओं में फैला संपूर्ण पदार्थ लगभग सौ रासायनिक तत्वों से बना है जो ठोस, द्रव, गैस या कभी-कभी आयनित (प्लाज्मा) अवस्था में देखा-परखा जा सकता है (अब तक हम परमाणु क्रमांक 118 तक अर्थात 118 के आसपास तत्वों से परिचित है, परंतु परमाणु क्रमांक 92 से आगे के सभी तत्व रेडियो सक्रिय होने से अस्थायी है), तत्व के सूक्ष्मतम कण को जो स्वतंत्र अवस्था में रह सकता है परमाणु कहते हैं. सामान्यतया पदार्थ आवेशरहित होते हैं और स्वतंत्र परमाणु भी आवेशरहित इकाइयां हैं. कुछ तत्वों (हीलियम, नियोन, आर्गन आदि) को छोड़कर अधिकतर परमाणु अति सक्रिय रचनाएं हैं और अक्सर दो या दो से अधिक परमाणु मिलकर अणुओं की रचना करते हैं. अधिकांश गैसीय पदार्थ स्वतंत्र अणुओं के मिश्रण, यौगिक या तत्व हैं, परंतु सूक्ष्म अवस्था में होने से अदृश्य है. इस अदृश्यता का कारण एक तो हमारी आँखों की सीमित प्रकाशीय संवेदनशीलता है, जो 400 से 700 नेनोमीटर (नेमी) तरंगदैर्ध्य वाले प्रकाश में ही वस्तुओं का अवलोकन करने की क्षमता रखती है. दूसरे, कोई भी प्रकाश अपनी तरंगदैर्ध्य से छोटी वस्तुओं को सामान्य अवस्था में विभेद (resolve) नहीं कर पाता है. इसलिए 400 नेमी से सूक्ष्म आकारवाले कण इस जगत में हमारे लिये अदृश्य से ही बने रहते हैं, और यही कारण है कि हवा में उपस्थित अणु-परमाणु जिनका आकार 0.1 नेमी के आसपास है, हमारे लिये अदृश्य है.

अणु-परमाणु का प्रारंभिक विवरण हजारों वर्ष पुराना है. भारत में आचार्य कणाद् के वैशेषिक दर्शन में इनका उल्लेख है, और अन्य प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में भी यदा-कदा इनका विवरण है, किन्तु सूक्ष्म जगत की सटीक जानकारी का विस्तार पिछली दो शताब्दियों के भीतर ही संभव हो सका. विशेषकर यांत्रिक ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने की सफल युक्ति अर्थात माइकेल फैराडे निर्मित डायनमों हाथ लगने के बाद इस जानकारी का तेजी से विस्तार हुआ और विद्युत ऊर्जा की सहायता से सूक्ष्म अवस्थागत पदार्थ को नियंत्रित तरीके से उच्च ऊर्जा पर उत्तेजित कर पाना संभव हुआ. इसके साथ ही अनेक समानान्तर दिशाओं में प्रारंभ हुए प्रयोगों से नई विधाओं का भी जन्म हुआ, जिसमें रेडियो प्रणाली का महत्वपूर्ण आविष्कार सम्मिलित है. अपने परिवर्द्धित एवं विकसित रूप में इस प्रणाली से अनेक प्रकार के संचार उपकरणों जैसे, रेडियो, टेलीफोन, मोबाइल, टीवी, रडार इत्यादि का निर्माण एवं उपयोग संभव हुआ है और वर्तमान में हम अनुभव कर रहे हैं कि संपूर्ण विश्व सिमट कर वैश्विक ग्राम का रूप लेता जा रहा है.

उच्च ऊर्जा की अवस्था में गैसों के परमाणु टूटने लगते हैं और आयनित अवस्था का निर्माण होता है. साधारण रुप में सामान्य पदार्थ विद्युतीय रूप से आवेश शून्य ही रहता है. कुछ पदार्थ (धातुएं या उनके मिश्रण) विद्युत संवाहक हैं, किन्तु अन्य पदार्थ और विशेषकर गैसीय पदार्थ साधारण अवस्था में विद्युत संवाहक नहीं होते. पहली बार प्रयोगशाला में उच्च ऊर्जा से गैसीय पदार्थ को ऊर्जित करने पर ज्ञात हुआ कि गैसों में भी विद्युत संवाहन संभव है. इसका सीधा अर्थ था कि गैसों के अणु/परमाणु भी विद्युत आवेशों से ही निर्मित रचनाएं हैं और इस प्रकार धारणा बनी कि संपूर्ण पदार्थ किसी न किसी प्रकार से विद्युत कणों से निर्मित है. विद्युत आवेश दो प्रकार के होते हैं, जिन्हे धन या ऋण से संबोधित करते हैं. गैसों में विद्युत संवाहन के प्रयोग के दौरान ही उनपर चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया और रोचक परिणाम सामने आए. स्पष्ट हुआ कि गैसों के कणों (अणु या परमाणु) में दोनों प्रकार के आवेश विद्यमान हैं, जो स्वयं कणवत स्वभाव के हैं. स्मरण रहे, गतिमय आवेश या विद्युत धारा पर बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र एक नया बल उत्पन्न करता है, जिसके प्रभाव से आवेश की गति की दिशा हर क्षण बदलती जाती है. अर्थात एक प्रकार का त्वरण निर्माण करता है. इन प्रभावों के अध्ययन से परमाणु (अणु) के धनात्मक व ऋणात्मक आवेशों की संहति का भी अंदाज लगा. ऋणात्मक आवेश के कण धनात्मक आवेश से विद्युत की मात्रा में तो समान थे, किन्तु संहतिगत तुलना में ऋणात्मक आवेश की संहति धनात्मक इकाई आवेश की संहति का 1840 वां भाग थी. ये मूल ऋणात्मक आवेश ही बाद में इलेक्ट्रॉनों से संबोधित किये गए. यह भी मान्यता बनी कि अणु, परमाणुओं की संहति उनके धनावेश से ही जुटती है (न्यूट्रॉनों की खोज तबतक नहीं हुई थी), क्योंकि इलेक्ट्रॉनों की संहति लगभग नगण्य सी है. इन सभी तथ्यों के आधार पर परमाणु का एक मॉडल (थामसन मॉडल) रखा गया, जिसमें यह दर्शाया गया कि सभी परमाणु ऋणावेश और धनावेश से बनी रचनाए हैं.

उन्हीं दिनों रेडियो सक्रिय पदार्थों की खोज में उच्च ऊर्जा विकिरणों एल्फा, बीटा, गामा से भी वैज्ञानिकों का परिचय हुआ (अब हम जानते हैं कि एल्फा विकिरण हीलियम तत्व के परमाणुओं के नाभिक हैं, बीटा विकिरण उच्च ऊर्जा युक्त इलेक्ट्रॉन तथा गामा विकिरण, उच्च ऊर्जा युक्त आवेश-रहित विद्युत चुम्बकीय किरणें हैं). रदरफोर्ड और उनके सहयोगी वैज्ञानिकों ने उच्च ऊर्जा युक्त एल्फा कणों के विकिरण पुंज से सोने की एक पतली झिल्लीनुमा फिल्म पर इन कणों की बौछार में पाया कि अधिकतर एल्फाकण तो मूल दिशा में (> 99%) चले जाते है, पर कुछ एल्फा कण (< 1 %), लगभग अन्य सभी दिशाओं में विक्षेपित होकर बिखर जाते है. इन परिणामों से स्पष्ट था कि परमाणुओं का आंतरिक भाग, लगभग खाली सा है और जो धनावेश है, वह इतना सधन और संहत है कि उच्च ऊर्जा के एल्फा कणों को भी सभी दिशाओं में विक्षेपित कर सकता है. इन प्रमाणों की सैद्धान्तिक व्याख्या करके रदरफोर्ड इस नतीजे पर पहुंचे कि परमाणु के भीतर का सारा धनावेश, एक अतिसूक्ष्म आयतन में केंद्रित है, जिसका व्यास परमाणु के व्यास का लगभग एक लाखवाँ भाग है. क्योंकि सामान्य परमाणु का व्यास 0.1 नेमी (10^{-10} मीटर) के आसपास होता है, अतः नाभिक का व्यास लगभग 10^{-15} मी. के समकक्ष होना चाहिए.

परमाणु के भीतर का भाग खाली क्यों है? या परमाणु का संपूर्ण धनावेश क्यों और कैसे एक घनीभूत किन्तु अति सूक्ष्म नाभिक में सिमटा रह सकता है, जबकि प्रोटॉनों का धनावेश एक दूसरे को प्रतिकर्षित करता है? इन प्रश्नों के उत्तर दे पाना तब एक कठिन समस्या थी, जो वैज्ञानिकों की तत्कालीन समझ से बाहर की बात थी. किंतु, यह स्पष्ट हो चुका था कि परमाणु की आन्तरिक संरचना विद्युतीय आवेशों की गतिमय अवस्था में ही संभव है.

इन विस्मयकारक परिणामों के आधार पर रदरफोर्ड ने परमाणु की आंतरिक संरचना का एक मॉडल सुझाया कि संभवतः इलेक्ट्रॉन गतियुक्त अवस्था में रहकर परमाणु के धनावेशित केंद्र या नाभिक के चारों ओर फैले हुए हैं, और धनावेशित केंद्र से उत्पन्न विद्युतीय आकर्षण बल को, अपनी गतिज ऊर्जा से उत्पन्न अपकेन्द्रीय बल द्वारा निरंतर सन्तुलन उसी प्रकार से करते हैं जैसे, सौर परिवार में उपस्थित ग्रह अपनी कक्षागत गतियों से उत्पन्न

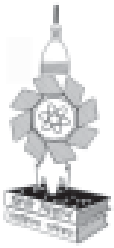

अपकेन्द्रीय बल द्वारा सूर्य के गुरुत्वीय आकर्षण बल को लगातार संतुलित रखते हुए कक्षागत बने रहते हैं. परंतु, प्रायोगिक तथ्यों पर आधारित रदरफोर्ड के इस परमाणु मॉडल में एक गंभीर दोष था. तत्कालीन वैज्ञानिक यह जानते थे कि विद्युत आवेश यदि त्वरण-युक्त गति में हों तो उनसे लगातार विद्युत चुंबकीय विकिरणों का उत्सर्जन होता रहता है. ये विकिरण आवेश रहित तो होते हैं, पर इनकी ऊर्जा का स्रोत विद्युत आवेश की गतिज ऊर्जा ही है. चूंकि कक्षागत गतियां सदैव त्वरणयुक्त ही होती है, अतः कक्षा में उपस्थित गतियुक्त इलेक्ट्रॉनों द्वारा भी उपरोक्त प्रकार का विकिरण सतत रूप से बाहर उत्सर्जित होते रहना चाहिए, जिसके परिणाम स्वरूप इलेक्ट्रॉनों की गति क्रमशः क्षय होती जाकर उन्हें नाभिक की ओर तबतक धकेलेगी, जबतक ये इलेक्ट्रॉन नाभिक में ही गिर न जाएं. लेकिन वास्तविक परमाणुओं में ऐसा नहीं होता और इलेक्ट्रॉन स्थायी रूप से अपनी कक्षाओं में बने रहते हैं. उपरोक्त कारण से रदरफोर्ड का परमाणु की आंतरिक संरचना का यह मॉडल, प्रायोगिक तथ्य पर आधारित होकर भी ठीक नहीं था.

इन प्रयोगों के कुछ वर्ष पूर्व ही उन्हीं दिनों पदार्थों से उत्सर्जित प्रकाश के सतत वर्णक्रम को सैद्धांतिक रूप से समझाने का सफल प्रयत्न मैक्स प्लांक नामक वैज्ञानिक ने एक नए ही स्थिरांक को सिद्धांत रूप में ग्रहीत करके किया था. सघन अवस्था के ऊष्ण पदार्थों ($T > 0$ K) से प्राप्त विकिरण में लगभग सभी लंबाई की तरंगदैर्ध्यों का प्रकाश भिन्न भिन्न मात्रा में उपस्थित रहता है जिसे सतत वर्णक्रम कहा जाता है. इस प्रकार के विकिरणों के वर्णक्रम में ऊर्जा की कितनी मात्रा, किसी विशेष तरंगदैर्ध्य (या आवृत्ति) पर उपलब्ध रहती है, इसका सैद्धान्तिक विवेचन तब तक ठीक से उपलब्ध नहीं था. इसलिए प्लांक का यह कार्य महत्वपूर्ण था.

अल्बर्ट आईन्स्टीन ने प्लांक द्वारा ग्रहीत सैद्धान्तिक स्थिरांक को आधारभूत स्थिरांक मानकर, प्रकाश विद्युत प्रभाव नामक प्रायोगिक तथ्य को सैद्धान्तिक रूप से स्पष्ट करने का सफल प्रयत्न किया. प्रकाश तरंगवत गति का व्यवहार दर्शाता है, यह पहले ही व्यतिकरण के प्रयोगों से सिद्ध हो चुका था. किन्तु, प्रकाश तरंगवत गति के साथ-साथ ऊर्जा के कणवत व्यवहार को भी दर्शाता है, यह दोहरा व्यवहार तत्कालीन औसत वैज्ञानिक समझ को रास नहीं आ रहा था (तब कणीय व्यवहार और तरंगवत व्यवहार दो अलग-अलग विषय माने जाते थे).

रदरफोर्ड मॉडल को उपरोक्त स्थिरांक (जिसे बाद में प्लांक स्थिरांक h, से संबोधित किया गया) के साथ जोड़कर देखने का सफल कार्य नील्स बोहर ने किया. बोहर को लगा कि उत्सर्जन या अवशोषण की क्रिया में भाग लेने वाला विकिरण (प्रकाश) जैसे प्लांक स्थिरांक से संबंधित है, वैसे ही परमाणु के भीतर उपस्थित इलेक्ट्रॉनों की कक्षागत ऊर्जाएं भी इस स्थिरांक h से किसी न किसी प्रकार संबंधित होनी चाहिए. क्योंकि मूलतः परमाणु में उपस्थित इलेक्ट्रॉनों की ऊर्जा में बदलाव द्वारा ही विकिरणों का आदान (अवशोषण) या प्रदान (उत्सर्जन) संभव होता है.

बोहर ने एक बार फिर से रदरफोर्ड मॉडल को नया रूप देकर प्रस्तुत किया और कहा कि इलेक्ट्रानों के व्यवहार में दो प्रकार की ऊर्जा कक्षाएं संभव हैं, जिन्हें स्थायी तथा अस्थायी ऊर्जा कक्षाएं कह सकते हैं. स्थायी ऊर्जा कक्षाओं की विशेषता यह है कि इनमें उपस्थित इलेक्ट्रॉन त्वरणयुक्त गति में रहकर भी ऊर्जा का सतत विकिरण नहीं कर सकते (स्मरण रहे, हर कक्षावत गति त्वरणयुक्त होती ही है). परमाणु से बंधे (अंदर) इलेक्ट्रॉन स्थायी ऊर्जा कक्षाओं में ही रहते हैं. जिन्हें बाहरी ऊर्जा से उत्तेजित करने पर ये अपनी स्थायी ऊर्जा कक्षाओं को छोड़कर उच्च किंतु चयनित ऊर्जा कक्षाओं में जा सकते हैं और इस प्रकार बाहरी विकिरण के वर्णक्रम से विशिष्ठ अथवा चयनित आवृत्तियों का अवशोषण परमाणु द्वारा होता है और इसी क्रिया की विपरीत क्रिया के द्वारा परमाणु में से ऊर्जा का उत्सर्जन भी चयनित आवृत्तियों पर ही होना चाहिए.

चयनित स्थायी ऊर्जा कक्षा बनाने का आधार बोहर ने प्लांक स्थिरांक h को माना. इसके अनुसार वे ही इलेक्ट्रॉन ऊर्जा कक्षाएं स्थायी हैं जिनमें इलेक्ट्रॉनों का कोणीय संवेग (या संवेग-आधूर्ण) प्लांक स्थिरांक या इसके पूर्ण संख्या गुणक के समान है. अन्य सभी इलेक्ट्रॉन ऊर्जा कक्षाएं पूर्ण रूप से अस्थायी होंगी.

बोहर का परमाणु मॉडल एक सैद्धान्तिक विधा थी जिसमें प्लांक स्थिरांक की महत्वपूर्ण भूमिका थी. विशेष बात यह भी थी कि इस मॉडल से हाइड्रोजन परमाणु के रेखीय वर्णक्रम को सीधे-सीधे समझाया जा सकता था. साथ ही साथ पूर्व में प्राप्त इसी वर्णक्रम को दर्शाने वाले सूत्र में उपस्थित रिडबर्ग स्थिरांक का मान, अन्य मूल राशियों के द्वारा किस प्रकार संबंधित हैं इसका प्रत्यक्ष आधार भी इस मॉडल में उपस्थित था. बोहर की इस सैद्धान्तिक व्याख्या से प्राप्त रिडबर्ग स्थिरांक का मान, वर्णक्रमदर्शी प्रयोगों से प्राप्त रिडबर्ग स्थिरांक के मान के एकदम समान था जो एक प्रकार से बोहर मॉडल की विश्वसनीयता का सीधा प्रमाण था.

इस प्रकार आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व परमाणु की आंतरिक संरचना को समझने का एक सफल प्रयास बोहर द्वारा उनके मॉडल के रूप में आया. इसकी विशेषता यह भी थी कि प्लांक स्थिरांक h, जो अबतक प्रकाशीय विकिरणों की समझ का महत्वपूर्ण भाग था, अब परमाणु के स्थायित्व को समझने का भी उतना ही महत्वपूर्ण हिस्सा बनकर सार्वभौम प्राकृतिक स्थिरांक के रूप में प्रकट हुआ था.

यह अलग बात है कि बोहर का यह सरल मॉडल अन्य तत्वों के परमाणुओं या हाइड्रोजन परमाणु के पूरे वर्णक्रम (सूक्ष्म भाग सहित) को भी पूरी तरह नहीं समझा सकता था. किन्तु इस मॉडल से एक नए युग और नई सोच की धारा को स्थापित करने की दिशा प्राप्त हुई जिसे आज हम क्वांटम यांत्रिकी कहते हैं. तत्कालीन प्रतिष्ठित विज्ञान वेत्ताओं के लिये यह नई समझ कठिनाईयां उत्पन्न कर रही थी क्योंकि यह भौतिक शास्त्र की तत्कालीन प्रारंभिक मान्यताओं को ही चुनौती देने वाली समझ थी. वर्तमान में हम जानते हैं कि सूक्ष्म जगत की व्याख्या के लिये क्वांटम यांत्रिकी एवं इसकी अनेक विधाओं का ज्ञान अपरिहार्य रूप से आवश्यक है. सूक्ष्म रूप में पदार्थ या ऊर्जा दोनों ही कण स्वभाव एवं तरंग गति के प्रभावों को दर्शाते हैं, अर्थात परमाणु कणवत तो है ही, वे तरंगीय गुणों को भी दर्शाते हैं. इसी प्रकार से ऊर्जा भी दोनों प्रकार (कण / तरंग) के गुण दर्शाती है. प्लांक स्थिरांक एक सार्वभौम प्राकृतिक स्थिरांक है जिसका मान छोटा तो है पर शून्य से हटकर है और यह परमाणु के स्थायित्व का मूल कारण भी है. निर्वात में प्रकाश की गति भी इसी प्रकार का एक स्थिरांक है. विद्युत कणों का आवेश भी इसी प्रकार का एक प्राकृतिक स्थिरांक है. इन सब विषयों की विशद समझ ने नये विज्ञान को जन्म दिया है जिससे वर्तमान प्रौद्योगिकी में एक तूफानी तेजी देखने को मिली है. विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जिनके उपयोग से हर प्रकार के क्षेत्रों में लाभ मिले है, मापन के यंत्र, गणक, संगणक, लेसर, पदार्थ अध्ययन एवं उपकरण निर्माण, औषधि निर्माण, पदार्थ निर्माण, आवागमन के साधनों का स्वचालित यंत्रों से संचालन, बीमारियों के निदान एवं चिकित्सा में काम आने वाले यंत्र एवं उपकरण, इत्यादि, अनेक विधाओं में आयी प्रगति के पीछे मूलरूप से हमारी पिछली शताब्दी से निकली भौतिक विज्ञान की समझ का यह नया ताना बाना ही था. इस ताने बाने का निर्माण किसी एक व्यक्ति के द्वारा तो नहीं हुआ किन्तु आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व दर्शाया गया, बोहर मॉडल निसंदेह रूप से इस ताने बाने को पुष्ट करने वाली प्रथम कड़ियों में से एक विशिष्ट कड़ी के रूप में देखा जाता रहेगा.

विज्ञान नित नयी खोजों और जानकारी को बढ़ाते जाने की उत्तम विधा है, जिसमें प्रकृति को समझने के कार्य चलते ही रहेंगे किन्तु सौ वर्ष पूर्व का बोहर मॉडल विज्ञान के इतिहास में एक दिशा परिवर्तक संकेत की तरह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा.

-डॉ. जगदीश चंद्र व्यास

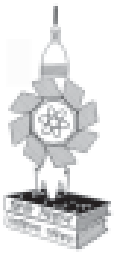

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रथम पुरस्कार प्राप्त

पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के पदार्थ विज्ञान में अनुप्रयोग

- डॉ.यशवंत नाईक -
पदार्थ विकास प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई-400 085

इस लेख में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के उपयोग से पदार्थ विज्ञान में जुड़े विभिन्न प्रयोगों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी दी गयी है. पोजीट्रान विलोपन की क्रिया को समझाते हुए पोजीट्रान के विभिन्न पदार्थों में जीवनकाल, 2γ तथा 3γ विलोपन क्रियाओं की प्रायिकता तथा विलोपन से जुड़े अन्य मूल अभिलक्षणों के अध्ययन पर विवेचना की गयी है. इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि पोजीट्रान विलोपन के प्रयोगों से पदार्थों की संरचना में होनेवाले परिवर्तनों को जानकर विभिन्न पदार्थों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी कैसे प्राप्त की जा सकती है. प्रयोगों के लिए आवश्यक उपकरणों का वर्णन करते हुए वर्तमान में उपलब्ध अनु-प्रयुक्त विधियों के सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है. लेख में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि से जुड़े हुए विभिन्न पहलुओं पर जानकारी के साथ पदार्थ विज्ञान से जुड़े अन्य अध्ययनों में प्रयुक्त प्रायोगिक विधियों तथा सिद्धांतों के बारे में भी जानकारी दी गई है.

पोजीट्रान विलोपन प्राविधि पदार्थों की संरचना व उन पर उच्च उर्जा विकिरण के प्रभावों से उत्पन्न परिवर्तनों के अध्ययन के लिए एक नई विधि के रुप में उभर रही है. पोजीट्रानों का विभिन्न पदार्थों में जीवनकाल, 2γ तथा 3γ विलोपन क्रियाओं की प्रायिकता तथा विलोपन से जुड़े अन्य मूल अभिलक्षणों द्वारा पदार्थों की संरचना का आंकलन किया जाता हैं. अनुसंधान कार्यों में सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर (यानि अणु तथा परमाणु) पर होनेवाले परिवर्तनों का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है, और अनेक नाभिकीय विधियां इन कार्यों के लिए अत्यंत उपयोगी रही है. ऐसी ही एक विधि जिसे हम पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के नाम से जानते हैं, इस क्षेत्र के लिए अत्यंत उपयोगी साबित हो रही है.

इस विधि में पोजीट्रानों का, पदार्थ में ही उपस्थित इलेक्ट्रॉनों के साथ विलोपन के दौरान उत्सर्जित होनेवाले उच्च ऊर्जा विकिरण (फोटानों) का स्पेक्ट्रोस्कोपिक अध्ययन किया जाता है. पदार्थ में बिताये गये समय तथा पदार्थ में विकिरण के विचरण की गहराई के साथ किये जाने वाले ये अध्ययन निम्न बातों के कारण पदार्थ विज्ञान में अत्यंत उपयोगी साबित हुए हैं,

1) पोजीट्रान स्रोत तथा उनके उच्च ऊर्जा पुंज नलिका की उपलब्धता के कारण पदार्थों में पोजीट्रान विलोपन का गहराई के साथ अध्ययन.

2) पोजीट्रान का ठोस पदाथों में स्थित कम घनत्व वाले क्षेत्र जैसे, बिंदु दोष व अन्य रिक्त स्थानों में स्थिर होने का विशेष गुण.

3) त्वरित γ तथा विलोपन γ विकिरण फोटान के उत्सर्जन

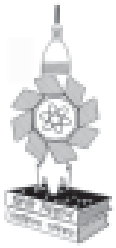

के संसूचक तथा सूक्ष्म समय अंतराल मापन के लिए उपयुक्त उपकरणों की उपलब्धता.

आज पोजीट्रान विलोपन का उपयोग आयनिक क्रिस्टल, अर्धचालक धातुकी तथा कुछ अन्य संघनित पदार्थों से जुड़े हुए अनुसंधान कार्यों में विशेष रूप से किया जा रहा है.

1. पोजीट्रान उत्पादन तथा पोजीट्रान विलोपन

जैसा कि हम जानते हैं, प्रकाश विद्युत प्रभाव, ब्रेमस्ट्रहलंग उत्सर्जन, या काम्पटन प्रभाव के दौरान फोटान (प्रकाशीय कण) तथा इलेक्ट्रॉन e^- के बीच ऊर्जा का हस्तांतरण होता है. पोजीट्रान उत्सर्जन के दौरान फोटान की गतिज ऊर्जा का कणों के द्रव्यमान में परिवर्तन होता है और नए कणों की उत्पत्ति होती है. स्थिर अवस्था में इलेक्ट्रॉन e^- का द्रव्यमान $m_o = 0.51(MeV)/c^2$ के बराबर होता है (स्मरण रहे, $1\ MeV/c^2 = 1.78 \times 10^{-30}$ कि.ग्रा.).

हम यह भी जानते है कि इलेक्ट्रॉन अन्य मूल कणों में सबसे हल्का होता है. चूंकि इलेक्ट्रॉन पर ऋण विद्युत आवेश होता है अतः प्रकृति में एक धनावेशित कण भी होना चाहिए. पोजीट्रान की सैद्धांतिक खोज का श्रेय पी. ए. एम. डिराक को जाता है. जिन्हें सन 1933 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया. इस धनावेशित कण के ब्रह्माण्डीय विकिरणों में विद्यमान होने के प्रमाण सर्वप्रथम सी.डी.एंडरसन ने सन 1932 में दिये, जिसके लिए सन 1936 में उन्हें भी नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया. पोजीट्रान एक धनावेशित कण होता है, जिसका द्रव्यमान तथा आवेश, इलेक्ट्रॉनों के द्रव्यमान तथा आवेश के बराबर ही होता है. लेकिन आवेश का प्रकार धन होता है. इसे हम (e^+) से दर्शाते है. उच्च ऊर्जा विकिरण (प्रकाशीय फोटान) जब पदार्थ पर टकराते हैं तो पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन उत्पन्न होते हैं. इस क्रिया के दौरान आपतित विकिरण फोटान की संपूर्ण ऊर्जा पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन को स्थानांतरित हो जाती है.

γ (फोटान की ऊर्जा) = $e^+ + e^-$ + (कणोंकी गतिज ऊर्जा)

इस प्रकार विकिरण फोटान की पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन में परिवर्तन होने की क्रिया, नाभिक के तीव्र विद्युत चुंबकीय क्षेत्र के सान्निध्य से होती है. इस विलोपन के दौरान नाभिक भी विपरीत दिशा में ऊर्जा की सूक्ष्म मात्रा के साथ प्रक्षिप्त होता है, किंतु उसकी संहति अधिक होती है.

पोजीट्रान उत्सर्जन के दौरान होनेवाले ऊर्जा हस्तांतरण को चित्र-1 अ तथा ब की सहायता से समझा जा सकता है. इस प्रकार का पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन युगल उत्पादन आपतित विकिरण फोटान की ऊर्जा 1.02 MeV से ज्यादा होने पर ही संभव है. पोजीट्रान विलोपन की प्रायिकता आपतित फोटान की ऊर्जा तथा पदार्थ की परमाणु संख्या Z के साथ बढ़ती है क्योंकि Z के बढ़ने से नाभिक के चारों ओर फैले विद्युत चुंबकीय बलों की तीव्रता बढ़ जाती है. यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या इस प्रकार के फोटान से पोजीट्रॉन व इलेक्ट्रॉन उत्पन्न करने के दौरान होने वाली ऊर्जा हस्तांतरण,पार्थक्य अवस्था में भी संभव है या नहीं? निश्चित ही हम कहेंगे कि नहीं, क्योंकि उपरोक्त क्रिया को पूरा होने के लिए अन्य किसी नाभिक का होना आवश्यक है.

यह ठीक से समझने के लिए जैसा कि चित्र-1 अ में दर्शाया गया है, माना कि पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन की ऊर्जा तथा संवेग क्रमशः E_+ , p_+ तथा E_-, p_- है, h प्लांक स्थिरांक, v प्रकाश की आवृत्ति और c प्रकाश का वेग है. अतः ऊर्जा संरक्षण के नियमों के अनुसार,

फोटोन ऊर्जा $hv = E_+ + E_-$ .....(1)

जबकि संवेग के संरक्षण नियम से यदि फोटोन के संवेग का x अक्षीय घटक P_x है तो

$P_x = hv/c = p_+ \cos\theta_+ + p_- \cos\theta_-$ .....(2)

तथा फोटोन के संवेग का y अक्षीय घटक P_y है, तो

$P_y = 0 = p_+ \sin\theta_+ - p_- \sin\theta_-$ ..... (3)

समीकरण (2) से हम लिख सकते है

$hv = \{ p_+ \cos\theta_+ + p_- \cos\theta_- \}. c$ ..... (4)

हम जानते हैं कि सभी प्रकार के $\cos\theta$ का मान < 1 ही होता है. अतः समीकरण (4) के दाहिनी ओर का अधिकतम मान $(p_+ + p_-)\, c$ के बराबर होगा. अर्थात

$hv_{max} = c\,(p_+ + p_-)$ ..... (5)

दूसरी ओर सापेक्षता सिद्धांत से हम जानते हैं कि किसी कण जैसे पोजीट्रान की पूरी ऊर्जा का मान

$E = (p^2c^2 + m_0^2c^4)^{1/2}$ ...(6)

यहां m_o स्थिर अवस्था में पोजीट्रान या इलेक्ट्रॉन की

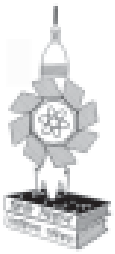

संहति है, जबकि c प्रकाश की गति है.

अतः $E_+ = (p^2_+c^2 + m_0^2c^4)^{½}$

तथा $E_- = (p^2_-c^2 + m_0^2c^4)^{½}$

इसलिए फोटान की ऊर्जा हस्तांतरण के लिये आवश्यक शर्त होगी, समीकरण (1) व (6) से

$$hv = (p^2_+c^2 + m_0^2c^4)^{½} + (p^2_- c^2 + m_0^2c^4)^{½} \quad (7)$$

क्योंकि इलेक्ट्रॉन या पोजीट्रान का द्रव्यमान शून्य नहीं है. अतः समीकरण (7) के फोटान की ऊर्जा, समीकरण (4) के फोटान की अधिकतम ऊर्जा अर्थात समीकरण (5) की ऊर्जा से भी ज्यादा है. स्पष्ट है कि ये दोनों समीकरण (4) और (7) एक साथ समान होना असंभव है. अतः पार्थक्य अवस्था में पोजीट्रान उत्सर्जन संभव नहीं होता.

फिर यह क्रिया कब संभव होगी?

जैसा कि चित्र-1 ब में दर्शाया गया है, नाभिक के विद्युत चुंबकीय प्रभाव में आने पर फोटान की ऊर्जा से पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन का सृजन संभव होता है, क्योंकि इस स्थिति में नाभिक, फोटान के संवेग का एक बड़ा भाग लेकर प्रक्षिप्त होता है जिसके कारण उपरोक्त क्रिया संभव हो जाती है.

पोजीट्रान प्राकृतिक स्रोतों से भी प्राप्त होते हैं. कुछ रेडियोधर्मी पदार्थ पोजीट्रान भी उत्सर्जित करते हैं. पोजीट्रान माध्यम से गुजरते वक्त अपनी ऊर्जा, पदार्थ के परमाणुओं को तीव्र गति से स्थानांतरित करते हैं तथा अंत में इलेक्ट्रॉन से मिलकर विलोपित होते हैं. पोजीट्रान की गति अत्यंत धीमी होने पर वे इलेक्ट्रॉन की ओर आकर्षित होते हैं तथा सामान्य परमाणु के समान एक युगल (एडक्ट) बनाते हैं, जिसे पोजिट्रोनियम कहते हैं. पोजिट्रोनियम में पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन एक दूसरे के चारों ओर एक गोलाकार दिशा में चक्कर लगाते रहते हैं. जैसा कि चित्र-2अ में दिखाया गया है. कुछ समय बाद (लगभग 10^{-10} सेकंड में), ये युगल (0.51 MeV ऊर्जा के दो ϒ विकिरण फोटान, एक साथ विपरीत दिशा में उत्सर्जित कर) विलुप्त होते हैं. इन ϒ फोटोनो का मापन पोजीट्रान के विलोपन का स्पष्ट संकेत हैं. इसी तथ्य का उपयोग पोजीट्रान उत्सर्जन टोमोग्राफी में किया जाता है, जो कि चिकित्सा में प्रयुक्त होनेवाली एक महत्वपूर्ण नैदानिक विधि है.

2. पोजीट्रान विलोपन प्राविधि का सिद्धांत

हम जानते हैं कि पोजीट्रान, इलेक्ट्रॉन का प्रतिकण है. अतः उनके बीच होनेवाली विद्युत चुंबकीय अन्योन्य क्रिया के कारण ही पोजीट्रान विलोपन होता है, इस क्रिया के दौरान e^+ e^- युगल (एडक्ट) की संपूर्ण ऊर्जा विकिरण फोटान की क्वांटम परिघटना ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है. इस क्रिया की कई संभावनाएं है, किंतु इनमें द्वि-फोटान उत्सर्जन की प्रायिकता सबसे ज्यादा होती है, जिसके अनुसार

$$e^+ + e^- \rightarrow \gamma_1 + \gamma_2 \quad (8)$$

उपरोक्त क्रिया में संवेग तथा ऊर्जा संरक्षण नियमों का संतुलन आवश्यक होता है, जैसा कि चित्र-3 में दर्शाया गया है. चित्र-3 में यह बताया गया है कि जब हम इस विलोपन क्रिया को संहति केंद्रित फ्रेम में देखते हैं तो हम पाते हैं कि इस विधि से विलोपन के दौरान उत्सर्जित दोनों फोटानों की ऊर्जा एक समान अर्थात 0.51 MeV होती है, जो कि एक स्थिर इलेक्ट्रॉन की संहतिगत ऊर्जा के बराबर है. ये दोनों फोटान एक दूसरे के विपरीत दिशा में उत्सर्जित होते हैं. किंतु यदि प्रयोगशाला निर्देशक अक्ष फ्रेम में देखने पर पोजीट्रानियम गतिज अवस्था में होता है तो उत्सर्जित दोनों फोटान की ऊर्जा E_0 के सापेक्ष में लगभग $\triangle E = +cp_\perp/2$ मात्रा से विस्थापित होती है तथा फोटानों की उत्सर्जन की दिशा का कोण भी $\triangle\theta = p_{||} / m_oc$ से विस्थापित होता है. यहां $p_{||}$ तथा $p_\perp$ पोजीट्रानियम संवेग p, के अनुदैर्ध्य तथा अनुप्रस्थ घटक है. उपरोक्त संतुलन को पाते वक्त अ-सापेक्षिकीय सन्निकटन नियोजित किया गया है. इस संतुलन में विलोपन क्रिया को हम विलोपन क्रिया की गति (दर) λ या पोजीट्रान की आयु ι $(= \lambda^{-1})$ से अभिलक्षित करते हैं. यह देखा गया है कि

$\lambda \propto n_e$

जहां n_e पदार्थ में पोजीट्रान के चारों ओर विद्यमान इलेक्ट्रॉनों का संख्या घनत्व है. तथा λ विलोपन की दर है. जिसका मान है,

$$\lambda = \pi r^2 c.n_e \quad (9)$$

यहां, r इलेक्ट्रॉन की परंपरागत कणीय त्रिज्या है.

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि $\triangle E$ तथा $\triangle\theta$ के परिमाण का संभावित अनुमान लगाने के लिए हमें n_e तथा p के सही मान का उपयोग करना चाहिये. चालक पदार्थों में मुक्त इलेक्ट्रॉनों का घनत्व लगभग $10^{29}.m^{-3}$ होता है, जबकि किसी पदार्थ के आंतरिक इलेक्ट्रॉन का संवेग

सामान्यतः $h/2r_a$ के बराबर होता है. यहां r_a परमाणु की त्रिज्या तथा h प्लांक स्थिरांक है. इन नियतांकों का उपयोग करने पर हम पाते हैं कि किसी चालक पदार्थ में पोजीट्रान विलोपन क्रिया के दौरान $\triangle E$ तथा $\triangle\theta$ का संभावित परिमाण निकाला जा सकता है, जिन्हें तालिका-1 में दिया गया है.

तालिका -1 : किसी विद्युत चालक पदार्थ में पोजीट्रान विलोपन क्रिया के दौरान $\triangle E$ तथा $\triangle\theta$ के संभावित परिमाण

$1/\lambda = \iota$	600 ps
फोटान का कोणीय सह संबंध = θ	कुछ मिलिरेड
विलोपन फोटान की डापलर शिफ्ट = $\triangle E$	लगभग 1keV

3. पोजीट्रान विलोपन प्राविधि में प्रयुक्त होने वाले कुछ कृत्रिम रेडियो समस्थानिक

^{22}Na तथा ^{26}Al पोजीट्रान विलोपन स्पेट्रोस्कोपी के लिए महत्वपूर्ण समस्थानिक है, जो बड़ी मात्रा में पोजीट्रान उत्सर्जित कर क्रमशः ^{22}Ne तथा ^{26}Mg के रुप में स्थिरता प्राप्त करते हैं, इन क्रियाओं के प्रारुप क्रमशः चित्र 3 अ तथा 3 ब में दिये गये है. इस प्रकार के कृत्रिम रेडियो समस्थानिक से प्राप्त होनेवाले पोजीट्रान कणों की ऊर्जा 0.1 MeV से लेकर 0.54 MeV तक होती है. पोजीट्रान पुंज की तीव्रता इस पुंज के द्वारा पदार्थ में तय की गयी दूरी x के चरघातांकी अनुपात में गिरती है, जैसा कि समीकरण (10) से स्पष्ट होता है.

$$P(z) = e^{-x/x_o} \qquad (10)$$

यहां $e \cong 2.73...$ चरघातांक आधार है, तथा x_O माध्यम का एक स्थिरांक है. जिसकी मात्रा विभिन्न पदार्थों में 10 μm से लेकर 100 μm के बीच होती है. इस प्रकार के कृत्रिम रेडियो समस्थानिक पोजीट्रान स्रोत पदार्थों के गुणधर्मों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण संसूचक होते हैं. पोजीट्रान विलोपन स्पेक्ट्रोस्कोपी में ^{22}Na का सबसे ज्यादा उपयोग किया जाता है. ^{22}Na के नाभिकीय उत्सर्जन क्रियाविधि को चित्र-3 अ में दिया गया है, उसी प्रकार से एक अन्य पोजीट्रान उत्सर्जित करने वाले समस्थानिक ^{26}Al की उत्सर्जन क्रियाविधि को चित्र -3 ब में दिया गया है. जैसा कि चित्र-3 अ से स्पष्ट होता है कि ^{22}Na द्वारा उत्सर्जित पोजीट्रान की अधिकतम ऊर्जा 545 keV होती है. इस स्रोत का एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि पोजीट्रान के साथ इस स्रोत से 1.274 MeV का एक γ विकिरण फोटान भी उत्सर्जित होता है. जिसे आसानी से संसूचित कर लिया जाता है. यह संसूचन पोजीट्रान के जन्म समय और स्रोत का द्योतक है. पदार्थ में विचरण के दौरान समय के साथ पोजीट्रान की ऊर्जा का क्षीणन होता है तथा अंत में पदार्थ के भीतर उपस्थित इलेक्ट्रॉन के साथ विलोपन क्रिया होती है, जिसके दौरान 0.51 MeV के दो फोटान, विपरीत दिशा में उत्सर्जित होते हैं जिन्हें हम विलोपन फोटान कहते हैं. इन फोटानों को आसानी से संसूचित किया जा सकता है. 1.274 MeV के फोटान तथा 0.51 MeV की संसूचक दस्तकों (घटना समय) के बीच बीता काल, पदार्थ की इलेक्ट्रॉनिक संरचना पर निर्भर करता है. पदार्थ में पोजीट्रान के इस विचरण काल को पोजीट्रान का जीवनकाल कहते हैं. जिसका मापन पोजीट्रान विलोपन स्पेक्ट्रोस्कोपी का सिद्धांत है. कम ऊर्जा होने के कारण ^{22}Na से प्राप्त इन पोजीट्रान कणों की भेदन क्षमता कम होती है. आज त्वरकों के उपयोग से इस प्रकार के स्रोतों से प्राप्त पोजीट्रान कणों की ऊर्जा कई गुना बढ़ाई जा सकती है ताकि उनकी भेदन क्षमता का विस्तार हो व पदार्थ की आंतरिक परतों का परीक्षण भी संभव हो सके. इस प्रकार के कई त्वरक आज कार्यरत हैं जिनके उपयोग से पोजीट्रान की ऊर्जा आवश्यकतानुसार घटाई अथवा बढ़ाई जा सकती है. इसीलिए पोजीट्रान विलोपन प्राविधि पदार्थों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण विधि के रूप में अपनायी जा रही है. ^{22}Na से प्राप्त 10 से 100 keV ऊर्जा के इन पोजीट्रान कणों के द्वारा किसी पदार्थ में तय की गई दूरी 1 नेमी (nm) से लेकर कुछ माइक्रोमीटर (μm) तक हो सकती है जो कि त्वरक में प्रयुक्त ऊर्जा (विभव) पर निर्भर करेगी.

पदार्थ में विलोपन के दौरान, पोजीट्रान कई अभिक्रियाओं को जन्म देते हैं, जिसके कारण पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन के संयोग से होने वाली विलोपन क्रिया प्रभावित होती है. जब ऐसे पोजीट्रान पदार्थ से गुजरते हैं तो उनकी ऊर्जा का क्षीणन तीव्र गति से होता है. पोजीट्रान की ऊर्जा अधिक होने पर वे पदार्थ में आयन उत्पन्न करते हैं, जिससे पदार्थ के अणुओं के आंतरिक इलेक्ट्रॉन निकलने के कारण वे क्ष-किरणें भी उत्पन्न करते हैं, ऊर्जा कम होने पर पोजीट्रान की शेष ऊर्जा का क्षीणन पदार्थ में इलेक्ट्रॉन व रिक्तता उत्पन्न करने से होती है. पोजीट्रान की ऊर्जा एक इलेक्ट्रॉनवोल्ट (eV) से कम होने पर फोनान (ध्वनि कणिकायें) प्रकिर्णन, प्रमुख

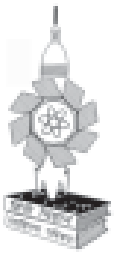

क्रिया होती है. जब पोजीट्रान की गतिज ऊर्जा 0.1 eV से कम होती है तो वे पदार्थ के परमाणुओं के साथ ऊष्मीय संतुलन में आ जाते है. यह ऊर्जा क्षीणन केवल कुछ पिको सेकण्ड (10^{-12} s) के समय अंतराल में होता है जोकि पोजीट्रान के जीवन काल से अत्यंत कम है. इस प्रकार के ऊष्मीय संतुलन के दौरान पोजीट्रान को उसकी ऊष्मीय तरंगों की तरंगदैर्ध्य से संसूचित किया जाता है. यह तरंगदैर्ध्य निम्न समीकरण से प्राप्त की जा सकती है.

$$\lambda = 50\ (300/T)^{¼} \times 10^{-10}\ (\text{मीटर}) \qquad (11)$$

यहां T पदार्थ का तापक्रम (परम ताप पैमाने पर) है. पोजीट्रान का विभिन्न पदार्थों में विसरण क्वांटम यांत्रिकीय तरंग के रूप में होता है तथा ऊष्मीय संतुलन में आने के बाद पोजीट्रान का पदार्थ में ऊर्जा का क्षीणन विसरण क्रियाविधि से होता है. सामान्य तापमान पर इन पोजीट्रानो की औसत भेदन दूरी लगभग 100 nm होती है. विसरण के दौरान पोजीट्रान पदार्थों में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों के साथ क्रिया कर विलोपित हो जाते हैं. एक समांग दोषरहित माध्यम में सभी पोजीट्रानों की गति समान होती है. पदार्थों की संरचना विभिन्न परमाणुओं के रासायनिक बंधन से होती है. संघनित पदार्थों में धनावेशित रिक्त स्थान होने पर वे पोजीट्रान के लिए विकर्षण पैदा करते हैं, जिससे ऐसे पदार्थों में पोजीट्रान, माध्यम के परमाणुओं के बीच की रिक्तता पर जाकर स्थिर होते है. इस प्रकार पदार्थों में उपस्थित संगठित रिक्तता या एकल रिक्त स्थानों या विस्थापन के कारण उत्पन्न रिक्त स्थानों को आयतन अधिक होने के कारण, पोजीट्रान का प्रयोग करके बड़ी ही कुशलता से संसूचित किया जा सकता है. इन स्थानों पर आते ही पोजीट्रान का विभव, कुलंब प्रतिकर्षण में कमी आने से अचानक कम हो जाता है. अतः इस प्रकार से एक बंधित पोजीट्रान की ऊर्जा स्वतंत्र पोजीट्रान की ऊर्जा से कम होगी. इस प्रकार की क्रिया को पोजीट्रान विपाश कहते हैं. पोजीट्रान विपाश के दौरान, पदार्थ में ही उपस्थित दोषकेंद्रों में जाकर पोजीट्रान स्थिरता प्राप्त करते है.

इस प्रकार के एकीकृत रिक्ततायुक्त दोषकेंद्रों में स्थिर विपाशी पोजीट्रान की बंधक ऊर्जा कुछ eV (इलेक्ट्रॉन वोल्ट) होती है तथा विलोपन होने तक वह इन्हीं केंद्रों पर बंधित रहता है. इस प्रकार के पोजीट्रान बंधक कुएं की गहराई अधिक होने पर, फोनान (ध्वनि कणिकाएं) के साथ अनुक्रिया द्वारा स्वतंत्र हो सकते हैं. चूंकि इस प्रकार के दोषकेंद्रों पर इलेक्ट्रॉन घनत्व कम होने के कारण विपाशी पोजीट्रान की आयु (ιb) तदनुरुपी अन्य पोजीट्रानों की आयु ($\iota b\text{-}\iota b^{-1}$) से अधिक होती है. पोजीट्रान विपाश होने की गति k पदार्थ में उपस्थित दोषकेंद्रों की सांद्रता Ci के समानुपात में बढ़ती है.

अर्थात $k = v.Ci$ (12)

समीकरण (12) में v विपाश स्थिरांक है, जोकि विलोपन की गति के समान ही विशिष्ट प्रकार की विकृति पर निर्भर करता है तथा विकार या दोषकेंद्र की पहचान दर्शाने वाला अर्थात अभिलक्षणीय होता हैं. अतः इस प्रकार के विलोपन मापन के आधार पर पदार्थों में उपस्थित संरचना के विकारों को अभिलक्षित किया जा सकता है. कुचालकों में पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन आपस में जुड़ कर युगल बनाते हैं जिसे पोजीट्रानियम कहते हैं. पोजीट्रानियम की बंधन ऊर्जा 6.1 eV तथा त्रिज्या 0.106 nm होती है. पोजीट्रानियम (युगल) की दो अवस्थायें हो सकती हैं, आर्थो पोजीट्रानियम (O_{ps}) तथा पेरा पोजीट्रानियम (P_{ps}), ये अवस्थाएं क्रमशः त्रिक ${}^{0}P_{s}(\uparrow\uparrow)$ तथा एकक ${}^{p}P_{s}(\uparrow\downarrow)$ अवस्थाएं होती हैं.

ध्यान रहे क्वांटम यांत्रिकी सिद्धांतों के अनुसार द्वि-फोटान उत्सर्जन के द्वारा ${}^{p}P_{s}$ पोजीट्रानियम का विलोपन संभव है, किंतु यह ${}^{o}P_{s}$ पोजीट्रानियम के लिये संभव नहीं हो सकता. पोजीट्रानियम बनने के लिए पोजीट्रान द्वारा अवशोषक पदार्थ के अन्य इलेक्ट्रॉन का अवशोषण आवश्यक होता है. पोजीट्रानियम के इलेक्ट्रॉन तथा पदार्थ के अन्य इलेक्ट्रॉनों के बीच विकर्षण बल कार्य करता है. जिसके चलते पोजीट्रानियम, पदार्थ में रिक्तता के स्थानों पर जाकर स्थिर हो जाते हैं. परिणाम स्वरुप पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के उपयोग से संघनित पदार्थों के दोषों का संरचनात्मक अध्ययन संभव है. इन प्रायोगिक विधियों के सिद्धांतों तथा प्रयोगों का संक्षेप में वर्णन नीचे दिया जा रहा है.

पोजीट्रान को किसी संघनित पदार्थ में स्थिर किये जाने के कुछ समय बाद शीघ्र ही वे पदार्थ के साथ ऊष्मीय संतुलन में आ जाते हैं तथा पदार्थ के मुक्त या बाह्य स्तर के इलेक्ट्रॉन के साथ अन्योन्य क्रिया कर पोजीट्रानियम बनाकर स्थिरता प्राप्त करते हैं व अंत में समय के साथ विलोपित होते हैं. विलोपन आधारित ये मापन दो प्रकार के होते है. :-

1) पदार्थ में इलेक्ट्रॉनों की अवस्था पर आधारित विलोपन प्रक्रिया : इस प्रकार के अध्ययनों से हम पदार्थों में पोजीट्रान जिस स्थान पर स्थिरता प्राप्त करते हैं, उस स्थान के आसपास की संरचना व इलेक्ट्रॉन घनत्व की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं.

πr

2) एक दूसरे प्रकार के मापन में यह जानना आवश्यक है कि विलोपन के दौरान पोजीट्रान की क्या दशा थी? वह मुक्त अवस्था में था या रिक्त स्थान पर बंधन अवस्था प्राप्त कर चुका था? या वह पोजीट्रानियम परमाणु बना चुका था? पोजीट्रानियम किस (त्रिक या एकक) अवस्था में था? इन प्रश्नों के जवाब दूसरे प्रकार के मापनों से संभव होते हैं, जो पुनः पदार्थ की संरचना की सूक्ष्म जानकारी देने में समर्थ हैं.

विभिन्न पदार्थों में पोजीट्रान की इस प्रकार की क्रियाओं में लगा समय तथा विलोपन होने के पूर्व पदार्थ में तय की गई दूरी का मापन कर यह पता लगाया जा सकता है कि वह पदार्थ चालक, कुचालक या वह अर्धचालक है.

इन मापनों से पदार्थ की बनावट, दोषकेंद्रों के बीच की दूरी तथा असमान घनत्व होने का अंदाजा भी लगाया जा सकता है. जो पदार्थ में विलोपन काल के मापन से संभव होते है, विलोपन काल के ज्ञान से यह पता लग जाता है कि पदार्थ में पोजीट्रान किस जगह स्थिरता प्राप्त करते हैं व दोषकेंद्र किस प्रकार के हैं.

4. प्रयोगशालाओं में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के विभिन्न मापन व उनके सिद्धांत

पोजीट्रान विलोपन के दौरान सामान्यतः दो या तीन फोटान उत्सर्जित होते हैं. दो फोटान उत्सर्जन के साथ विलोपन तीसरे घटक यानि पदार्थ में उपस्थित परमाणु के नाभिक, को अतिरिक्त संवेग देकर उत्सर्जित हो, विपरीत दिशा में गमन करते हैं. उत्सर्जित फोटानों की संख्या के साथ विलोपन की प्रायिकता भी सूक्ष्म संरचना स्थिरांक $\alpha = (1/137)$ से गुणित होकर घट जाती है. जब यह संख्या दो से बढ़कर या अधिक होती है, तो पूर्व प्रायिकता को α से गुणा करके अगले परिणाम प्राप्त करते हैं. इस प्रकार तीन फोटोन विलोपन की प्रायिकता लगभग सौ गुना कम हो जाती है.

द्वि फोटान पोजीट्रान विलोपन की प्रायिकता इलेक्ट्रॉन की गति v, के प्रतिलोम अनुपात में बढ़ती है.

$$\sigma_{2\Upsilon} = \sigma_d = \pi r_0^2 \ c/v \qquad (13)$$

यहां r_o इलेक्ट्रॉन की त्रिज्या तथा c प्रकाश की गति है. समीकरण से यह स्पष्ट होता है कि जैसे जैसे $v \to 0$, विलोपन की प्रायिकता बढ़ती है, किंतु पोजीट्रान विलोपन की गति λ_d सामान्य सीमा में ही रहती है, क्योंकि

$$\lambda_d = \sigma_d n_e v \qquad (14)$$

यहां n_e इलेक्ट्रॉन घनत्व है. इलेक्ट्रॉन तथा पोजीट्रान का विलोपन तभी संभव है जब ऊर्जा तथा संवेग के बीच संतुलन हो, यानि,

$$k_1 + k_2 = p = 2\ mv \qquad (15)$$

तथा $$k_1c + k_2c = E = 2\ mc^2 \qquad (16)$$

यहां $$m = m_0 / (1 - v^2 / c^2)^{½} \qquad (17)$$

जहां m व m_o क्रमशः गतिज एवं स्थिर अवस्था में इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान, k_1 तथा k_2 फोटान के संवेग, E पोजीट्रान इलेक्ट्रॉन युगल यानि पोजीट्रानियम की ऊर्जा को द्रव्यमान केंद्र अक्षीय प्रायोगिक व्यवस्था में दर्शाते हैं. समीकरण (16) व (17) से यह विदित है कि पोजीट्रानियम का द्रव्यमान केंद्र, यदि स्थिर अवस्था में हो, यानि $v = 0$, तो इस स्थिति में दोनों फोटान विपरीत दिशाओं में समान ऊर्जा के साथ उत्सर्जित होंगे.

$$k_1c = k_2c = mc^2 = 0.51\ MeV$$

यदि $v = 0$ न हो तो इस अवस्था के दौरान उत्सर्जन की दिशा के बीच का कोण कुछ मात्रा में कम हो जाता है, तथा ऊर्जा भी 0.51MeV के बराबर नहीं रहती है. यानि जोड़ी का संवेग $p << m_oc$ हो तो इस कोण में होने वाले बदलाव तथा ऊर्जा को क्रमशः निम्न समीकरणों (18) तथा (19) से प्राप्त किया जा सकता है.

$$\sin\theta = p_\perp / m_0c \qquad (18)$$

तथा ऊर्जा में विस्थापन

$$\triangle E = p_{||}c/2 \qquad (19)$$

यहां $p_\perp$ तथा $p_{||}$ क्रमशः पोजीट्रोनियम संवेग p के अनुप्रस्थ तथा अनुदैर्ध्य घटक है.

द्वि-फोटान विलोपन के दौरान, विलोपन फोटान स्पेक्ट्रम की (0.51 MeV) शिखा में हो रहे विस्थापन को नापकर पोजीट्रान-इलेक्ट्रॉन युगल का संवेग प्राप्त किया जा सकता है.

कई पदार्थों में पोजीट्रान विलोपन पदार्थ के दोषकेंद्रों के साथ क्रिया स्वरुप प्राप्त स्थिरता पा जाने के बाद होते हैं.

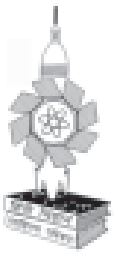

इस प्रकार के द्वि-कण युगल ($e^- e^+$) पोजीट्रानियम (P_s) के नाम से जाने जाते हैं. पोजीट्रानियम परमाणु की बंधन ऊर्जा हाइड्रोजन के परमाणु की बंधन ऊर्जा से आधी होती है जबकि त्रिज्या दोगुनी. जैसा कि हम जानते हैं,

$$E_n = - \pi^2 m_0 e^4 / h^2 n^2 \qquad (20)$$

तथा $r_n = h^2 n^2 / 2 \pi^2 m_0 e^2 \qquad (21)$

मोटे तौर पर अंदाज लगाने से हम पाते हैं कि पोजीट्रानियम के तरंग फलन Ψ हाइड्रोजन परमाणु के समान ही होते है तथा इसके लिए द्रव्यमान सुधार की आवश्यकता नहीं पड़ती. यथा, न्यूनतम ऊर्जा की अवस्था में इसे समीकरण (22.1) से बताया जा सकता है.

$$\Psi_1 (r) = (\pi a_p^3)^{-1/2} \exp (- r / a_p) \qquad (22.1)$$

यहां a_p एक स्थिरांक (= 0.106 नेनोमीटर), तथा r इलेक्ट्रॉन व पोजीट्रान की सापेक्ष दूरी है. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पोजीट्रान तथा इलेक्ट्रॉन के चक्रण (spin) की दिशा के आधार पर पोजीट्रानियम की दो अवस्थाएं त्रिक ^oP_s तथा एकक ^pP_s संभावित होती हैं. त्रिक ^oP_s अवस्था में पोजीट्रानियम का चुंबकीय संवेग घटक प्रत्येक अवस्था में अलग होता है. यह +1, 0 या -1 के बराबर होगा, जबकि एकक अवस्था में केवल एक ही घटक संभव है, जिसके चुंबकीय संवेग का मान शून्य (0) के बराबर होता है. अतः सांख्यिकी के नियमों के अनुसार आर्थो पोजीट्रानियम तथा P- (पॅरा) पोजीट्रानियम का चुंबकीय प्रभाव क्रमशः ¾ तथा ¼ के अनुपात में होगा. पोजीट्रानियम विलोपन की प्रायिकता भी विलोपन क्रिया में सहभागी होने वाले इलेक्ट्रॉन तथा पोजीट्रान के चक्रण की दिशाओं पर निर्भर करेगी. इस प्रकार P- पोजीट्रानियम का विलोपन 0.51 MeV ऊर्जा के दो फोटान उत्सर्जन के साथ होता है, जबकि आर्थो पोजीट्रानियम विलोपन के दौरान तीन फोटान उत्सर्जित होते हैं. P- पोजीट्रानियम तथा 0- पोजीट्रानियम के स्वतंत्र विलोपन की प्रायिकताएं भी अलग अलग होती हैं. P- (पेरा) पोजीट्रानियम के लिए विलोपन की गति λ_s^p तथा औसत आयु ι^p_s के बीच आपसी संबंध समीकरण (22.2) के अनुसार होता है.

$$\lambda_s^p = 1 / \iota^p_s = 4\pi r_0^2 c |\psi_i(o)|^2 \qquad (22.2)$$

यहां ψ_i (o) इलेक्ट्रॉन तथा पोजीट्रान के तरंग फलन की प्रायिकता की व्याप्ति दर्शाता है. समीकरण (22.1) तथा (22.2) से हम पाते हैं कि

$\lambda_s^p = 8 \times 10^9 \ s^{-1}$ तथा $\iota_s^p = 7.14 \times 10^{-10} s \qquad (23)$

जैसा कि हम जानते हैं दो व तीन γ फोटान उत्सर्जन के साथ विलोपन की प्रायिकताओं का अनुपात

$\sigma_{3\gamma} / \sigma_{2\gamma} = 1 / 372$ के बराबर होता है. समीकरण (22.2) तथा उपरोक्त मान के उपयोग से हमें o- पोजीट्रानियम क़ी विलोपन दर λ_t^o तथा आयु τ_t^o मिलती है.

$$\lambda_t^o = 1 / \tau_t^o = 7.14 \times 10^6 \ s^{-1}$$

तथा $\tau_t^o = 1.4 \times 10^{-7} s$ (सेकंड) $\qquad (24)$

चुंबकीय बल के प्रभाव से पोजिट्रानियम की इन तीन ऊर्जा अवस्थाओं को अलग अलग किया जा सकता है, इस विधि को हम 'झीमेन' प्रभाव के नाम से जानते हैं. प्रयोगशालाओं में आज विभिन्न प्रकार के पदार्थों के अध्ययन, उन पदार्थों में पोजीट्रानियम की औसत आयु, विलोपन फोटान के बीच कोणीय सह संबंध तथा दो या तीन-फोटान विलोपन की गति के मापन से किए जाते हैं. अन्य विधियां भी प्रचलित है, जिनके दौरान उत्सर्जित विकिरण फोटानों का स्पेक्ट्रम लिया जाता है तथा डॉपलर फैलाव के आधार पर पदार्थ की गुणवत्ता की जांच की जाती है. जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण विधियों की जानकारी नीचे संक्षेप में दी गई हैं.

5. पदार्थों में पोजीट्रान के जीवनकाल का मापन

हम जानते हैं ^{22}Na एक महत्वपूर्ण पोजीट्रान स्रोत है, जिसकी अर्धायु लगभग 2.5 वर्ष है. जैसा कि चित्र 3 अ से स्पष्ट होता है, पोजीट्रान उत्सर्जन के साथ ही यह 1.274 MeV ऊर्जा का एक फोटान भी उत्सर्जित करता है, जिसे संसूचित कर पोजीट्रान के उत्सर्जित होने का समय जान लेते हैं. पदार्थों में विसरण के दौरान पोजीट्रान की ऊर्जा का क्षीणन होता है तथा अंत में अवशोषण होता है. जिसके कारण 0.51 MeV के दो फोटान विपरीत दिशा में उत्सर्जित होते हैं जो पदार्थ में पोजीट्रान के अंत होने का संकेत देते हैं. अतः इन दो प्रकार के फोटान के संसूचित होने के बीच पोजीट्रान पदार्थ में विसरण करता है. इस समयांतर को हम पदार्थ में पोजीट्रान का जीवनकाल कहते हैं. निश्चित ही इस

जीवनकाल का मान विभिन्न पदार्थों में अलग अलग होगा.

किसी पदार्थ में पोजीट्रान के जीवनकाल के मापन के लिए ^{22}Na पोजीट्रान स्रोत को इस पदार्थ की बनी दो समान तश्तरियोंके बीच रखा जाता है व 1.274 MeV ऊर्जा के फोटान तथा विलोपन के दौरान 0.51 MeV के बीच गुजरे समयांतर को नाप कर प्रत्येक उत्सर्जित पोजीट्रान का जीवनकाल t नापा जा सकता है. इस कार्य के लिए उपयोग में आनेवाले उपकरण को चित्र 4 में दर्शाया गया है, जिसकी सहायता से 1.274 MeV तथा 0.51 MeV के विकिरणों को विलंबित संयोग के द्वारा नापा जाता है. जैसा कि चित्र से स्पष्ट होता है, इस उपकरण में दो प्रस्फुरण संसूचक होते हैं, जोकि क्रमशः (1.274 MeV) पोजीट्रान के जन्म तथा (0.51 MeV) विलोप होने की सूचना देते हैं. यह मापन संगणकों की सहायता से तेज रफ्तार से सूक्ष्म कालांतर में, अधिक ऊर्जा भेदन क्षमता के साथ, समय-तीव्रता परिपथ व तेज संयोग परिपथ के उपयोग से किया जाता है. संसूचक परिपथ, फोटान की ऊर्जा के आधार पर यह तय करता है कि संसूचित विकिरण फोटान, पोजीट्रान उत्सर्जन का सूचक है या उसके विलोपन का. इन दो ऊर्जा के फोटानों के अलावा अन्य ऊर्जा विकिरण फोटानो. के प्रति यह सुग्राही नहीं होता तथा उनका दुर्लक्ष करने में यह उपकरण सक्षम होता है. अतः प्राप्त ऊर्जा स्पेक्ट्रम में इन दो भिन्न तीव्रता के शिखरों (रेखाओं) के बीच का समयांतर नाप कर पदार्थ में पोजीट्रान के जीवनकाल को प्राप्त किया जाता है. स्पंद पोजीट्रान स्रोत के उपयोग से भी जीवनकाल नापा जा सकता है.

विभिन्न प्रकार के पदार्थ, जैसे चालक, अर्धचालक तथा बहुलक पदार्थों में इस प्रकार के मापनों से यह पाया गया कि बहुलक पदार्थों में पोजीट्रान की आयु अधिक होती है, लगभग 15 ns से ज्यादा. अर्धचालक पदार्थों में जैसे सिलीकॉन तथा जर्मेनियम में यह 0.1 ns से लेकर 0.4 ns बीच होती है. किसी पदार्थ में पोजीट्रान की आयु उस पदार्थ में पोजीट्रान के आस पास में उपलब्ध इलेक्ट्रॉन घनत्व पर निर्भर करती है. पदार्थ में संरचनात्मक दोष जैसे बिंदुदोष इत्यादि होने पर, इन रिक्त स्थानों पर पोजीट्रान स्थिरता प्राप्त करते हैं जिससे उनका विलोपन धीमा हो जाता है. ऐसे दोषकेंद्रों में स्थिर पोजीट्रान की आयु, दोषकेंद्र के आयतन पर निर्भर करती है. अतः पदार्थों में दोष का पता लगाया जा सकता है. दोषकेंद्रों में उपस्थित पोजीट्रान की आयु समीकरण (25) का उपयोग कर प्राप्त कर सकते हैं.

$$\tau = (1/2)\{1-(R/(R+\Delta R)) + (1/2\pi)\,\mathrm{Sin}\,(2\pi R/(R+\Delta R))\}^{-1} \quad (25)$$

इस समीकरण में R दोषरिक्तता की त्रिज्या तथा $\triangle R$ इलेक्ट्रॉन परत की मोटाई दर्शाते हैं. सामान्यतः $\triangle R = 0.166$ nm होती है. नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र में प्रयुक्त विभिन्न पदार्थ उच्च ऊर्जा विकिरणों के वातावरण में सतत रहते हैं. अतः इन पदार्थों में संरचनात्मक दोष निर्माण होने की संभावना होती है. पदार्थो में कई प्रकार के संरचनात्मक दोष हो सकते हैं, जिनका अध्ययन इस विधि से संभव है.

6. त्रि-फोटान विलोपन की प्रायिकता का मापन

पदार्थों में पोजीट्रान विलोपन कई प्रकार से हो सकता है, जिसमें से एक महत्वपूर्ण मार्ग त्रि-फोटान विलोपन है. पदार्थ में पेरा पोजीट्रानियम न बनने की स्थिति में तीन फोटान उत्सर्जन के साथ पोजीट्रान विलोपन संभव होता है. त्रि-फोटान विलोपन की प्रायिकता, द्विफोटान विलोपन की प्रायिकता से कम अर्थात इसके (1/372) गुणा होती है. पदार्थ में आर्थो पोजीट्रानियम बनने पर ही त्रि-फोटान विलोपन की प्रायिकता भी बढ़ जाती है. त्रि-फोटान विलोपन की प्रायिकता का विभिन्न पदार्थों में अध्ययन करने से हमें आर्थो पोजीट्रानियम (युगल) बनने के प्रमाण मिलते हैं, जिसके उपयोग से पदार्थ के बारे में कई निष्कर्ष निकलते हैं.

त्रि-फोटान विलोपन प्रयोग के लिए आवश्यक उपकरण चित्र 5 में दर्शाया गया है. इस विधि में तीन प्रस्फुरण संसूचकों को एक दूसरे से 120^0 कोण पर स्थापित कर, त्रि-विलोपन के दौरान समान ऊर्जा $(2/3)mc^2 = 340$ keV के साथ उत्सर्जित होनेवाले तीन फोटान को, जोकि एक दूसरे से 120^0 के कोण पर उत्सर्जित होते हैं, संसूचित कर लेते हैं व प्रायिकता निकाल ली जाती है. इस प्रकार के मापन के लिए एल्यूमिनीयम को मानक लेकर अन्य पदार्थों के मापन किए जाते है. एल्यूमिनीयम विद्युत चालक है अतः एल्यूमिनीयम में पोजीट्रानियम बनने की संभावना नगण्य होती है, जो $p^{A1}_{3\gamma} = p^{0}_{3\gamma} = 0.27\ \%$ के बराबर होती है. एक अन्य प्रकार की विधि में इन समान ऊर्जा के तीनों फोटानों को संयोग परिपथ के उपयोग से गिन लिया जाता है. गणना की गति से त्रि-फोटान विलोपन प्रायिकता को जाना जा सकता है. अन्य विधि में विलोपन फोटान का सूक्ष्म ऊर्जा स्पेट्रम प्राप्त करते हैं, व संयोग गणन में हुई गिरावट या बढ़ोतरी के ज्ञान से यह प्रायिकता प्राप्त कर सकते है. चुंबकीय शमन के कारण भी त्रि-फोटान विलोपन की प्रायिकता घट जाती है.

7. दो फोटान उत्सर्जन के साथ पोजीट्रान विलोपन व कोणीय वितरण - इस प्रकार का विलोपन दो प्रकार से हो

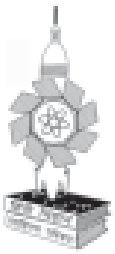

सकता है. इस विधि में विभिन्न पदार्थों में उत्सर्जित होने वाले विलोपन फोटानों के कोणीय वितरण को प्राप्त किया जाता है. जैसा कि हम जानते हैं, पोजीट्रानियम परमाणु के विलोपन के दौरान, विद्युत आवेश की पेरिटि का संतुलन भी होना आवश्यक होता है अतः विभिन्न दिशाओं में जब फोटान उत्सर्जित होते हैं तो उनकी ऊर्जा समान नहीं हो सकती. किंतु हम यह पता कर चुके हैं कि यह अंतर अत्यंत कम होता है. (1^0 से भी कम). अतः हम Sin θ की जगह केवल θ लिख सकते हैं. इस प्रकार के अध्ययनों को हम कोणीय वितरण कह सकते हैं. यदि उत्सर्जित विलोपन फोटानों का संवेग कम ($p << m_o c$) हो, तो हम कह सकते हैं कि

$$\theta = p_{\perp} / m_0 c$$

तथा विलोपित फोटान की स्पेक्ट्रम रेखा की डापलर चौड़ाई

$$\Delta E = p_{||} c/2$$

उपरोक्त संबंधों को समीकरण (18) व (19) में पहले भी दर्शाया गया है.

अतः संयोगात्मक गणना की गति के मापन द्वारा अथवा विलोपन फोटानों की 0.511 MeV पर आने वाली स्पेट्रम रेखा के डापलर फैलाव का मापन कर पदार्थ में पोजीट्रानियम का संवेग प्राप्त कर लेते हैं. इस अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण की संरचना चित्र-6 में दी गयी है. मापन के दौरान एक संसूचक को स्थिर अवस्था में रखकर दूसरे संसूचक को गोलाकार क्षेत्र में समान दूरी पर घुमाया जाता है जैसा कि चित्र-6 में दर्शाया गया है. अतः γ फोटानों के एक साथ दोनों संसूचकों पर अलग अलग संसूचित होने से उत्सर्जन की दिशा को प्राप्त किया जाता है. प्रगत प्रोद्योगिकी के कारण आज ऐसे अत्यंत सुग्राही उपकरण उपलब्ध हैं, जिनके उपयोग से इस प्रकार अत्यंत सूक्ष्म लगभग 0.3 mrad कोणीय विभेदन क्षमता से कम अंतर के साथ मापन संभव हो गया है. यहां यह जानना आसान है कि p- (पेरा) पोजीट्रानियम के विलोपन के दौरान अत्यंत कम चौड़ाई की खड़ी स्पेक्ट्रम रेखा (शिखा) मिलती है. यानि इसका $\triangle E$ कम होता है. ऐसे कम चौड़ाई वाली स्पेक्ट्रम रेखा के लिए यह कोणीय वितरण केवल 0.5 mrad तक ही फैलता है, जबकि चौड़ी स्पेक़्ट्रम रेखा के लिए यह 10.0 mrad तक हो सकता है.

8. विलोपन फोटानों की स्पेक्ट्रम रेखा के डापलर फैलाव का मापन - आज विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं में उच्चस्तरीय तथा अति सूक्ष्म विभेदन क्षमता के γ विकिरण स्पेक्ट्रोमीटर कार्यरत हैं. इस उपकरण में एक अत्यत शुद्ध जर्मेनियम एकल क्रिस्टल को γ- विकिरण फोटान के मापन के लिए संसूचक के रूप में उपयोग में लाया जाता है. यह 511 keV ऊर्जा वाले γ-विकिरण फोटानों को 1.2 eV के विभेदन क्षमता से माप सकने में सक्षम होता है. भिन्न-भिन्न ऊर्जा के फोटान की संख्या को मल्टी चेनल मापक तथा संगणक की सहायता से गिन कर उत्सर्जित -विकिरण स्पेक्ट्रम प्राप्त किया जाता है. पोजीट्रानियम के गुरुत्व केंद्र में होने के कारण विलोपन फोटानों का अभिस्मरण होता है तथा उनके उत्सर्जन की दिशा बदलती है. साथ ही प्राप्त विकिरण स्पेट्रम में 0.511 MeV का शिखर जो कि विलोपन फोटान के कारण आता है, चौड़ा भी होता है. जिसे γ- विकिरण स्पेक्ट्रोमीटर की सहायता से नाप लिया जाता है. इस प्रकार प्राप्त होनवाले स्पेक्ट्रम के दो आयाम होते हैं. पहला S-आयाम, जो कि शिखर के मध्य भाग का सापेक्षिक क्षेत्रफल होता है जबकि दूसरा W- आयाम, जो कि शिखर की पूँछ (Tail) के क्षेत्रफल का अंश दर्शाता है. S-आयाम की मात्रा अधिक होने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पोजीट्रान का विलोपन पदार्थ के कम संवेग वाले इलेक्ट्रॉन के साथ जुड़ने के कारण हो रहा है. उसी प्रकार यदि यह शिखर लंबी पूंछ के साथ मिले तो वह यह दर्शाता है कि पदार्थ में कई दोषकेंद्र विद्यमान है, जहां पर पोजीट्रान स्थिरता प्राप्त कर लेते हैं, जिसके कारण प्राप्त शिखर फैल जाता है. अतः इस प्रकार के मापन से पदार्थ में उच्च ऊर्जा विकिरण के प्रभाव से पदार्थों में उत्पन्न होनेवाले दोषों की तीव्रता का अध्ययन संभव है.

आज ऐसे कई उपकरण विकसित किये गये हैं, जिनकी सहायता से पदार्थ में पोजीट्रान के जीवनकाल के मापन के साथ ही विलोपन फोटान स्पेक्ट्रम की डॉपलर फैलाव का मापन भी संभव है, चित्र-7 में एक ऐसे ही उपकरण को स्पष्ट किया गया है. सिलिकॉन (PIN) डायोड से जुड़े सीजियम आयोडाइड (थैलियम डॉप्ट) CsI(Tl) क्रिस्टल के उपयोग से ^{22}Na द्वारा उत्सर्जित पोजीट्रान विलोपन फोटान का स्पेक्ट्रम चित्र-8 में दिया है.

9. विभिन्न धातुओं में पोजीट्रान विलोपन

धातुओं में दो प्रकार के इलेक्ट्रान होते हैं, जिन्हें क्रमशः मुक्त चालक तथा धुरी (नाभिक) से बंधे इलेक्ट्रॉन कहा जाता है. धातुओं में मुक्त इलेक्ट्रॉनों का संवेग वितरण $n_e = n_e(p)$, समीकरण (26) के अनुसार होता है.

$$n_e(p) = (\exp[\{(p^2/2m) - E_f\}/kT]+1)^{-1} \quad (26)$$

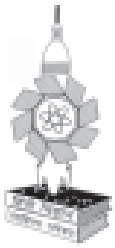

यहां E_f मुक्त इलेक्ट्रॉनों की औसत फर्मी ऊर्जा तथा k बोल्ट्झमेन स्थिरांक है, T पदार्थ का तापक्रम (परम ताप पैमाने पर) तथा p इलेक्ट्रॉनों का संवेग है. कम ताप पर यह वितरण चतुर्भुजाकार होता है. पोलीक्रिस्टलाइन पदार्थों में विलोपन फोटान का कोणीय वितरण $f_p(\theta)$ परवलयिक होता है जिसे निम्न समीकरण (27) प्राप्त कर सकते हैं.

$$f_p(\theta) = (3I_p/4\theta^3_p)(\theta^2_p - \theta^2) \text{ यदि } |\theta| \leq |\theta_p|$$

$$\text{तथा } f_p(\theta) = 0 \qquad |\theta| > |\theta_p| \qquad (27)$$

यहां I_p विकिरण शिखा की तीव्रता और θ_p का मान फोटानों के विलोपन विकिरण स्पेक्ट्रम से प्राप्त किया जाता है. एक बार θ_p माप लेने के बाद इलेक्ट्रॉनों का फर्मी संवेग p_F, तथा फर्मी ऊर्जा E_F का मान निम्न समीकरणों से प्राप्त किया जाता है.

$$p_F = \theta_p mc \qquad (28)$$

$$E_F = \theta^2_p mc^2/2 \qquad (29)$$

चालक धातुओं के इलेक्ट्रॉनों को गैसीय अणुओं के समान मानने पर θ_p के उपयोग से हम मुक्त इलेक्ट्रॉनों की संख्या Z_c समीकरण (30) से प्राप्त कर सकते हैं.

$$Z_c = (8\pi/3)(mc^2/h)^3(A/dN_A)\theta^3_p \qquad (30)$$

$$n_p(\theta) = Z_c n_A = (8\pi/3)(mc^2/h)^3\theta^3_p \qquad (31)$$

तथा इलेक्ट्रॉनों की फर्मी ऊर्जा समीकरण (32) से प्राप्त की जा सकती है.

$$E_F = (h^2/8m)(3n_A Z_c/\pi)^{2/3} \qquad (32)$$

ध्यान रहे, Z_c, n_p तथा E_f के मापन के लिए धातुओं का अत्यंत शुद्ध होना आवश्यक है. यहां

$$n_p = (N_A d/A) Z_c \qquad (33)$$

यहां n_A पदार्थ में स्थित इकाई आयतन के परमाणुओं की संख्या, d पदार्थ घनत्व, N_Aएवोगाद्रो संख्या, तथा A परमाणु क्रमांक है.

10. अर्धचालक पदार्थों के अध्ययन में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि की उपयोगिता

पोजीट्रान विलोपन प्राविधि अर्धचालक तथा आयनिक क्रिस्टल के अध्ययनों में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है. इस विधि के द्वारा चालकों के समान ही आयनिक क्रिस्टल तथा अर्धचालक पदार्थों में इलेक्ट्रॉन संख्या घनत्व, आवेश की अवस्था, संरचनात्मक दोष, विभिन्न क्रिस्टलोग्राफिक संरचनाओं, चालक व अर्धचालक के बीच संरचनात्मक अवस्थाओं के बदलाव व विभिन्न दोष केंद्रों के प्रकार इत्यादि, का अध्ययन किया जाता है.

11. द्रवावस्था में पोजीट्रान विलोपन प्राविधि के अध्ययन

द्रवावस्था में पोजीट्रान, मुक्त इलेक्ट्रॉनों के साथ जुड़ कर तुरंत पोजीट्रानियम बनाते हैं. अतः द्रवावस्था में पोजीट्रान की रसायनिक भूमिका, हाईड्रेटेड इलेक्ट्रॉन के समान होती है. जैसा कि हम जानते हैं, उच्च ऊर्जा आवेशित कण पदार्थ में विसरण के दौरान अपने मार्ग में कई विकिरण उत्पाद बनाते हैं. पानी में अस्थिर होने के कारण ये विकिरण उत्पाद रसायनिक क्रिया के द्वारा तुरंत ही स्वतंत्र मूलक OH^- तथा H_2O^+ बनाते हैं. पोजीट्रान की ऊर्जा अत्यंत कम होने पर वह इलेक्ट्रॉन के साथ क्रिया करके पोजीट्रानियम (युगल) बनाते हैं जैसा कि नीचे समीकरण (34) में दर्शाया गया है.

$$e^+ + e^- = (e^+ e^-) \text{ or } P_s \qquad (34)$$

ये जलीय पोजीट्रानियम अनेक उत्पाद बनाते हुए ऊर्जा में विलोपित होते है. इनमें से कुछ को समीकरण (35) में दर्शाया गया है.

$$H_2O + e = e_{aq} \text{ तथा } H_2O^+ + e_{aq} \rightarrow H_2, \rightarrow H, \rightarrow H_2O \qquad (35)$$

हम पाते हैं कि पानी में पोजीट्रानियम (युगल) बनने का सिद्धांत हाईड्रेटेड इलेक्ट्रॉन की क्रिया के समान ही है. यह भी देखा गया है कि तरल पदार्थों में पोजीट्रानियम की आयु, लगभग 10^{-12} s के बराबर होती है.

इस प्रकार हमने जाना कि पोजीट्रान विलोपन प्राविधि पदार्थ विज्ञान में अत्यंत लाभकारी है. एक अविनाशी विधि होने से इसका महत्व और भी बढ़ जाता है. इसके द्वारा पदार्थों की संरचना तथा विभिन्न पदार्थों में होने वाले विकिरण के प्रभाव से उत्पन्न दोषों का अध्ययन भी इस विधि से संभव है.

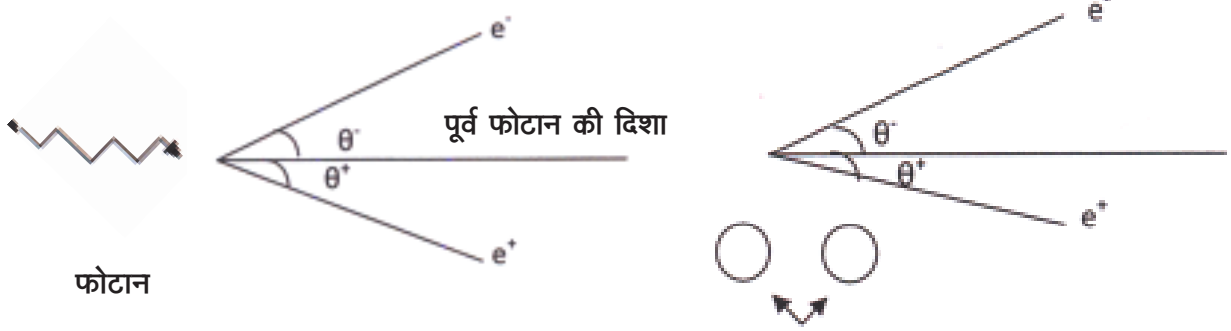

पोजीट्रान के जन्म के पूर्व फोटान

स्वतंत्र अवस्था में पोजीट्रान की जन्म के बाद की स्थिति

(अ)

नाभिक

स्वतंत्र अवस्था में पोजीट्रान की जन्म के बाद की स्थिति

(ब)

चित्र-1 - उच्च ऊर्जा विकिरण के प्रभाव से पदार्थ में पोजीट्रान उत्पन्न होने की विभिन्न संभाव्य क्रियाविधियां

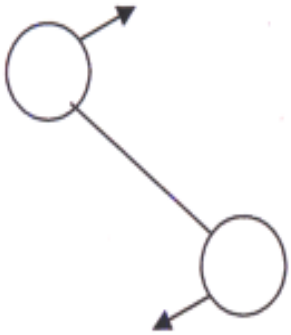

चित्र - 2 (अ)

विलोपन के पूर्व स्थिति (पोजीटोनियम का चक्रण)

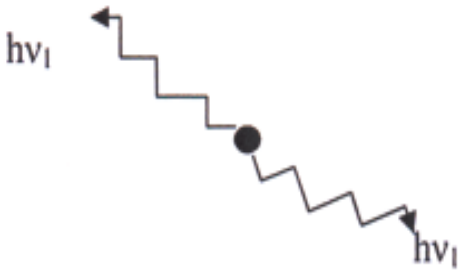

चित्र - 2 (ब)

पोजीटोनियम विलोपन के बाद की स्थिति

चित्र-2 - पदार्थ में पोजीट्रानियम का चक्रण व विलोपन

चित्र - 3 (अ)

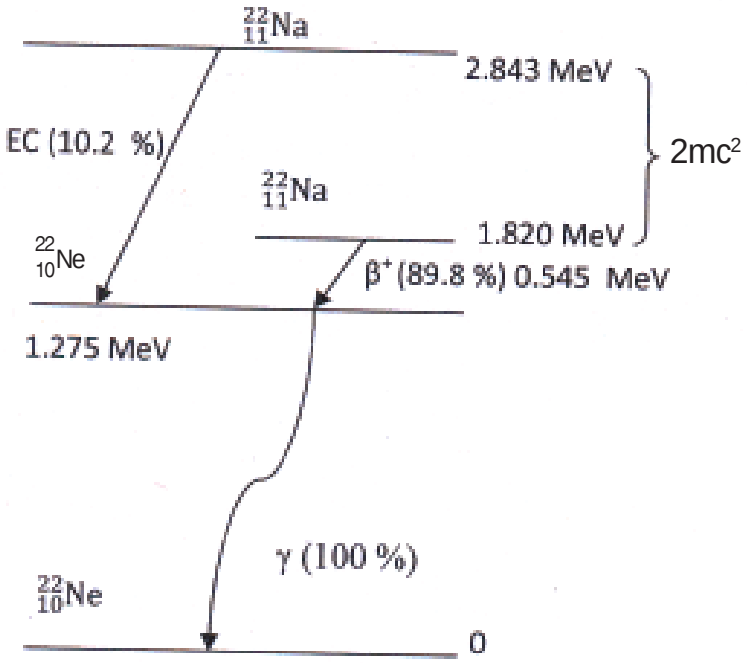

$^{22}_{11}$Na पोजीट्रान स्रोत

चित्र - 3 (ब)

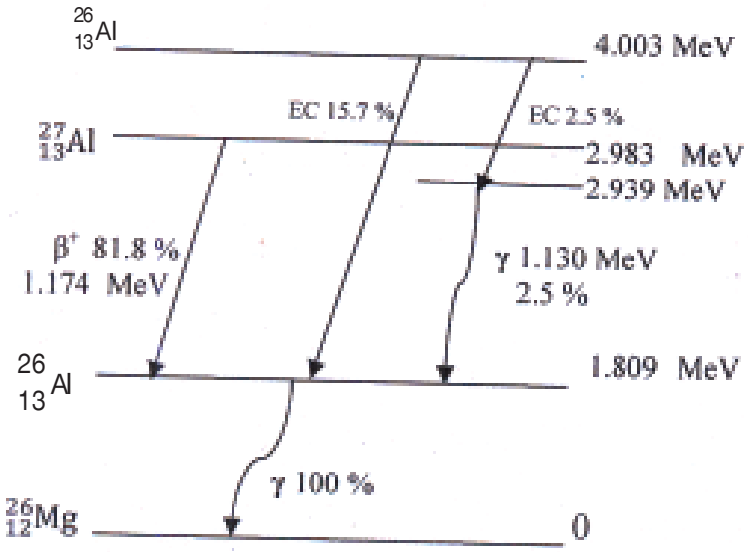

$^{26}_{13}$Al पोजीट्रान स्रोत

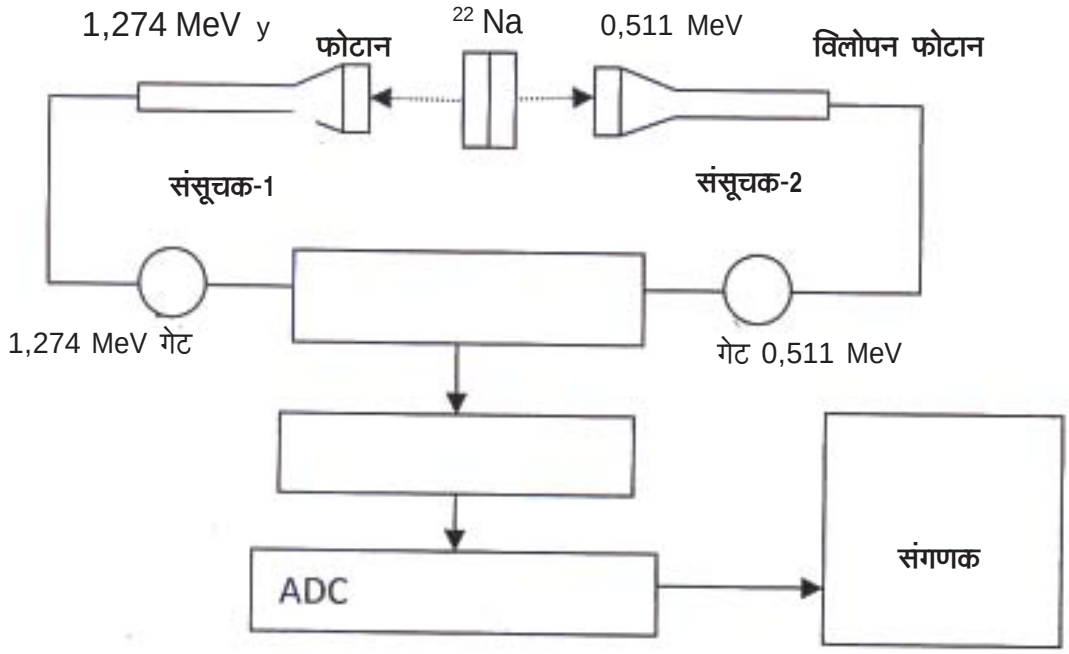

चित्र-4 पदार्थों में पोजीट्रान के जीवनकाल के मापन की सामान्य विधि

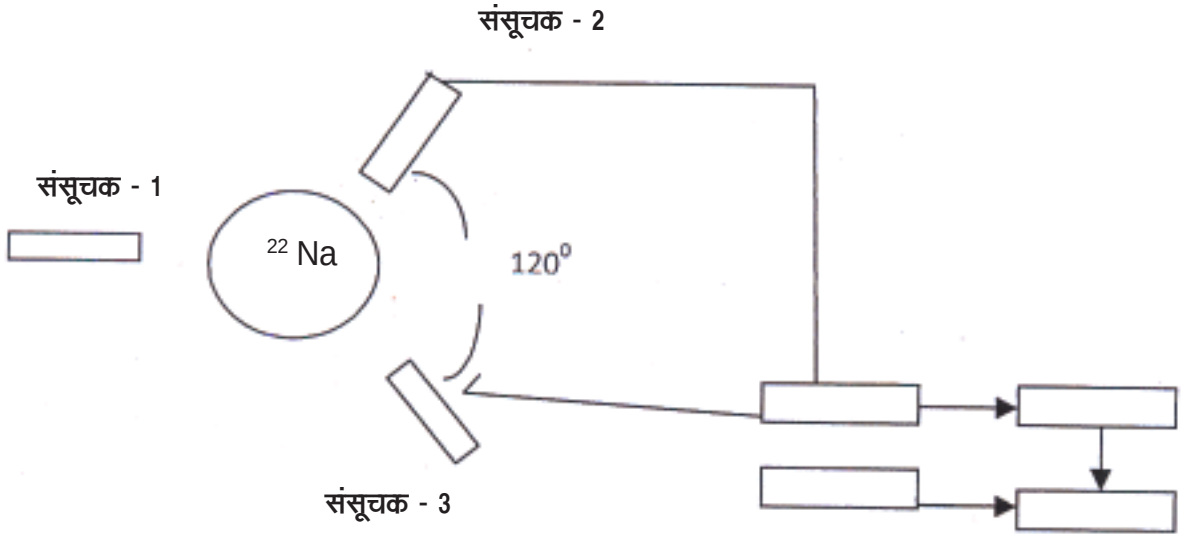

चित्र-5

चित्र-4 त्रि-फोटान विलोपन प्रयोग के लिए उपकरण

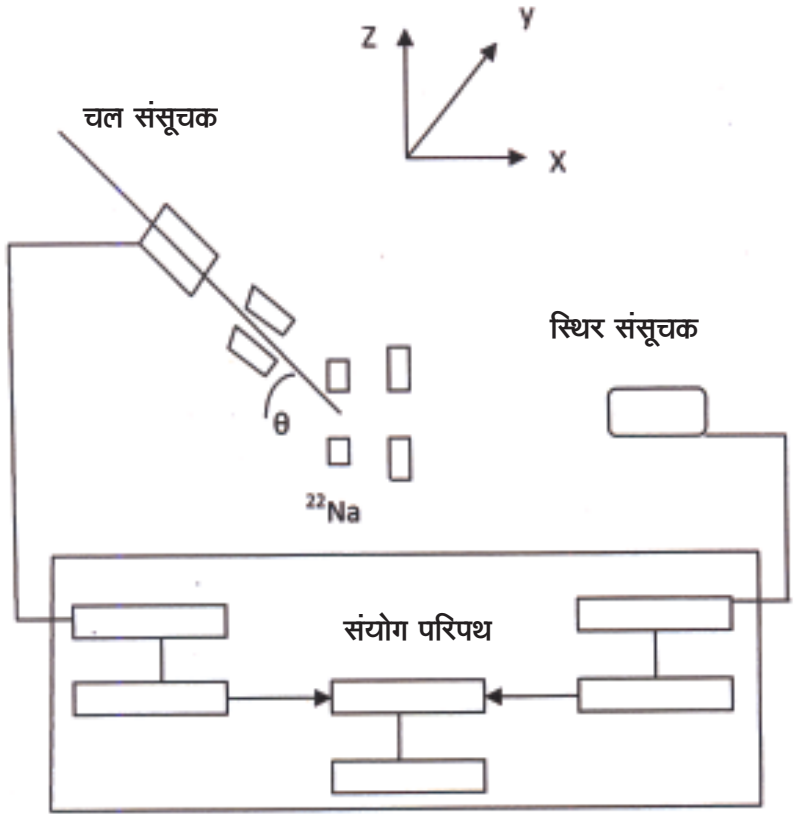

चित्र-6 विलोपन फोटानो के कोणीय वितरण का मापन

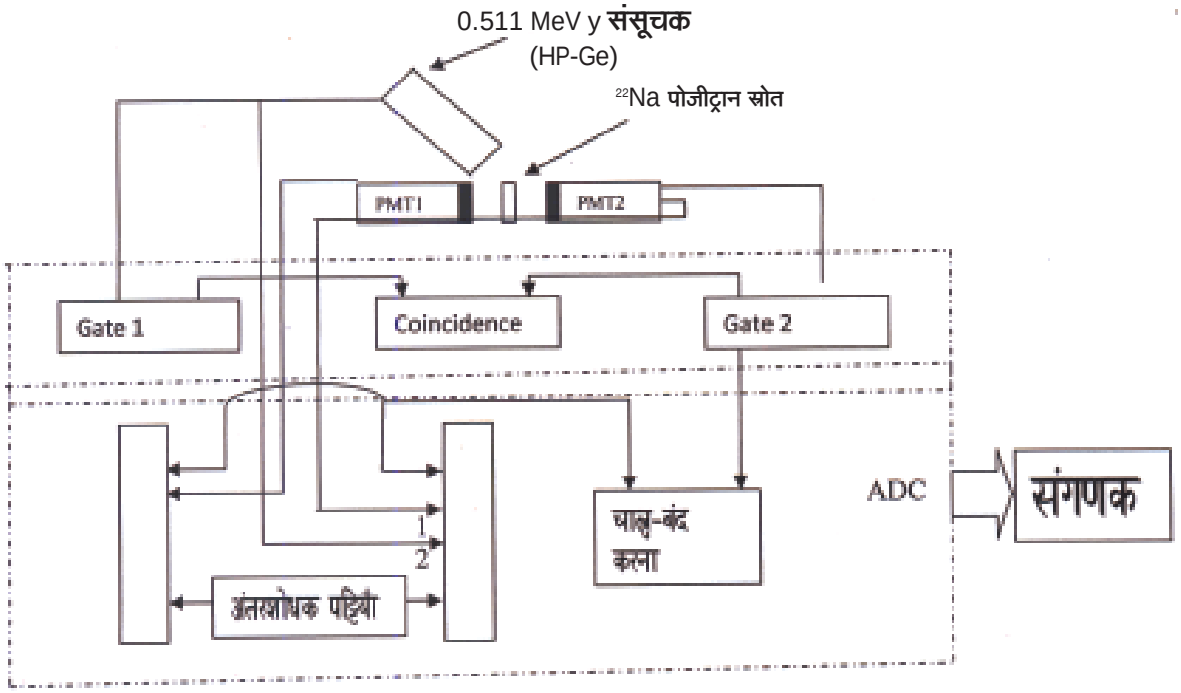

चित्र-7 पदार्थों में पोजीट्रान के जीवनकाल तथा
विलोपन रेखा के डापलर फैलाव के संयुक्त अध्ययन की विधि

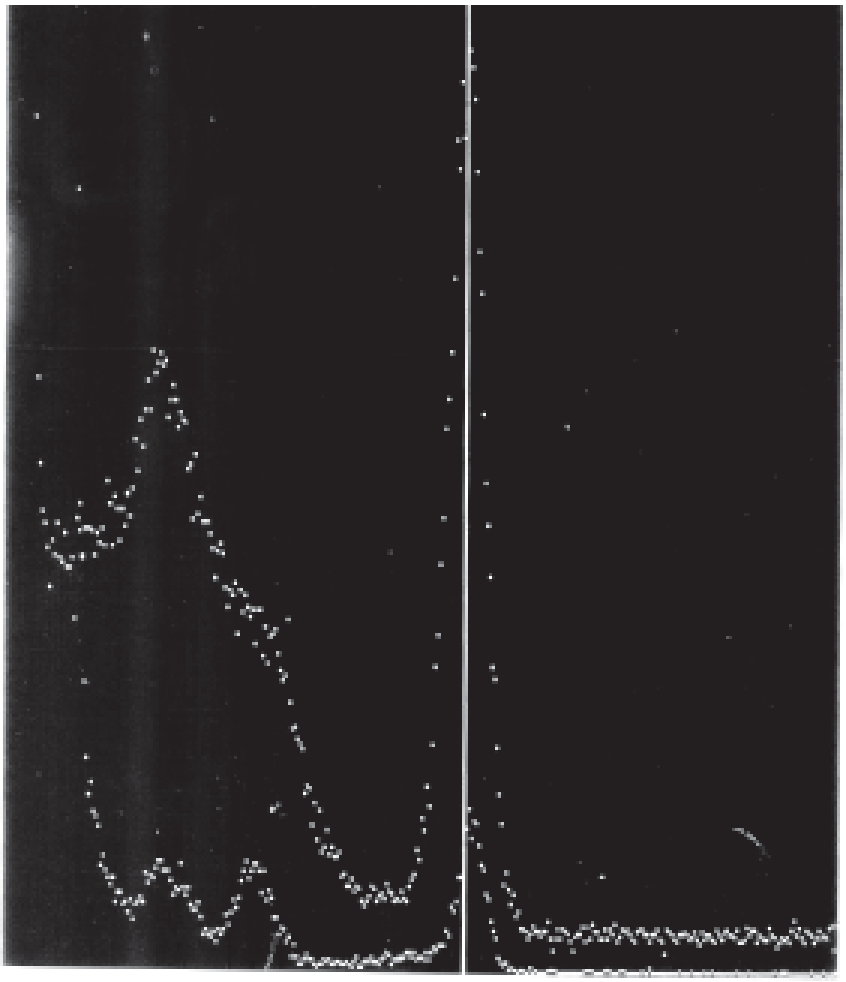

विलोपन फोटान की ऊर्जा = 512.13 keV

चित्र-8 सिलिकन (PIN) डायोड से जुड़े CsI (Tl) क्रिस्टल के उपयोग से ^{22}Na द्वारा उत्सर्जित पोजीट्रान विलोपन फोटान स्पेक्ट्रम का एक वास्तविक चित्र

बाल किशोर पन्ने पर (इसी अंक में) दी गई विज्ञान प्रश्न मालिका-*1* के सही उत्तर इस प्रकार हैं

प्रश्न 1 (क),	**प्रश्न 2.** (ख),
प्रश्न 3. (ग),	**प्रश्न 4.** (क),
प्रश्न 5. (ग),	**प्रश्न 6.** (ग),
प्रश्न 7. (क),	**प्रश्न 8.** (ख),
प्रश्न 9. (ग),	**प्रश्न 10.** (ग)

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त

रचना से रचयिता बनने की ओर

- डॉ.विनीता सिंघल -

सहसंपादक, साइंस रिपोर्टर,एन.आय.एस.सी.आय.आर., सी.एस.आय.आर.
डॉ.के.एस. कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-110012

कहते हैं कि मानव व ईश्वर में सिर्फ एक ही अंतर है और वह है, ईश्वर का जीवन की रचना करने में सक्षम होना. ईश्वर जीवन दे तो सकता ही है लेकिन ले भी सकता है. परंतु जीवन देने पर मानव का बस नहीं है. कुछ वैज्ञानिक अपने अनुसंधान कार्यों से लगातार ईश्वरीय समझी जाने वाली क्रियाओं को चुनौती देते रहे हैं. अब ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में जीवन रचने में बड़ी सफलता पाई है. एक नये जीव की कोशिका का निर्माण कर वैज्ञानिकों ने नई सृष्टि की रचना करने की नींव रख दी है. रॉकविले के जे.क्रेग वेंटर इंस्टीट्यूट के शोधकर्ताओं ने पहली बार प्रयोगशाला में एक जीवाणु के डीएनए (DNA) की रचना कर ली है. 20 मई 2010 को क्रेग वेंटर ने सिंथिया के आगमन की घोषणा की, लेकिन अन्य कोशिकाओं के समान यह कोशिका किसी दूसरी कोशिका से नहीं जन्मी थी. बल्कि

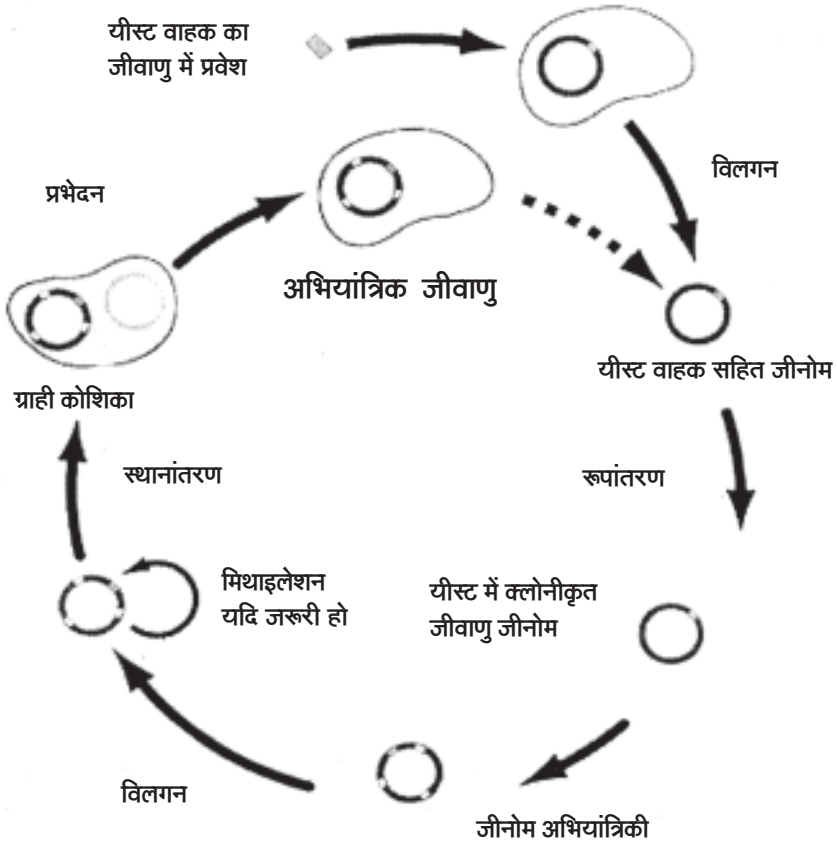

प्रयोगशाला में कृत्रिम जीव की रचना की प्रक्रिया

इसका सृजन एक कंप्युटर प्रोग्राम के जरिए हुआ था. यद्यपि इसका जन्म प्रयोगशाला में रसायन की चार बोतलों से हुआ था, कोशिका विभाजन से नहीं. फिर भी यह सामान्य कोशिकाओं की तरह विभाजित होकर अपनी प्रतिकृतियां बना सकती थी. इस खोज ने 'साइंस' (पत्रिका) में छपते ही पूरी दुनिया में तहलका मचा दिया. हर कोई यह खबर सुनकर जैसे स्तब्ध सा रह गया. ऐसा लगने लगा कि मनुष्य ने अब सृष्टि के रचयिता को चुनौती दे दी है और अब वह सृष्टि के सृजन की तैयारी में है. हालांकि वैज्ञानिकों का कहना है कि उनकी भी कुछ सीमाएं हैं, जिन्हें अभी पार करना बाकी है. परंतु, दुनिया भर के वैज्ञानिकों के बीच इस खोज को लेकर एक खत्म न होने वाली बहस छिड़ गई है. जहां कुछ वैज्ञानिकों ने क्रैग वेन्टर के नव निर्मित जीवन का स्वागत किया है, वहीं कुछ ने क्रैग वेन्टर के इस दावे को सिरे से नकार दिया कि उन्होंने किसी नये जीव की रचना की है. साथ ही उन्होंने यह चेतावनी भी दी है कि ऐसे शोध कार्यों के दुष्परिणाम भी हो सकते हैं.

माइकोप्लाज्मा जेनिटैलियम, प्रयोगशाला में स्वतंत्र रूप से पनप सकने में सक्षम जीवों में, सबसे छोटे जीनोम वाला मुक्तजीवी जीवाणु है. इसके जीनोम में 582,970 क्षार युग्मों वाले गोलाकार क्रोमोसोम में 521 जीन होते हैं, जिनमें से 482 प्रोटीन एनकोडिंग जीन होते हैं. इस जीवाणु के जीनोम के 5,82,970 जोड़े (युग्म) को जोड़कर कृत्रिम जीनोम कोड बनाने के बाद, अब ये वैज्ञानिक अपने नए मिशन में जुट गए हैं, और वह है पूरी तरह कृत्रिम जीवाणु की रचना करना. इसके लिए वैज्ञानिक अपनी ही प्रयोगशाला में बनाए गए कृत्रिम जीनोम का उपयोग करनेवाले हैं, लेकिन इसमें अभी अनेक बाधाएं हैं.

जे. क्रेग वेंटर इंस्टीट्यूट के संस्थापक डा. ग्रेग वेंटर ने बताया कि यह सफलता, तकनीक का चमत्कार है और इसे सिर्फ संस्थान के वैज्ञानिकों की मेहनत के कारण पाया जा सका है. डा.वेंटर ने बताया कि शोधकर्ताओं ने प्रयोगशाला में डीएनए के छोटे-छोटे हिस्से बनाए और फिर उन्हें आपस में जोड़ दिया. डीएनए के हिस्से जोड़ने और उनके विकास के लिए शोधकर्ताओं ने नए तरीके का उपयोग किया. वास्तव में वैज्ञानिकों ने इस काम के लिए उसी विधि का उपयोग किया, जिसे एक कोशिका अपने क्रोमोसोम की मरम्मत करने के लिए उपयोग में लाती है.

सबसे पहले 1879 में जर्मनी के एक वैज्ञानिक ने कोशिकाओं के केंद्रक से अलग किए गए कुछ द्रव्यों पर अनुसंधान कार्य शुरू किया, जिन्हें बाद में न्यूक्लीन का नाम दिया गया. बाद में अनेक तकनीकों का प्रयोग कर दो प्रकार के न्यूक्लिक अम्लों, डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल और राइबोन्यूक्लिक अम्ल का पता लगा. फिर इनके घटकों का पता लगाया गया जिनमें एडेनीन, साइटोसिन, ग्वानीन और थायमीन प्रमुख थे. लेकिन राइबोन्यूक्लिक अम्ल में थायमीन की जगह यूरेसिल पाया गया. 1940 के बाद के दशक में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने कुछ जोड़ तोड़ कर नाभिकीय अम्ल बनाने में सफलता प्राप्त की और इतना ही नहीं उसके रासायनिक गुण भी ज्ञात कर लिए. 1950 का दशक आते आते डीएनए की रासायनिक प्रकृति का तो पता चल गया था, लेकिन इसकी दोहरी कुंडली जैसी बनावट का ज्ञान 1953 में हुआ, जब वाटसन और क्रिक का शोध पत्र साइंस पत्रिका में प्रकाशित हुआ. और इसके बाद तो जैसे क्रांति ही

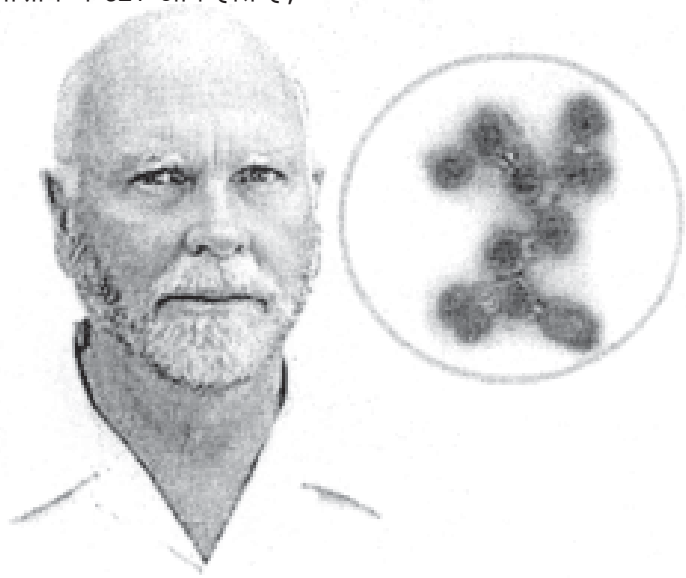

स्वयं निर्मित जीवाणुओं के साथ क्रैग वेन्टर

आ गई. जीवन का रहस्य अब डीएनए पर केंद्रित हो गया और उसकी काट छांट और जोड़-तोड़ होने लगी.

क्रैग वेन्टर और उनकी टीम को सृजनकर्ता का श्रेय लोग भले ही न दें, लेकिन जीव विज्ञान के क्षेत्र में उनकी इस उपलब्धि को नकारा भी नहीं जा सकता. वे ईश्वर तो नहीं हैं, लेकिन अपनी खोज में वहां तक गए हैं, जहां मानव के इतिहास में आज एक कोई नहीं पहुंचा. वर्ष 2007 से ही वे जीव की रचना करने के काम में जुटे थे. 28 जून 2007 को साइंस एक्सप्रेस में छपे एक लेख के अनुसार उनकी टीम ने माइकोप्लाज्मा माइकोडिस के प्राकृतिक डीएनए को निकाल कर माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम की कोशिका में स्थापित कर दिया था, जो माइकोप्लाज्मा माइकोडिस की तरह काम करने लगा था. क्रैग वेन्टर ने अक्टूबर 2007 में दावा किया कि उन्होंने एक दूसरे जीवाणु माइकोप्लाज्मा जेनिटैलियम के गुणसूत्र में कुछ रसायनों को परिवर्तन करके एक नया माइकोप्लाज्मा जेनिटैलियम बना दिया है. इस नये क्रोमोसोम से सारे अनावश्यक जीन विस्थापित कर दिये गये थे. चूंकि माइकोप्लाज्मा बैक्टीरिया की माइकोडिस प्रजाति तेजी से आबादी बढ़ाती है, इसलिए इसकी जेनिटैलियम प्रजाति पर काम रोक दिया गया. मगर संभावना है कि अब जैनिटैलियम के जीनोम को संशोधित करके माइकोडिस की नई मानव निर्मित प्रजाति माइकोडिस लैबोरेटोरियम अस्तित्व में आ जायेगी.

क्रैग वेन्टर की टीम ने अपनी नई खोज में सबसे पहले एक जीवाणु माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम के संपूर्ण आनुवांशिक कोड को पढ़कर उसे कंप्यूटर की भाषा में लिप्यान्तरित किया, अर्थात इस जीवाणु के जीन अनुक्रम की संपूर्ण जानकारी अब कंप्यूटर में थी. इस तरह उन्होंने जीवाणु की आनुवांशिक इकाई डीएनए के घटकों एडीनीन, साइटोसीन, ग्वानीन और थायमीन के दस लाख से भी ऊपर के आधार युग्मों की जैवरासायनिक वर्णमाला को कंप्यूटर की भाषा में बदला और उसे प्रलेखित कर लिया. जीवाणु के डीएनए के दस लाख अक्षरों की जानकारी जिस डीएनए सिंथेसाइजर कंप्यूटर में भरी गई थी, उसने सभी अक्षर सही क्रम में पिरोए, लेकिन टुकड़े-टुकड़े करके. क्योंकि दस लाख अक्षरों को एक साथ पिरोना सरल नहीं था. उन्होंने इसी जैवरासायनिक वर्णमाला का संपादन कर कुछ और नये आनुवांशिक कोडों को जोड़ा और इस पूरी जानकारी को एक डीएनए सीक्वेन्सिंग कंपनी ब्लू हेरान बायो को सौंप दिया. जहां इसके जरिये डीएनए के सैकड़ों छोटे टुकड़ों की फिर से रचना की गयी. डीएनए के इन अलग अलग टुकड़ों को जोड़ने या पुर्नसंयोजित करने के लिए यीस्ट कोशिका की प्राकृतिक क्षमता का सहारा लेकर एक सर्वथा नये संपूर्ण जीवाणु के जीनोम को संरचित कर लिया गया. अब इस पूरे नवनिर्मित माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम जीवाणु के जीनोम को पहले से ही जीनोम रहित जीवाणु माइकोप्लाज्मा माइकोडिस में अंतर्वेशित कर दिया गया. इस तरह एक सर्वथा नयी जीवाणु प्रजाति का जन्म हुआ और

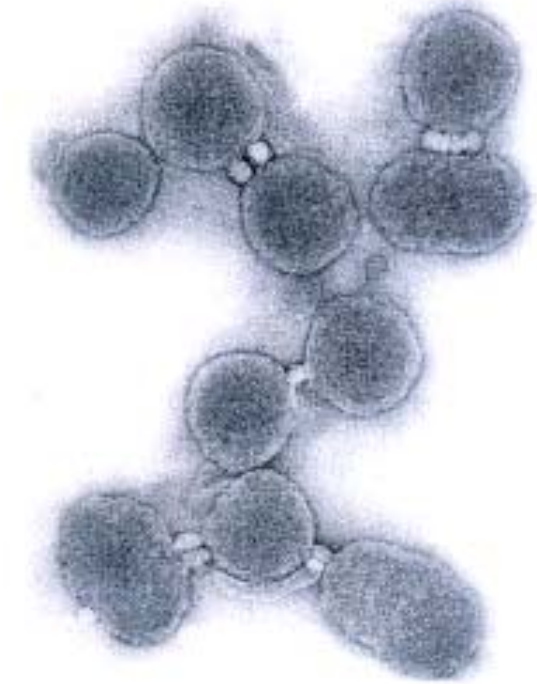

प्रयोगशाला में निर्मित कृत्रिम जीवाणु

यीस्ट कोशिका

उसने अपनी प्रतिकृतियां भी बनानी शुरू कर दी. जीवाणु कोशिका को विभाजित होने में 20 मिनट का समय लगता है. एक सीमा तक विभाजित होने के बाद उसके विभाजन को रोक दिया गया.

इस तरह प्रयोग अंततः सफल हुआ. पहले इस संश्लेषित जीनोम वाली कोशिका को सिंथेटिका कहा गया, लेकिन विज्ञान पत्रकारों ने इसे बदल कर सिंथिया कर दिया. स्वयं इसके निर्माता क्रेग वेंटर को भी यही नाम पसंद है. यह काम इतना बड़ा था कि सुपर कंप्यूटर की मदद के बिना संभव ही नहीं था. वेंटर की टीम को डीएनए की भाषा को कंप्युटर की भाषा में बदलने का श्रेय जाता है.

प्रयोगशाला में कृत्रिम जीव के निर्माण के लिए क्रेग ने जिस तकनीक का सहारा लिया है उसे 'टॉप डाउन' का नाम दिया गया है. उन्होंने इसके लिए माइकोप्लाज्मा जेनेटेलिया नामक जीवाणु को चुना है. जिसमें जीनों की संख्या मात्र 521 होती है. इसके लिए उनकी योजना कुछ इस प्रकार थी कि वे एक-एक कर इसके जीनों को निकालेंगे और उस

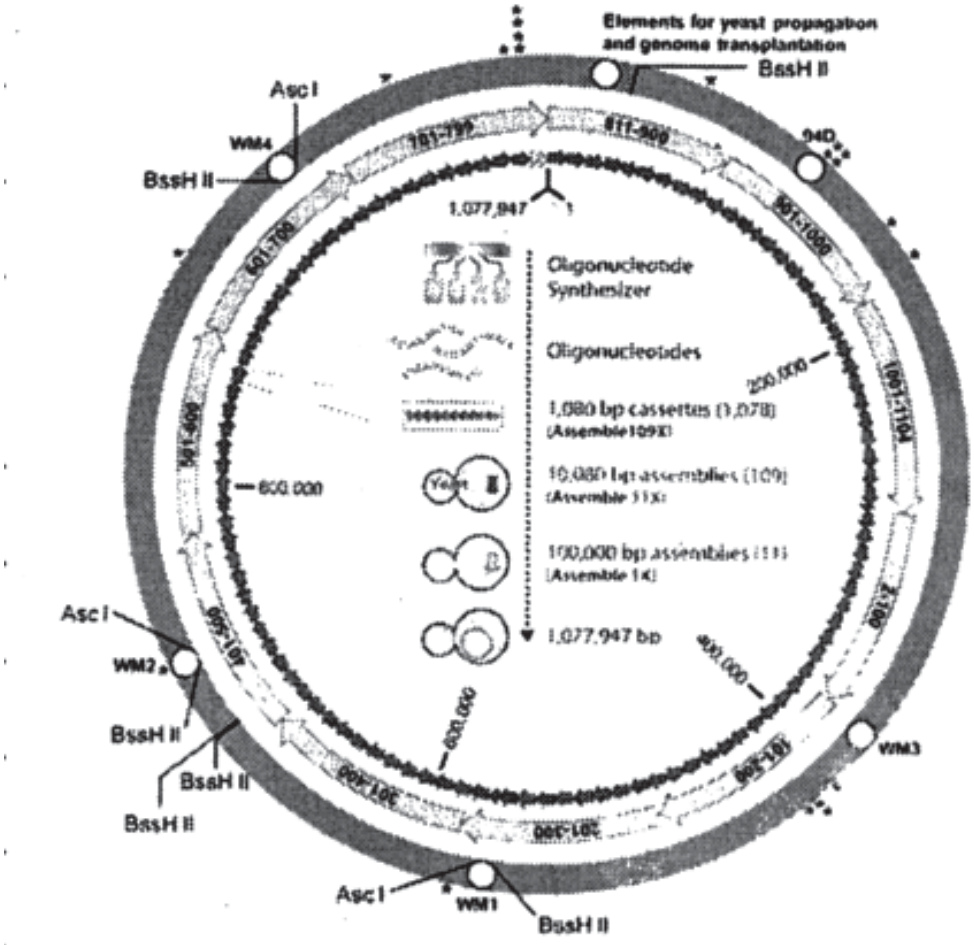

कृत्रिम जीवाणु का जीनोम

संख्या तक जा पहुंचेंगे, जिसके आगे वह जीवाणु मृत हो जायेगा. अब इस न्यूनतम जीन संघठन को एक दूसरे लगभग समान जीवाणु माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम के जीनोम को हटाकर, वहां प्रतिस्थापित किया जाएगा. इन जीवाणुओं में कोशिका भित्ति नहीं होती, इसलिए जीन प्रत्यारोपण सरलता से हो जाता है. इसके बाद बाह्य मनोवांछित जीन लक्ष्य जीवाणु मे डाले जाते हैं, जिसमें एक तो 'प्रतिजैविक औषधि रोधी' होगा और दूसरा 'नीली आभा' उत्पन्न करने वाला होगा. लक्ष्य जीवाणु इन नये जीनों से प्रत्योरोपित बाह्य जीनोम की प्रतिकृतियां बनाना शुरू कर देगा और नीली आभा वाले जीवाणुओं की एक बड़ी फौज

भारतीय वैज्ञानिक संजय वाशी और राधा कृष्णकुमार

तैयार हो जाएगी. क्रैग का कहना है कि इनका उपयोग पर्यावरण में मौजूद हरित गैसों और समुद्र में बिखरे तैलीय प्रदूषकों के अवशोषक के लिए होगा. पर कौन कह सकता है कि एक दिन ये नीले जीवाणु मानव के लिए अनिष्टकारी नहीं बन जायेंगे.

डॉ.क्रैग वेन्टर ने बताया कि इस नये संश्लेषित जीवाणु के डीएनए कोड में उनकी टीम के सदस्यों के नाम की रासायनिक वर्णमाला और जेम्स जोयसी और दूसरे साहित्यकारों के तीन उद्धरण वाटर मार्क के रूप में छुपाये गये हैं. यह जेनेटिक वाटर मार्क ही वास्तव में इस नव जीवाणु प्रजाति पर क्रैग वेन्टर और उनकी टीम के स्वामित्व का दावा है. ये वाटर मार्क वस्तुतः कूट संदेश हैं, जो डीएनए के क्षारक युग्मों के रूप में हैं. ये ही प्राकृतिक और मानव निर्मित जीवों के जीनोमों में अंतर का आधार बनेंगे.

वेन्टर की टीम को कई बार असफलताओं का सामना भी करना पड़ा. जब कृत्रिम डीएनए के छोटे छोटे टुकड़ों को जोड़ा जा रहा था, तो पहले दस दस हजार के अक्षरों वाले छोटे टुकड़ों को ईस्ट कोशिका में अंतर्वेशित किया गया. उसके बाद 100,000 अक्षर वाले टुकड़े जोड़े गए. इस तरह माइकोप्लाज्मा माइकोडिस के संपूर्ण जीनोम की रचना की गई. जब जीनोम पूरा बन गया, तो उसे माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम में डाला गया लेकिन उसमें जीवन के कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़े. फिर से जांच शुरू हुई कि गलती कहां रह गयी. पता चला कि पूरे जीनोम में मात्र एक अक्षर की गलती रह गयी थी. इस छोटी सी गलती को सुधारने में पूरे तीन महीनों का समय लगा. इसके बाद माइकोप्लाज्मा कैप्रिकोलम अपने ही नहीं बल्कि माइकोप्लाज्मा माइकोडिस के प्रोटीन भी बनाने लगा.

क्रैग वेन्टर की 24 लोगों की जिस टीम ने इस महत्वपूर्ण आविष्कार को आकार दिया है, उसमें तीन भारतीय वैज्ञानिक भी शामिल हैं. जिनके नाम हैं - संजय वाशी, राधा कृष्णकुमार और प्रशांत परमार. डॉ. संजय गुजरात के सरी बुजरंग के हैं. उनकी पत्नी रीता सूरत की रहनेवाली हैं. उन्होंने 2003 में जे.क्रैग वेन्टर इंस्टीट्यूट (रॉकविले) में कृत्रिम जीव विज्ञान समूह में वरिष्ठ वैज्ञानिक का कार्यभार संभाला और वेन्टर के कृत्रिम कोशिका निर्माण अभियान से जुड़ गए. क्रैग वेन्टर टीम की दूसरी भारतीय वैज्ञानिक राधा कृष्णकुमार भारत के कर्नाटक राज्य की हैं. प्रतिभाशाली राधा कृष्णकुमार क्रैग वेन्टर के अनुसंधान कार्य में बेहद दिलचस्पी रखती हैं और आजकल वे वहां स्टॉफ साइंटिस्ट के पद पर कार्यरत हैं. क्रैग वेंटर के कृत्रिम जीन निर्माण अभियान के तीसरे भारतीय सदस्य प्रशांत परमार भी सूरत (गुजरात) से हैं. क्रैग वेन्टर इंस्टीट्यूट में वे रिसर्च एसोसिएटस् के रूप में जुड़े हुए हैं.

हालांकि क्रैग वेन्टर का नया संश्लेषित जीवाणु इस समय चर्चा में है, लेकिन पहला जीन अभियान्त्रिक जीवाणु बनाने और पेटेन्ट कराने का श्रेय प्रोफेसर आनंद मोहन चक्रवर्ती को जाता है, जो किसी भी जीवित प्राणी के लिए मिला पहला पेटेन्ट है. वर्ष 1971 में उन्होंने स्यूडोमोनास जीवाणु की एक नई तेल भक्षी प्रजाति का निर्माण किया था. जिसका नाम 'सुपर बग' रखा गया था. प्रो. चक्रवर्ती उन दिनों जनरल इलेक्ट्रिकल कंपनी, न्यूयार्क के रिसर्च एंड डेवलपमेंट सेंटर में कार्यरत थे. उस समय तैलीय विघटन के लिए स्यूडोमोनास जीवाणु की चार प्रजातियां ज्ञात थीं. लेकिन ये प्रजातियां तेल पर छिड़के जाने पर आपस में संघर्ष करने लगती थीं. इसलिए उन्होंने तीन जीवाणुओं के तैलीय विघटन के लिए आवश्यक जीनोंवाली माला के आकार की आनुवांशिक इकाइयों-प्लास्मिडों को एक चौथे जीवाणु में स्थापित किया. इसके बाद इस पर अल्ट्रा वॉयलेट किरणों की बौछार कर प्लास्मिडों का एक पुनर्संगठित बड़ा छल्ला बनाने की प्रक्रिया

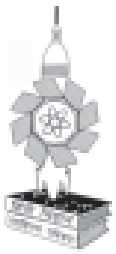

के जरिये उन्हें एक तेल भक्षी सुपर बग बनाने में सफलता मिल गयी, जिसे अब बुर्खोल्डेरिया के नाम से जाना जाता है. 16 जून 1980 को इस मानव निर्मित जीवाणु को अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद पेटेन्ट मिल पाया.

सच तो यह है कि प्रयोगशाला में मानव निर्मित जीव को अस्तित्व में लाने के प्रयास तो मिलर-यूरे के 1952 के उस प्रसिद्ध प्रयोग से ही शुरू हो गए थे, जिसमें उन्होंने कुछ रसायनों को मिला कर अमीनो अम्ल उत्पन्न करने का दावा किया था. यद्यपि इस प्रयोग को सत्यापित नहीं किया जा सका, मगर आज की 'संश्लेषी जैविकी' ने मानो प्रयोगशाला में नये जीवों के निर्माण की मनुष्य की चिर-अभिलाषा को पूरा कर दिया है. संश्लेषी जैविकी वास्तव में अभियांत्रिकी के सिद्धान्तों को जैविकी पर लागू करने का प्रयास है. इसने दिखाया है कि जिस पल कोशिका के डीएनए या तथाकथित सॉफ्टवेयर में कुछ भी परिवर्तन किया जाता है, वह कोशिका इस परिवर्तन के अनुसार काम करने लगती है. इससे पहली बार यह सिद्ध हुआ है कि अगर एक कंप्यूटर प्रोग्राम आनुवंशिक कोड के रूप में बना कर किसी कोशिका में प्रत्यारोपित कर दिया जाए तो वांछित लक्षणों वाली कोशिका प्राप्त की जा सकती है. कहने का तात्पर्य यह कि अब हम अपनी इच्छानुसार कोशिका बना सकते हैं.

क्रैग वेन्टर के प्रयोग की सफलता इस दिशा में संभावनाओं के अनंत द्वार खोलती है. उनके अनुसार इस प्रौद्योगिकी में असीम संभावनाएं हैं. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को बदल दिया है. नए रसायन या खाद्य संघटक बनाना और जल शुद्धिकरण इन्हीं संभावित लाभों में से एक हैं. वह दिन दूर नहीं जब कि मनुष्य के द्वारा संशोधित जीनोम से निर्मित पेड़ पौधे विद्युत या डीजल का भंडार होंगे और हमें प्राकृतिक तेल के भंडारों पर निर्भर नहीं होना पड़ेगा. पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए संशोधित जीनोम युक्त जीवाणु होंगे. खुद हमारे शरीर के भीतर जीवाणु रूपी रामबाण से पहुंची औषधियां, क्षण भर में दुःख दर्द का निवारण कर देंगी. नोवारटिस नामक एक बहुत बड़ी औषधि निर्माता कंपनी ने नवीन वैक्सीन जैसे कि फ्लु वैक्सीन विकसित करने के लिए एक अनुबंध पर हस्ताक्षर किए हैं, क्योंकि इस तकनीक के कारण वैक्सीन बनाने में लगने वाले समय में लगभग 99 प्रतिशत की कमी हो जाएगी. निकट भविष्य में इस तकनीक का प्रयोग यीस्ट जैसे एककोशिकीय जीवों पर किया जा सकेगा, जो व्यापारिक स्तर पर पर इथेनॉल का उत्पादन कर सकेंगे. आज जिस किसी भी पदार्थ का व्यापारिक उत्पादन हो रहा है, भविष्य में वह संश्लेषी जैविकी के हवाले होगा.

आज आनुवंशिक रूप से रूपांतरित जीवों का व्यापक इस्तेमाल शुरू हो चुका है और इनसे जुड़े नित नये विवाद भी जन्म ले रहे हैं. क्योंकि यह तकनीक किसी दोधारी तलवार से कम नहीं है. एक ओर जहां संश्लेषित इन्सुलिन (पेटेन्ट,1982) और हिपैटाइटिस के टीके, (पेटेन्ट, 1987) हैं तो वहीं कई जीन संशोधित फसलें / खाद्य सामग्री आज उपलब्ध हैं. बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसे संश्लेषित नये जीनों से धन कमाने की जल्दी में है. इन जीवों से बड़े पैमाने पर बने वैक्सीन, ईंधन के नये ऊर्जा स्रोत और कई औषधीय उत्पाद बाजार में पहुंचेंगे. **इसी तरह एक खतरा यह भी है कि कंप्यूटर वाइरसों की तरह उन्हें बनाने और फिर उनसे बचने के लिए एंटीवाइरस सॉफ्टवेयर बेचने की तरह, भविष्य में मानव रोगों के नए नए सूक्ष्मजीव बनाने और उनके टीके बेचने का अरबों रुपयों का नया व्यापार चल पड़ेगा.** ऐसा भी हो सकता है कि कोई ऐसा घातक विषाणु बनाया जाए जो समस्त मानव जाति का ही विनाश कर दे.

डॉ.वेन्टर खुद सिन्थेटिक जीनोमिक्स नामक एक ऐसी कंपनी के संस्थापक हैं, जिसने संश्लेषित जीवों के निर्माण के लिए 30 मिलियन डॉलर की मदद क्रैग वेन्टर इन्स्टीट्यूट को दी है. इस कंपनी ने एक्सॉन मोबिल कार्पोरेशन से 600 मिलियन डॉलर का एक अनुबंध नये शैवाल के निर्माण के लिए किया है, जो वातावरण की कार्बन डाइ ऑक्साइड को अवशोषित कर उसे तैलीय ईंधन में बदल कर वातावरण को गरम न होने में मदद पहुंचायेगी. ईंधन के नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों पर जिन दूसरी कंपनियों की नजरें लगी हैं, उनमें प्रमुख हैं : कैलीफोर्निया की एमायरिस बायोटक्नोलॉजीज़, सैनफ्रांसिस्को की एलएस 9 और कैम्ब्रिज की जाउले अनलिमिटेड. इन कंपनियों के निजी स्वार्थों के कारण इनके बीच छिड़ी प्रतिस्पर्धा को देखते हुए कई पर्यावरण मित्र संगठनों ने संश्लेषी जैविकी के प्रयोगों पर ही पाबंदी लगाने की मांग की है. दूसरी ओर हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के शोधकर्त्ताओं के एक अलाभकारी संगठन, बायोब्रिक फाउन्डेशन ने संश्लेषित जीवों की तकनीक पर पेटेन्ट का विरोध किया है. डा. क्रैग वेंटर ने तो यह भी विश्वास दिलाया है कि संश्लेषित डीएनए वाला जीवाणु प्रयोगशाला से बाहर नहीं आने दिया जाएगा.

जो भी हो, आज यह कहना कठिन है कि सृजन का नया खेल भविष्य में क्या गुल खिलाएगा. इतना तो स्पष्ट है कि मानव ने अब सृजनकर्ता बनने की ठान ली है, लेकिन इस तकनीक का दुरूपयोग ऐसे सुपरबग को भी जन्म दे सकता है, जो कल हमारे अस्तित्व के लिए ही चुनौती बन जाए.

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में तृतीय पुरस्कार प्राप्त

राई अरगट-अभिशाप या औषधि

- डा.सविता गुप्ता -
डी-2/78, विनीत खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226 010 (उ.प्र.)

राई अरगट, विश्व भर में कवक द्वारा प्रभावित फसलों के रोग और उससे उत्पन्न खाद्य समस्या के द्वारा उत्पन्न अंधविश्वास एवं विज्ञान के मध्य अर्न्तद्वन्द का एक अनूठा उदाहरण है. इसका प्रभाव अंध युग से मध्यकालीन युग तक सर्वाधिक रहा और समस्त यूरोप इससे पीड़ित रहा. यह फ्रांस की क्रांति का भी एक मुख्य कारण बना.

अरगट का प्रथम लिखित विवरण एसायरीएन्स द्वारा लगभग 600 ई.पू.का है. रोमन इतिहासकार, ल्यूक्रेटीयस (98-55 ई.पू.) ने अरगोटिस्म (अरगट के विष के प्रभाव से उत्पन्न रोग) को 'ईगनिस सेक्र' अर्थात 'होली फायर' या 'पवित्र अग्नि' कहा. अरगोटिस्म का यह नाम मध्यकालीन युग में अत्यधिक प्रचलित रहा और इस काल में ही अरगोटिस्म का प्रकोप निरंतर लगभग 1000 वर्षों तक चलता रहा.

राई (सीकेल सेरीएल) विश्व में जहां कहीं भी सभ्यता विकसित हुई, वहां पायी गयी और भोजन का एक प्रमुख अंग रही. यद्यपि, राई को भोजन के लिए उगाने के प्रमाण लगभग 5वीं शताब्दी से पहले के नहीं मिलते हैं, परंतु इसका भोजन में प्रयोग आदि काल से होता रहा है.

अरगट क्या है:- यह घास कुल के पौधों जैसे, एग्रोपाइरोन, एलाईमस, एग्रोस्टिस, पोआ, साइनोडाल आदि, तथा फसलों जैसे गेहूं, राई, बाजरा, ज्वार, जौ तथा गन्ने आदि पर लगनेवाली एक सामान्य बीमारी है, जो विश्व भर में पायी जाती है. राई विशेषतः इसके लिए अति संवेदनशील है. प्राचीन काल से 19वीं शताब्दी तक अरगट को पौधों की ही एक संरचना समझा जाता था, क्योंकि अरगट, राई के साथ हमेशा ही मिश्रित रहा. प्राचीनकाल में सर्वप्रथम बनाए गए वनस्पतियों के चित्रों में भी (चित्र-1) राई के साथ अरगट दृष्टिगोचर होता है.

Secale Luxvrians

(चित्र-1) राई का प्राचीन चित्र

अरगट मुख्यतः राई की बाली पर लगने वाला रोग है जिसमें बाली पर दानों के स्थान पर गहरे भूरे या काले रंग वाले परंतु राई के दानों से 5-10 गुना बड़े, मुर्गे की कलगी या हुक की तरह मुड़े हुए, कठोर स्केलेरोशिया बनते हैं जो दूर से ही राई के दानों के मध्य दिखायी देते हैं. सबसे बड़ा अरगट 1-5 से.मी. तक पाया गया है (चित्र-2).

(चित्र-2) राई पर अरगट

19वीं शताब्दी तक अनेक बीमारियों का कारण ज्ञात नहीं था, और अज्ञानवश लोग उसे भूत प्रेत, या जादू टोना का प्रकोप मानते थे. अरगोटिस्म से प्रभावित रोगी के लक्षण मांसपेशियों में ऐंठन, शरीर में कंपन, हिस्टीरिया या मिर्गी, गर्दन ऐंठना, परालौकिक अनुभव, हाथ पैर अकड़ना, चीखना, आदि है. अरगोटिस्म के लक्षण स्केलेरोशिया में पाए जाने वाले अल्कलायड की मात्रा और उसके प्रकार पर निर्भर करते हैं. इस विष के लक्षण विभिन्न मनुष्यों पर अलग-अलग होते हैं.

अरगोटिस्म के लक्षण :- अरगोटिस्म में दो प्रकार के लक्षण पाए जाते हैं :-

ऐंठन ठोंठी (Convulsive Ergotism) : प्राचीन अभिलेखों के अनुसार पेरिस (सन 945) में प्रथम महामारी हुई. इसके मुख्य लक्षण नसों की शिथिलता थी, जिसके कारण रोगी शारीरिक विकृति से ग्रस्त हो जाते थे. ये रोगी दर्द से ऐंठते, कांपते और शरीर हिलाते थे, जिसमें गर्दन टेढ़ी होने, या अपने स्थान से भटक जाने आदि लक्षण थे. कुछ रोगियों में मांसपेशियों की ऐंठन, भ्रम, दृष्टिभ्रम, नासमझी आदि के साथ शरीर का हिलना, नाचना, कूदना, चीखना आदि लक्षण (जो जादू टोने के भी कारण माने जाते हैं) दिखाई देते थे. कुछ रोगियों को शैतान के बोलने की ध्वनि भी सुनाई देती थी.

(2) कोथ ठोंठी (Gangrenous Ergotism) : इस लक्षण का प्रथम लेखा सन् 857 में जर्मनी में मिलता है, पर लक्षण फ्रांस में ज्यादा पाये गये. इस रोग के प्रमुख लक्षण थे, रोगियों के हाथ, पैर की अंगुलियां एवं कान के बाह्य किनारे सूखना, जो गैंगरीन होने और अंग सड़ने आदि के प्रकार थे. अधिक गंभीर रोगियों के हाथ और पैर काटने पड़ जाते थे. कोथ रोग रक्त बहाव कम होने से, अंगों में संक्रमण, दर्द, जलन आदि से प्रारंभ होकर बाद में हाथ पैर की उंगलियां काली, सूखी होकर ममीफाइड हो जातीं हैं, और स्वतः झड़ जाती हैं. यदि इन अंगों को काटा नहीं जाता है तो कोथ शरीर में और ऊपर की ओर बढ़ सकता है. यह रोग दुधारू पशुओं में भी सामान्य था (चित्र-3). इसमें अंगों में असह्य जलन होती थी. अतः इस रोग को 'होली फायर' या 'सेन्ट एन्थोनी फायर' (चित्र-4) नाम दिया गया.

(चित्र-3) कोथ से प्रभावित अंगुलिया एवं तलवा

(चित्र-4) जर्मनी में सन् 1215 में लकड़ी पर बने सेन्ट एन्थोनी

अरगोटिस्म की उत्पत्ति : यह फफूंद (क्लेविसेप्स परपुरिया) राई के ऊपर, अन्य अनाजों की तुलना में, अधिक पायी जाती है. राई, गेहूं के साथ खेत में उगती है तथा गेहूं के कटने पर इसकी खेत से मुख्य फसल लेते है. मध्य युग के प्रारंभिक काल में, जो आज का पूर्वी यूरोप तथा पश्चिमी रूस है वहां सन् 857 में राइन वैली में पहली बार कोथ ठोंठी के प्रकोप का वर्णन मिलता है. उस समय इस रोग के होने का कारण ज्ञात नहीं था, तथापि ईश्वर प्रदत्त कष्ट मानकर इसे होली फायर नाम दिया गया.

यूरोप में, अरगट के कारण कई बार महामारी के प्रकोप से हजारों लोगों की मृत्यु हुई. बच्चे और कमजोर मनुष्य इससे ज्यादा प्रभावित होते थे. सन् 1039 में, फ्रांस में, इसका प्रकोप हुआ तब गेस्टन डी ला वैल्लोयर ने अरगोटिस्म के रोगियों के लिए एक अस्पताल बनाया और उसे 'सेन्ट ऐन्थोनी' को समर्पित किया, तबसे इस बीमारी

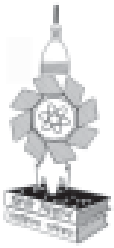

का नाम 'सेन्ट एन्थोनीस फायर' पड़ गया (चित्र-4). इस रोग का प्रमुख लक्षण अत्यधिक जलन थी. उस समय, इस रोग की विभीषिका का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि लगभग 370 इस प्रकार के अस्पताल खोले गए, जहां इन रोगियों का उपचार होता था. इन्हें लाल रंग से रंगा गया जिससे अनपढ़ भी इन्हें पहचान कर, औषधि ले सकें. जो रोगी यहां उपचार के लिए आते थे, उन्हें पौधों से निकाली गई दवाएं, जो रक्त संचार बढ़ाती हैं, लेप की जाती थीं तथा खाने के लिए राईयुक्त ब्रेड उपलब्ध न होने के कारण वे स्वस्थ भी हो जाते थे, परंतु घर वापस आकर वह पुनः बीमार हो जाते थे, क्योंकि रोग का कारण अज्ञात था. अरगोटिस्म और कुछ अन्य रोगों के लक्षण समान थे. अतः हमेशा अरगोटिस्म ही रोग का कारण था, यह सिद्ध नहीं हो सका. फ्रांस और जर्मनी से उपलब्ध विवरणों से ज्ञात होता है कि सन् 900 से 1300 तक लगभग प्रत्येक पांचवे या दसवें वर्ष में अरगोटिस्म भयंकर महामारी के रूप में आया. उन दिनों फ्रांस अनेक महामारियों का केंद्र रहा, क्योंकि राई वहां के गरीबों का मुख्य भोजन था और गीला, ठंडा मौसम राई अरगट के उत्पन्न होने और फैलने के लिए अनुकूल था. भीगे मौसम में राई के पुष्प ज्यादा समय तक खुले रहते थे. जिससे रोग कारक कवक द्वारा राई के पुष्पों को संक्रमित करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था. सन् 990 से 1129 के मध्य फ्रांस में लगभग 50,000 लोग सेन्ट एन्थोनी फायर से मर गये. सन् 1597 के बाद ही चिकित्सक राई अरगट का इस बीमारी से संबंध खोज पाये.

अरगोटिस्म एवं डायन की खोज : जब, जन साधारण में विषाक्तता के लक्षण अत्यधिक प्रकट होने लगे, तो लोगों ने इसे 'डायन और जादू टोना' का प्रभाव समझा और इसकी खोज में लग गए. 20 जनवरी, सन् 1692 में, सलेम, मेसाच्युसेट्स (अमेरिका) में डायन की खोज प्रारंभ हुई. 11 वर्ष से नीचे की 3 बालिकाओं में ऐंठन ठोंठी के लक्षण प्रकट होने शुरू हुए. सलेम के लोगों के लिए उनका व्यवहार अनोखा था. वे भयंकर तरीके से चीख रही थीं, उनकी आंखें पलट गयीं और वे कांपते हुए, हिलते हुए, ऐंठ रहीं थीं. उन्हें डाक्टर को दिखाया गया, क्योंकि उसका कोई उपचार नहीं था, एक माह पश्चात डाक्टर ने निर्णय दिया कि लड़कियां 'जादू टोने' से ग्रस्त हैं. शीघ्र ही अन्य लड़कियों में भी यह लक्षण प्रकट हुए. यह संक्रामक रोग से भिन्न था अतः उन्हें लगा कि यह एक 'जादू टोना' है. यह ज्ञात करने के लिए कि उन्हें किसने मोहित किया था 'डायन केक' बनाया गया (एक दूसरा जादू टोना) जिसको कि खाकर उन्हें मोहित करनेवालों का नाम पता चल जाता. उन्होंने 3 स्त्रियों के नाम बताएं, जिन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया. उनमें से एक ने कहा कि सलेम में डायनें षडयंत्र कर रही हैं इसके उपरांत वहां के अधिकतर लोगों में हिस्टीरिया के लक्षण दिखाई दिए. कुछ और लोगों ने डायन से प्रभावित होने और उन्हें देखने की बात स्वीकारी और 150 लोगों को कैद कर लिया गया, जिनमें से वर्ष के अंत तक 20 लोग तो मार दिये गये और 5 कैद में मर गये. ये अधिकतर वे लोग थे जो रोगियों की सेवा कर रहे थे (डॉक्टर या पौधों से दवा बनानेवाले व्यक्ति). मूर्खतावश इन्हीं लोगों को डायन माना गया, क्योंकि वहां ऐसी धारणा थी कि जो रोग हरण करने की शक्ति रखता है, वही रोग पैदा करने की क्षमता भी रखता होगा. उदाहरण के लिए बांदा (मिस्टलटो) एक प्रकार का परजीवी पौधा है, जिसमें ऐंठन ठोंठी को दूर करने की क्षमता है. सलेम के लोगों की डायरी का अध्ययन करने पर पता चला कि 1691-92 की राई की फसल अरगट से अत्यधिक प्रभावी थी, क्योंकि सलेम का मौसम भीगा और ठंडा था जो अरगट के पैदा होने और बढ़ने के लिए लाभदायक था. जबकि 1692 की ग्रीष्म ऋतु में मौसम सूखा था जिससे अचानक इस जादू टोने का अंत हो गया.

29 अक्टूबर सन् 1692 को, मेसाच्युसेट्स के गर्वनर सर विलियिम फिप्स के आदेश से, सलेम जादू टोना ट्रायल को अधिकारिक रूप से समाप्त माना गया.

राई अरगट का विश्व में, प्राचीन काल से अब तक मानव सभ्यता पर, अन्य कवकों की तुलना में सर्वाधिक प्रभाव रहा है. इसके विभिन्न भाषाओं में अनेक नाम रखे गये. सबसे अधिक नाम जर्मन भाषा में हैं जहां इसे 62 नामों से जाना जाता है, तथा ऐसे ही फ्रेंच में 25, डच में 21, इटेलियन में 14 तथा अंग्रेजी में 7 नाम और भी हैं.

अरगोटिस्म से संबंधित ऐतिहासिक घटनाएं : आज के यूरोप की भौगोलिक सीमाओं को तय करने में भी 'होली फायर' महामारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है. 8वीं और 9वीं शताब्दी के बीच के 100 वर्षों में **पोप लियो** III के द्वारा स्थापित **'होली रोमन एम्पायर'** होली फायर का मुख्य केंद्र रहा. यह यूरोप का वह भाग था जहां फ्रेंक निवासी बसे हुए थे और अरगट से प्रभावित अनाज की ब्रेड खाकर हजारों लोग मर रहे थे. उसी समय **स्केन्डीनेविया** से मनुष्यों की प्रजाति **नार्थमेन (विकीन्गस)** ने होली रोमन एम्पायर पर आक्रमण किया. उनके शरीर बलिष्ठ और लंबे चौड़े थे, तथा उनमें लड़ने की योग्यता थी. उन्होंने होली फायर से ग्रसित तटीय इलाकों के निकट की, फ्रेन्क जनता को सरलता से हरा दिया.

इसके पूर्व भी **विकीन्गस** होली रोमन एम्पायर पर

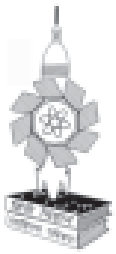

अनेक बार आक्रमण करके दबाव बना चुके थे. उनके लगातार आक्रमणों से प्रभावित होकर चार्ल्स III को होली रोमन एम्पायर का ताज सन् 887 में छोड़ना पड़ा और एम्पायर दो राज्यों में बंट गया, पश्चिमी फ्रेंक का राज्य 'फ्रांस' बना और पूर्व फ्रेंक का राज्य 'जर्मनी' बना. इस पूरे प्रकरण के दौरान नार्थमेन अप्रभावित रहे क्योंकि वह राई ब्रेड नहीं खाते थे. सन् 911 तक नार्थमेन का पूर्ण वर्चस्व फ्रांस के उत्तर पश्चिम तटीय भागों पर हो गया था और उन्हें फ्रांस के राजा ने नोरमेन्डी कहा. जिन लोगों ने नोरमेन्डी बनाया था उन्होंने फ्रेन्च भाषा और सभ्यता अपनायी तथा आज नोरमेन्डी फ्रांस का एक भाग है.

सन् 1722 में 'पीटर-द-ग्रेट' को कान्स्टेन्टिनोपोल (इस्तानबुल) में वोल्गा नदी के मुहाने पर रोक लिया गया (जब वह गर्म बंदरगाह की खोज में निकला था) क्योंकि उसके अश्व एवं सैनिक विषाक्त भोजन खाने से अरगोटिस्म से प्रभावित थे और युद्ध में हार गये.

थुलर की खोज : अरगोटिस्म के कारण की खोज सन् 1670 में फ्रेंच फिजिशियन 'थुलर' के द्वारा हुई. उन्होंने देखा की यह रोग संक्रामक रोगों से भिन्न है और शहरों की अपेक्षा गांवों में, जहां अधिकतर गरीब लोग रहते थे वहां अधिक है. एक ही परिवार में कुछ या सभी व्यक्ति पीड़ित हैं, परंतु पड़ोस में लोग स्वस्थ हैं, अतः यह छूआछूत की बीमारी नहीं थी. सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि धनवान लोग इस बीमारी से पूर्णतः मुक्त थे. अतः यह सोचना गलत था कि शुद्ध हवा, सूरज की किरणें, या पानी का स्रोत बीमारी का कारण है, और उन्हें लगा की भोजन ही इस रोग की जड़ है. रोगियों के घरों में उन्होंने देखा कि पोर्क या बीन्स के साथ हमेशा राईयुक्त ब्रेड परोसी जाती थी. कुछ लोगों ने आलू खाना शुरू कर दिया था, अतः पहले लगा, आलू इसका कारण है, परंतु आलू से बीमारी नहीं हो सकती थी क्योंकि यूरोप में यह बीमारी बहुत पुरानी थी. थुलर ने देखा कि किसान अपना माल बाजार में लाते हैं और शहर के लोग भैंस का मांस, पोल्ट्री, ट्रफल तथा सफेद ब्रेड खाते हैं जिससे उन्हें 'सेन्ट एन्थोनी फायर' की पहेली सुलझाने में सहायता मिली. एक दिन वह राई के खेत से गुजर रहे थे जहां अरगट भी लगी थी. फ्रेंच किसान इसे 'कॉक स्पर' के नाम से जानते थे परंतु विषैला नहीं समझते थे. थुलर को पता था कि शिशु जन्म में इसका प्रयोग किया जाता है. उन्हें यह भी पता था कि कोई भी औषधि अधिक मात्रा में लेने पर विष का कार्य करती है. उन्होंने अपने अनुभवों एवं एकत्र किए आंकड़ों से पाया कि जिन वर्षों में अरगट का प्रकोप अधिक हुआ 'होली फायर' बीमारी ज्यादा हुई और हजारों लोग मर गये. परंतु उनकी इस खोज के पश्चात भी वे लोगों को समझा नहीं पाये कि होली फायर का कारण अरगट है, और इसके पश्चात भी लगभग 200 वर्ष बाद ही यह समझ बनी कि अरगट एक कवक है जो अरगोटिस्म पैदा करती है.

लुइस तुलासने की खोज : सन् 1853 में कवक वैज्ञानिक लुईस तुलासने ने राई अरगट बीमारी का कारण फफूंद क्लेवीसेप्स परपुरिया को बताया, और उसका जीवन चक्र खोजा. उनके अनुसार इस बीमारी का कारण फफूंद है, राई नहीं. राई में पाए जानेवाले काले अरगट फफूंद की वह अवस्था है, जिसमें वह प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित रहती है. इस कवक का जीवन चक्र तथा राई अरगट बीमारी का रोग चक्र एक समान है. यह घास के बीज उत्पादन में सबसे विकट समस्या है.

राई के पौधे पर रोग के लक्षण : रोग के लक्षण पौधों पर, बाली बनने के उपरांत ही दिखाई देते हैं. (चित्र-5) रोग सर्व प्रथम छोटी-छोटी गुलाबी या शहद की बूंदों की तरह पुष्प वृत्तों पर दिखाई देता है, जिस पर कीट मंडराते हैं. यह इस रोग का मुख्य लक्षण है इसे, 'हनी ड्यू' कहते हैं. इस द्रव पदार्थ में कवक की अलैंगिक जनन के द्वारा उत्पन्न कोनिडियम होते हैं, जो कीटों द्वारा फैलकर नए पुष्पों को प्रभावित करते हैं. कुछ समय पश्चात यह बूंदे सूख जाती हैं और इसके 8-10 दिन उपरांत बालियों पर तुषों के मध्य से गहरे भूरे, काले, मुर्गे की कलगी या हुक जैसे मुड़े, स्केलेरोशिया दिखायी देते हैं जो आकार में राई के दानों से कई गुना बड़े होते हैं.

रोगजनक : क्लेवीसेप्स परपुरिया : यह एस्कोमाइस्टिस कवक है जो राई, घास तथा अन्न वाली फसलों पर विश्व भर में पायी जाती हैं. क्लेवीसेप्स की प्रजातियां जैसे **क.फ्यूजीफारमिस** बाजरे पर, तथा **कं.पेसपेली** डेलिस घास पर पायी जाती है. इस घास की 200 प्रजातियां जो इससे विशेषतया प्रभावित होती हैं. क.परपुरिया की 3 प्रजातियां हैं, जो पौध विशिष्ट हैं और इसी गुण के कारण एक दूसरे से भिन्न हैं -

G-1 खेत में तथा बड़े चारागाहों में, घास पर

G-2 पहाड़ों एवं जंगलों की नम आबोहवा में, घास पर

G-3 **क.परपुरिया वै.स्पारटीनी** - लवणयुक्त दलदली भूमि में, घासों (स्पारटिना, डिस्टीक्लीन्स) पर

जीवन चक्र : कवक का जीवन चक्र 3 अवस्थाओं में पूर्ण होता है - (1) हनी ड्यू या स्फेसिलिया अवस्था (2) स्केलेरोशियम (3) एसिजिरस अवस्था **(चित्र-5)**

राई पुष्पों पर रोग जनक पदार्थ के अलैंगिक जनन द्वारा कोनिडियम बनते हैं जो एक कोशिका वाले, अंडाकार

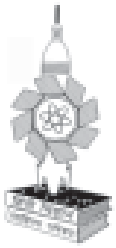

तथा छोटे होते हैं और नए पुष्पों पर कीटों द्वारा पहुंचकर अंकुरित होकर जनन नलिकाएं बनाते हैं जिन पर द्वितीय कोनिडियम बनते हैं. स्केलेरोशियम भूमि में बीज के साथ पड़े रहते हैं तथा यह बाहर से गहरे और अंदर से हल्के रंग के होते हैं. यह स्यूडोपेरेनकाइमेट्स कोशिकाओं के बने होते हैं और अनुकूल परिस्थितियों में भूमि में अंकुरित हो जाते हैं. एसिजिरस अवस्था में, स्कलेरोशियम के अंकुरण से अनेक छत्रिकावृंत (Stripes) बनते हैं, जिसमें अनेक परिपक्व (एस्कस) पीठिकाओं में एस्कस बनते हैं. एस्कस में एस्कोस्पोर बनते हैं जो परिपक्व होने पर एस्कस की भित्ती तोड़कर अत्यंत वेग से बाहर निकलते हैं और सीधे राई पुष्पों पर पहुंचकर अंकुरित हो इसके पुष्पों को संक्रमित करते हैं. बड़े तथा भारी स्केलेरोशियम में अंकुरण अच्छा होता है और अनगिनत ऐस्कोस्पोर बनते हैं जिससे रोग तेजी से फैलता है.

रोग चक्र : शीतोष्ण जलवायुवाले स्थानों पर कवक का जीवन चक्र तथा घासकुल के पौधों पर रोग, एसिजिरस अवस्था से प्रारंभ होता है (चित्र-5). प्राथमिक संक्रमण भूमि में पड़े स्केलेरोशियम से उत्पन्न ऐस्कोस्पोर का पुष्पों पर अंकुरण होता है, जो संक्रमण वर्तिकाग्र (Stigma) निकलने के समय अधिक होता है. संक्रमण के 5-7 दिनों के उपरांत मीठा, चिपचिपा द्रव निकलता है (हनी ड्यू) और कोनिडिया के कीटों द्वारा फैलने से द्वितीय संक्रमण होता है तथा यह चक्र अनुकूल परिस्थितियों में चलता रहता है.

अल्कलायड्स : प्राकृतिक रूप से अरगट में दो प्रकार के अल्कलायड पाए जाते हैं. पहले क्लेवाइन टाईप अल्कलायड, यह 6,8 डाइमिथाइल अरगोलीन के व्युत्पन्न यौगिक होते हैं. दूसरे लाइसर्जिक एसिड व्युत्पन्न, जो पेप्टाइड अल्कलायड्स होते हैं.

अरगट के समस्त अल्कलायड टेट्रासाइक्लिक कम्पाउंड 6-मिथाइल अरगोलीन के व्युत्पन्न समझे जा सकते हैं. लाइसर्जिक एसिड डेरीवेटिव या पेप्टाइड अल्कलायड ही अरगट का मुख्य औषधि गुण युक्त पदार्थ है. प्रत्येक सक्रिय अल्कलायड के साथ एक निष्क्रिय आइसोमर भी पाया जाता है, जैसे आइसोलाइसर्जिक एसिड. इन अल्कलायडस का वर्षो तक अध्ययन किया गया. सन् 1906 में (बर्जर एवं कार तथा क्राफ्ट), अरगोटोक्सीन को पृथक करने में सफलता मिली तब इसको शुद्ध यौगिक समझा गया और अरगोटोक्सीन इथनोसल्फेट को स्टेन्डर्ड मानकर प्रयोग किये गये. किंतु 35 वर्षों के बाद ज्ञात हुआ कि अरगोटोक्सीन तीन अलक्लायड का मिश्रण है - अरगोक्रिस्टीन, अरगोकोरनीन एवं अरगोक्रिप्टिन.

सन् 1918 में स्टोल ने अरगोटामीन को पृथक किया और उसमें औषधि गुण देखे. स्केलेरोशियम में मुख्य रूप से अल्कलायड के 6 जोड़े हैं. पानी में घुलनशील अरगोमेट्रीन समूह, पानी में अघुलनशील अरगोटामीन समूह एवं अरगोटोक्सीन समूह. समूह 2 एवं 3 के अल्कलायड, पोलीपेप्टाइड हैं, जिनमें लाइसर्जिक एसिड या आइसोलाइसर्जिक एसिड दूसरे अमीनों एसिड से जुड़े हैं जबकि अरगोटामीन में ये अमीनों - अल्कोहल से जुड़े हैं. अरगोमैट्रीन सन् 1932 में **ड्यूडले** और **मायर** ने अलग किया और स्टोल तथा **हॉफमेन** ने सन् 1943 में सिंथिसाइज किया.

अरगोलीन : यह एक रासायनिक यौगिक है, जो अनेक अल्कलायड की संरचना का मूल आधार है. जैसे, लाइसर्जिक एसिड. अरगोलीन के व्युत्पन्न, अरगट में पाए जाते हैं और अरगोटिस्म उत्पन्न करते हैं. यह यौगिक, कवक के अविकसित समूह तथा दो फूल वाले पौधों (आइपोमिया वाइओलेसिया, रिविआ कोरीम्बोसा) में भी पाए जाते हैं (चित्र-6,स).

अरगोपेप्टीन्स : अरगट के पेप्टाइड अल्कलायड अरगोलीन से व्युत्पन्न होते हैं, जिनमें एक ट्राइपेप्टाइड मोयटी (Moiety) होती है, जो प्रोलीन और हाईड्रोक्सी – अमीनों एसिड्स की होती है. यह प्रोलीन के कारबोक्सी कार्बन से जुड़कर एक साइक्लोल बनाती है.

अरगोलीन व्युत्पन्न मुख्यतः तीन प्रकार के हैं : -

1. पानी में घुलनशील लाइसर्जिक एसिड के अमाइड्स
2. पानी में अघुलनशील अरगोपेप्टाइन्स (अरगोपेप्टाइड्स)
3. क्लेवीन समूह

1. लाइसर्जिक एसिड अमाइडस : अरजीन (एल.एस.ए.,डी-लाइसर्जिक एसिड एमाइड, एल.ए.ए., एल.ए.-III) (चित्र-6 ब)

अरगोनोवीन (अरगोबेसीन)

मीथरजीन (एम.ई.-277)

मीथाइसरजाइड (यू.एम.एल.491)

एल.एस.डी. (डी.लाइसर्जिक एसिड डाइइथाइल अमाइड, एल.एस.डी.-25)

एल.एस.एच. (डी.लाइसर्जिक एसिड हाइड्राक्सी इथाइल अमाइड)

इन यौगिकों का आपसी संबंध संक्षेप में संरचना सूत्र में दिया गया है (चित्र-7 अ).

2. पेप्टाइड अल्कलायड :- अरगोलीन रिंग की बनी मूल संरचना पर ट्राइपेप्टाइड समूह उसी प्रकार से लगे रहते हैं, जैसे, लाइसर्जिक एसिड व्युत्पन्न में अमाइड समूह लगा रहता है. इस ट्राइपेप्टाइड मॉयटी (Moiety) में एक अनोखा

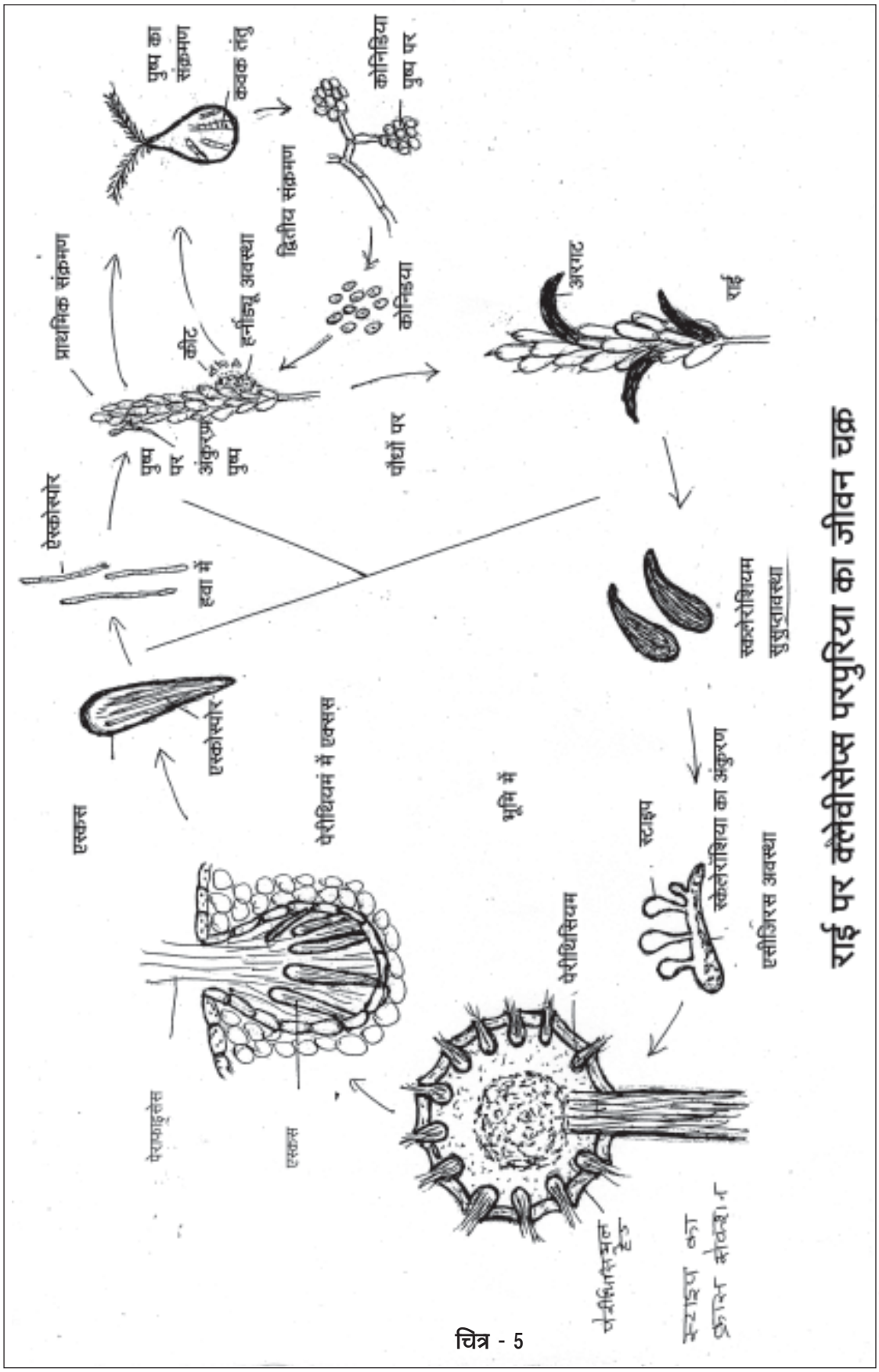
राई पर क्लेवीसेप्स परपुरिया का जीवन चक्र
पुष्प का संक्रमण
कवक तंतु
कोनिडिया पुष्प पर
द्वितीय संक्रमण
प्राथमिक संक्रमण
कीट
हनीड्यू अवस्था
कोनिडिया
अरगट
राई
पुष्प पर अंकुरण
पुष्प
पौधों पर
एस्कोस्पोर
हवा में
स्क्लेरोशियम सुषुप्तावस्था
एस्कस
एस्कोस्पोर
पेरीथिसियम में एक्सस
भूमि में
स्ट्राइप
स्क्लेरोशिया का अंकुरण
एसीजिरस अवस्था
पेरीथिसियम
पेराफाइसेस
एक्सस

चित्र - 5

साइक्लोल बाण्ड >N-C(OH)< दो लेक्टम रिंग्स के जोड़ पर होता है (चित्र-7ब). अरगोपेप्टाइन्स (या अरगोपेप्टाइड्स) में से कुछ मुख्य हैं -

अरगोटामीन, अरगोक्रिस्टीन, अरगोकोरनीन, अरगोक्रिप्टीन, अरगोवेलीन आदि.

3. क्लेवीन्स समूह : प्रकृति में अरगोलीन की बुनियादी संरचना में संशोधन से उत्पन्न अनेक यौगिक पाये जाते हैं. जैसे एग्रोक्लेवीन, एलीमोक्लेवीन, लाइसरजोल आदि.

इसके अतिरिक्त कुछ सिंथेटिक अरगोलीन व्युत्पन्न भी हैं, जैसे परगोलाइड (8 - बीटा) -8- (मिथाइल थामो) मिथाइल -6 प्रोपाइल-अरगोलीन तथा लीसुराइड 3- (9,10-डाई डी हाइड्रो -6- मीथाइल अरगोलीन-8 एल्फा-वाई एल) - 1, 1-डाइ इथाइल यूरिआ, जो उपरोक्त किसी भी समूह में नहीं आते हैं.

लाइसर्जिक एसिड और इसके व्युत्पन्न : अरगट सीधे एल.एस.डी. उत्पन्न नहीं करता है वरन् इसमें अरगोटामीन अल्कलायड पाया जाता है, जिसका प्रयोग लाइसर्जिक एसिड बनाने में किया जाता है. जैकब एवं क्रेग ने 1930 की शुरूआत में न्यूयार्क के रॉकफैलर इंस्टीट्यूट में लाइसर्जिक एसिड को पृथक किया और इसका नाम लाइसर्जिक एसिड रखा. एक साथ 4 संस्थानों में अल्कलायड के सामान्य संरचना की खोज की गयी. स्टोल एवं बुर्कहार्ड्स ने अरगोबेसीन (अरगोमेट्रीन, अरगोनोवीन) बनाया. जिसके रासायनिक विघटन से जैकब और क्रेग को लाइसर्जिक एसिड और अमीनोअल्कोहल प्रोपेनोल अमीन मिला. लाइसर्जिक एसिड अस्थायी पदार्थ है और इसे अन्य रसायनों से जोड़पाना कठिन होता है. 1930 के दशक में **हाफमेन** ने **'करटियस सिन्थिसिस'** नामक तकनीक में एक ऐसा तरीका खोजा जिससे लाइसर्जिक एसिड और अमीन्स को जोड़ने में मदद मिली. इस प्रयोग के सफल होने पर हॉफमेन ने अनेक लाइसर्जिक एसिड यौगिक बनाये जिनमें लाइसर्जिक एसिड को अमीन अल्कोहल प्रोपेनाल, अमीन से जोड़ा गया था. उन्हें एक यौगिक मिला जो कि अरगट के प्राकृतिक अल्कलायड 'अरगोबेसीन' के समान था. इस प्रकार पहली बार एक अरगट अल्कलायड का प्रयोगशाला में उत्पादन सम्भव हुआ.

ड्यूडले एवं मायर ने 1932 में अरगोमैट्रीन को पृथक किया और इसे **स्टोल** तथा हाफमेन ने 1943 में सिंथिसाइज किया (तालिका-1). यह एक छोटा लाइसर्जिक एसिड व्युत्पन्न है और इसे प्रसव में प्रयोग किया गया. वर्षों की मेहनत के पश्चात सन् 1960 में **क्लेवीसेप्स पेस्पेली** फफूंद के एक स्ट्रेन द्वारा किण्वन तकनीक से सामान्य लाइसर्जिक एसिड व्युत्पन्न का व्यावसायिक उत्पादन संभव हुआ.

मानव मस्तिष्क पर एल.एस.डी. - 25 के प्रभाव की खोज : एल.एस.डी. (जो मस्तिष्क को प्रभावित करने और पारलौकिक सुख का अनुभव कराने के लिए विख्यात है) की खोज अल्बर्ट हाफमेन ने 1943 में की. उन्होंने अपनी पुस्तक 'एल.एस.डी.माई प्रॉब्लम चाइल्ड' में इस खोज का विस्तृत वर्णन किया है. हाफमेन, प्रोफेसर आर्थर स्टोल के साथ सेन्डोज कंपनी में, जो कि औषधि रसायन शोध प्रयोगशाला थी, बेसल, स्विटजरलैंड में कार्यरत थे. सन् 1938 में, हाफमेन एनालेप्टिक यौगिक (रक्त का संचार बढ़ानेवाला यौगिक) की खोज कर रहे थे और इसके लिए उन्होंने अरगट के सत् (निचोड़) पर प्रयोग प्रारंभ किए. उन्होंने अरगट का पच्चीसवां यौगिक बनाया - डी लाइसर्जिक एसिड डाईइथाइल अमाइड और उसे एल.एस.डी.-25 नाम दिया गया. इस द्रव से प्रयोगशाला में पशुओं पर अनेक प्रयोग किये गये, प्रयोगों के दौरान पशु बेचैन रहे और उनके गर्भाशय पर प्रभाव पड़ा. परंतु कोई ठोस परिणाम न मिलने पर इसे अलग रख दिया गया. इसके पांच वर्षों के उपरांत 16 अप्रैल सन् 1943 को उन्होंने इस पर पुनः कार्य प्रारंभ किया. अरगोटामीन शुद्ध अल्कलायड के रूप में रिसर्च संस्थान में उत्पादित किया जाता था. अतः विभाग से छोटी मात्रा में इसे लेकर पुनः शुद्धीकरण किया गया उन्हें लगा कि यह कई अल्कलायड का मिश्रण है.

एल.एस.डी.-25 की सिंथेसिस के आखिरी चरण में (जहां लाइसर्जिक एसिड डाइइथाइल अमाइड को टारट्रेट के रूप में शुद्ध करके क्रिस्टल बनाए जाते हैं) हाफमेन की तबियत अचानक खराब हुई.उनकी आंखे बंद होने लगी, रोशनी से घबराहट, स्वप्न दिखने लगे, आंखों के आगे सितारे नाचने लगे, जैसे केलाइडोस्कोप घुमाया जा रहा हो, और बेहोशी छाने लगी. उन्हें कार्य बीच में छोड़कर घर जाना पड़ा क्योंकि, उनके ऊपर इसका प्रभाव शुरू हो गया था, जो तीन घंटे तक रहा. यह रसायन शायद ऊंगली से ही उनके शरीर के अंदर गया था.

हाफमेन समझ नहीं पाए कि एल.एस.डी.-25 के अत्यंत सूक्ष्म कण, जो कि उनकी ऊंगलियों के सिरों के संपर्क में आये थे, उनसे कैसे इतना अधिक प्रभाव हुआ. तीन दिन पश्चात 19 अप्रैल 1943 को उन्होंने पुनः लाइसर्जिक एसिड डाईइथाइल अमाइड टारट्रेट मुख से (0.25 मि.ग्राम 10 मि.ली.पानी में) लिया. उन्होंने सोचा कि इतनी सूक्ष्म मात्रा में असर कम होगा, लेकिन 40 मिनट के अंदर ही उसका असर शुरू हो गया. उन्हें आलस्य, एनजायटी, देखने में परेशानी, हंसने की इच्छा और लकवा जैसा लगा. जैसे ही वह साइकिल से अपने सहयोगी के साथ घर पहुंचे, उन्हें

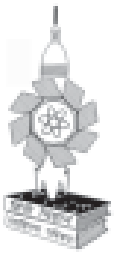

लगा असर बहुत अधिक था. उन्हें बोलने में परेशानी थी, विकृत आकृतियां दिखायी दे रही थीं, रास्ता टेढ़-मेढ़ा दिख रहा था. घर पहुंचकर सोफे पर लेटने पर उन्हें पारलौकिक शक्ति संबंधी अनुभव हुए. उन्हें लगा वह शरीर से बाहर घूम रहे हैं और शरीर सोफे पर है. एक चिकित्सक बुलाया गया परंतु वह कुछ भी करने में असमर्थ रहा. अगली सुबह तक इसका प्रभाव कम हो गया था. उस समय ऐसा कोई पदार्थ नहीं था जो इतनी सूक्ष्म मात्रा में मस्तिष्क पर इतना प्रभावी हो, और चेतना को प्रभावी करके, शरीर के बाहर रहने का अनुभव दिलाये. अगले दिन उन्होंने प्रोफेसर स्टोल और औषधि विभाग के निदेशक प्रोफेसर रोथलीन को भी रिपोर्ट भेजी. उन लोगों को, हॉफमेन के अनुभव को जानकर, आश्चर्य हुआ और दवा की मात्रा पर बहस की. प्रोफेसर रोथलीन और उनके दो सहयोगियों ने इस प्रयोग का पुनः परीक्षण स्वयं दवा की एक तिहाई मात्रा लेकर किया. परिणाम बहुत अच्छे थे.

हाफमेन ने पाया कि एल.एस.डी. का मस्तिष्क पर तीव्र प्रभाव प्राकृतिक लाइसर्जिक एसिड अल्कलायड के समान था, जो कि **रिविआ कोरीम्बोसा (ओलोली कुई)** के बीजों से रासायनिक प्रक्रिया द्वारा निकाले गए थे, और अजटेक्स (अजटेक्स सभ्यता सन् 1519 से पहले मध्य अमेरिकी देशों में थी) के द्वारा उनके धार्मिक कर्मकाण्डों में प्रयोग किये जाते थे.

एल.एस.डी. और सी.आई.ए. :- सन् 1942 में जनरल विलियम डोनोवाल (जो कि ऑफिस ऑफ स्ट्रेट्रिजिक सर्विसेज के प्रमुख थे) ने अमेरिका के विशिष्ट मानसिक चिकित्सकों के समूह की बैठक करके सत्य बोलने के लिए उत्प्रेरित करनेवाली औषधि की खोज पर बल दिया, जिससे अपराधियों से जानकारी प्राप्त की जा सके. इसके लिए अनेक द्रवों पर परीक्षण किए गए, जैसे मारजुआना, अल्कोहल, पौधों के रस, अनेक औषधियां बारबीटयूरेट्स एवं कॉफीन आदि. इन सबमें मारजुआना कुछ प्रभावी था परंतु उसके परिणाम लगातार एक जैसे नहीं थे, अतः उन सबको अस्वीकार कर दिया गया. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात सन् 1947 में ओ.एस.एस. के स्थान पर सी.आई.ए. बना और उन्होंने ओ.एस.एस. के कार्य को आगे बढ़ाते हुए मस्तिष्क को नियंत्रित करनेवाली एवं सत्य बोलनेवाली औषधि की खोज शुरू की. इसके लिए हर प्रकार की दवा, पौधों से उत्पादित कोकीन, मीस्केलिन, एट्रोपिन, हेरोइन एवं स्कोपोलामिन, सेकोनल, डेक्सएड्रीन, पेन्टोथाल, डी सोक्सिन आदि का प्रयोगशाला के पशुओं तथा अस्पताल के रोगियों पर, नाजी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर प्रयोग किए.

वर्नर स्टाल (जो कि हॉफमेन के सहकर्मी थे) ने पहली बार एल.एस.डी.-25 के गुण और उसके मनोविज्ञान संबंधी गुणों का अध्ययन किया. शाइजोफ्रेनिक रोगियों के ऊपर परीक्षण किए गए जो कि सन् 1947 में प्रकाशित हुए. इसके दो वर्ष पश्चात एक छोटा लेख 'ए न्यू हैल्युसिनेटरी एजेंट, एक्टिव इन वेरी स्माल एमाउन्ट' प्रकाशित हुआ. चूंकि, सी.आई.ए. शुरू से ही इस प्रकार की जानकारी की खोज में था, सन् 1951 तक वह एल.एस.डी. के बारे में जान गए और प्रयोग शुरु कर दिए. अन्य दवाओं के विपरीत इसके प्रारंभिक परिणाम अच्छे रहे. एक सैन्य अधिकारी को एल.एस.डी. देकर कुछ महत्वपूर्ण बातें गुप्त रखने के लिए बतायी गयी. परंतु एल.एस.डी. के प्रभाव में पूछने पर उसने उस रहस्य को बता दिया और जब इसका प्रयोग समाप्त हुआ, तब उसे इस घटना का कोई ज्ञान नहीं था. गुप्त बातें जानने के अतिरिक्त, कुछ परिणाम बताते हैं कि यह भूली बातों को याद करने में भी मदद करता है. पहले तो सी.आई.ए. को लगा कि उन्हें मस्तिष्क नियंत्रित करने की अचूक औषधि (होली ग्रेल) मिल गई है. परंतु बाद के परिणाम से ज्ञात हुआ कि विभिन्न व्यक्तियों पर इसका प्रभाव भिन्न भिन्न होता है. यद्यपि यह रंगहीन, गंधहीन और स्वादहीन होने के कारण भोजन या शराब में मिलाने पर इसका पता नहीं चलता था और सूक्ष्म मात्रा में अत्यंत प्रभावी थी. इसका प्रयोग 1950-60 के बीच सी.आई.ए. ने सूचना प्राप्त करने में किया. परंतु, यह सीआईए की आशाओं के अनुरूप रासायनिक हथियार नहीं था.

एल.एस.डी. तथा हिप्पी :- कैप्टेन अल्फ्रेड हुब्बर्ड, एक जासूस, जिसने ओ.एस.एस. के साथ द्वितीय विश्वयुद्ध में काम किया था, उसने एल.एस.डी. को मनोरंजन के लिए जनसाधारण को उपलब्ध करवाया, साथ ही शोध के लिए वैज्ञानिकों को भी दिया. सन् 1960 के दशक में अमरीका में एल.एस.डी. का प्रयोग, नशे के लिए, खुलेआम होने लगा. हिप्पीयों के अतिरिक्त अन्य लोग जैसे युवा, छात्र आदि भी, इसका सेवन करने लगे और सड़कों पर नशे में झूमते युवाओं के समूह नजर आने लगे. इस दशक के मध्य में 'अमेरिकन मेडीकल एसोसिएशन' तथा 'फूड एंड ड्रग एडमिस्ट्रेशन' ने एल.एस.डी. को मानसिक चिकित्सा की औषधि के पद से हटा दिया. यह मनोरोगियों के लिए उपयुक्त नहीं थी. सन् 1968 तक इसका प्रयोग अवैध हो गया और यह दवा के रूप में भी मिलनी बंद हो गयी.

अतः एल.एस.डी. जो कभी पारलौकिक सुख का अनुभव कराने के लिए खुलेआम बिकती थी और एक पूरी पीढ़ी को तबाह करने, तथा हिप्पी बनाने के लिए उत्तरदायी थी, आज

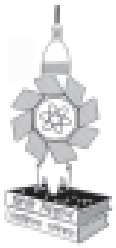

अब मात्र शोध का विषय बनकर रह गयी है.

बीसवीं शताब्दी में अरगट का प्रकोप :- सन् 1926-27 में, रूस में, अरगोटिस्म से 10,000 लोगों के मरने का विवरण मिलता है. सन् 1927 में, इग्लैंड में, 200 अप्रवासी यहूदियों के प्रभावित होने का विवरण है. अंतिम यूरोपियन लिखित दस्तावेज 12 अगस्त सन् 1951 का है, जब जेन वियु नामक चिकित्सक ने फ्रांस के सेन्ट एसप्रिट नामक प्रांत के छोटे कस्बे पोंट में अरगोटिस्म का प्रकोप खोजा. दो रोगियों, जिन्हें पेट के निचले हिस्से में तीव्र दर्द हो रहा था. इसके पश्चात अनेक रोगी आए और अस्पताल मरीजों से भर गया. पूरे कस्बे में माना गया कि वहां का जनसाधारण विषाक्त भोजन से प्रभावित हुआ है, जिसमें पागलपन के भी लक्षण थे. समस्त लोगों ने एक ही बेकरी से गेहूं की ब्रेड खरीद कर खाई थी. इसकी जांच करने पर 12 जहरीले अल्कलायड मिले. जिनकी मूल संरचना राई अरगट जैसी थी. कुल 200 मरीज पाए गए थे जिनमें से 4 की मृत्यु हो गई थी. ईथोपिया में सन् 1977 में रोग ग्रसित जंगली जई खाने से ग्रैंगरीन प्रकार का अरगोटिस्म पाया गया, जिसमें 93 लोग प्रभावित हुए और 47 की मृत्यु हो गई.

सन् 1975 में भारत में अरगोटिस्म का मस्तिष्क एवं नसों पर प्रभाव देखा गया. इथोपिया की स्केलेरोशिया में अरगोटामीन तथा भारत में क्लेवीन अल्कलायड्स एग्रोक्लेवीन, एलाइनोक्लेवीन, चानोक्लेवीन, पेन्नीक्लेवीन तथा सेटोक्लेवीन पाए गए. इन दोनों देशों में पायी गयी कवक क्लेवीसेप्स की स्पीशीज (जातियां) अलग थी.

सलेम डायन ट्रायल पर शोध :- लिंडा आर.केपोराएल (1976) मनोवैज्ञानिक एवं प्रोफेसर, रेनस्सीएलर पॉली टेक्निकल इंस्टीट्यूट, ट्राय न्यूयार्क ने खोज की कि 16वीं शताब्दी में हुए सलेम ट्रायल में डायन एवं भूत प्रेत से प्रभावित अनगिनत लोग वास्तव में अरगोटिस्म के शिकार थे. उनका लेख 'साइंस' में छपा. उन्होंने लक्षणों के आधार पर तथा राई की उपलब्धता एवं रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियों में संबंध स्थापित किया. इंग्लैंड के एक शिक्षाविद ने उन्हें ई-मेल भेजा कि शेक्सपियर के नाटक 'द टेम्पेस्ट' में एक पात्र 'कैलिबन' पर पड़नेवाले दौरे अरगट विष से पीड़ित लोगों के लक्षणों से मिलते हैं. चूंकि यूरोप में 16वीं शताब्दी में अरगोटिस्म की महामारी पायी गयी थी अतः यह पात्र उस बीमारी के लक्षणों को दर्शाता है.

मेरी मेटोस्सिअन (1988), इतिहासकार ने 'अमेरिकन साइन्टिस्ट' में लेख छापा, जिसमें उन्होंने अरगोटिस्म के होने और जन साधारण को डायन मानकर उन पर लगाये गये अभियोगों के बीच संबंध स्थापित किया. उन्होंने सलेम में हुए मुकदमों (1692) पर ध्यान दिया और रोग के लक्षणों के अध्ययन के अतिरिक्त उस स्थान विशेष के ऊपर अन्य अध्ययन भी किये, जैसे मौसम, तापमान, वर्षा, उस स्थान की फसल, फसल के रोग, भोजन का प्रकार आदि. इसके अतिरिक्त अन्य आंकड़े भी देखे, जैसे राई का मूल्य, जो यह दर्शाता है कि एक विशेष वर्ष में राई की उपज कितनी थी, तथा वृक्षों की वार्षिक वृद्धि की चौडाई क्या थी, जिससे यह ज्ञात हो कि उस वर्ष के बसन्त और ग्रीष्म ऋतु का तापमान क्या था. उन्होंने देखा कि जिन वर्षों में डायन अभियोग अधिक थे, राई का दाम अधिक था, जिसका अर्थ था फसल कम हुई थी और जनता के पास भोजन के अन्य विकल्प नहीं थे. जिन वर्षों में बसंत और ग्रीष्म के महीने अधिक ठंडे थे और जलवायु सामान्य से अधिक नम और ठंडा था, डायन मुकदमें ज्यादा हुए. यह मौसम राई के अरगट से प्रभावित होने व रोग फैलने के लिए अत्यधिक उपयुक्त था.

अरगोटिस्म केवल बीमारी या भूत प्रेत या जादू टोने की कल्पना ही नहीं थी, वरन सदियों तक रहस्य में रहने के कारण इस पर कपोल कथाएं भी लिखी गयीं. रॉबिन कुक (1994) का उपन्यास 'एक्सेप्टेबिल रिस्क' अरगट जैसी कवक के सलेम, मेसाच्युसेट्स में पाए जाने पर आधारित है. 'x-फाइल्स' नाम के बहुचर्चित टेलीविजन सीरियल में, एक पात्र, 'टेटू' को राई सत से रंगने के बाद अजीब व्यवहार करने लगता है.

अरगट का औषधि के रूप में प्रयोग :- अरगट का औषधि के रूप में प्रयोग आदिकाल से प्रसव कराने में होता आया है. सन् 1582 में एडम लोन्टिजर ने जर्मनी में पहली बार देखा कि अरगट एकोबोलिक (प्रसव) में काम आता है. इसकी तीन स्केलेरोशिया के प्रयोग से बच्चेदानी का संकुचन उत्प्रेरित हुआ. यह उस समय प्रसव में बहुत महत्वपूर्ण थी और इससे तीव्र तथा अचानक, तीन घंटे में, प्रसव हो जाता था. परंतु अरगट इस कार्य के लिए अनुपयुक्त था, क्योंकि सक्रिय संघटक में एकरूपता नहीं थी. इसके प्रतिकूल प्रभाव जैसे अत्यधिक जी मिचलाना, अरूचि, उल्टी आदि भी दिखाई पड़े. सन् 1808 में, अमेरिकन फिजिशियन जॉनस्टिर्न के द्वारा लिखित 'एकाउन्ट ऑफ द पुटविस पार्टूरियस, ए रेमीडी

भूल-सुधार

वैज्ञानिक के अंक (44-1-2) में 'भारत में गिद्धों का संरक्षण' नामक लेख के अंतर्गत पृष्ठ संख्या 8 पर छपे लेखकों के नाम में 'अति दास' को 'असित दास' पढ़ा जाय. त्रुटी हेतु खेद है. **-सं .मं.**

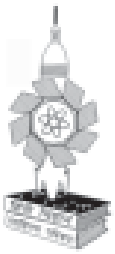

फॉर क्विकनिंग चाइल्ड बर्थ' शोध पत्र द्वारा अरगट का प्रवेश चिकित्सीय साहित्य में हुआ.

सन् 1822 में न्यूयार्क के होसेक ने निष्कर्ष निकाला कि प्रसव में अरगट के प्रयोग से अनेक बच्चे, गर्भाशय के फटने से, मृत अवस्था में जन्में तथा माँ की मृत्यु हुई. 20वीं शताब्दी के दौरान पता चला कि अरगट माइग्रेन के इलाज में लाभदायक है. यह अरगोटामीन के कारण था. सन् 1918 में ए.स्टोल्ल ने अरगोटामीन को पृथक किया. यह पहला अरगट अल्कलायड था जो शुद्ध रसायन के रूप में था. अरगोलीन अल्कलायड का पहला दवा के रूप में प्रयोग माइग्रेन के लिए किया गया. सेन्डोज प्रयोगशाला ने 'गाइनरजेन ट्रेड नाम से औषधि निकाली. मिथाइल अरगोमेट्रीन मेलीएड (मीथरजिन) नाम की दवा यूट्राइन, रक्त स्राव को रोकने में प्रयुक्त होती है.

सन् 1935 में अरगोनोवीन की खोज हुई. यह मांसपेशियों में तीव्र संकुचन उत्पन्न करने के कारण प्रसव पीड़ा प्रेरित करने और रक्त स्राव रोकने के काम आती है. यह अरगोटामीन से ज्यादा प्रभावी है, और कम विषैली है. अतः अरगोनोवीन एवं उसका व्युत्पन्न मिथाइल अरगोनोवीन गर्भाशय उत्तेजित करने में प्रयुक्त होते हैं. मुंह से लेने पर, ये दोनों यौगिक, शरीर द्वारा तेजी से सोख लिए जाते हैं और 60-90 मिनट के अंदर प्लाज्मा में उच्च सान्द्रता पर पहुंच जाते हैं जो कि अरगोटामीन की उतनी ही मात्रा में लेने से 10 गुना अधिक है. अरगोनावीन की 0.2 मि.ग्रा. मात्रा मुख से लेने के 10 मिनट के अंदर उसका असर बच्चेदानी पर देखा जा सकता है. दोनों रसायनों की सापेक्ष कार्यवाही का अध्ययन करने पर पता चलता है कि अरगोनोवीन, अरगोटामीन की तुलना में, शरीर में, तेजी से पचती है या शरीर से निकल जाती है. मिथाइल अरगोनोवीन की रक्त प्लाज्मा में हाफ लाईफ (अर्ध आयु) आधा घंटे से दो घंटे के बीच है. अरगट अल्कलायड के बिसइनडोल अल्कलायड जैसे विनब्लास्टीन तथा विनक्रिस्टीन ट्यूमर को रोकने का कार्य करते हैं. हॉफमेन ने 3 हाईड्रोजीनेटेड अरगोटाक्सीन अल्कलायड बनाए जिनका नाम डाइहाइड्रोअरगोक्रिस्टीन, डाइहाइड्रोअरगोक्रिप्टीन, डाइहाइड्रोअरगोकारनीन था. इनमें औषधीय गुण थे. इनसे प्रोफेसर रोथलीन ने हाइडरजीन नामक दवा बनायी, जो जेरीएट्रिक्स (Geriatrics) का उपचार करती है. यह मस्तिष्क के सेरीब्रल भाग के कार्य को सुचारू रूप से चलाने में सहायता करती है और बाह्य खून के दौरे को ठीक करती है. यह सेन्डोज लैब की मुख्य औषधि है. हॉफमेन ने डाइहाइड्रोगोटामीन बनाया जो खून के बहाव व रक्त दबाव को नियंत्रित करने में प्रभावी है, इसका व्यापारिक नाम डाइहाइडरगोट है. उन्होंने मेथेरजीन, हाइडरजीन तथा डाइहाइडरगोट का बड़ी मात्रा में उत्पादन किया.

हृदयवाहिनी तंत्र पर प्रभाव :- अरगोटामीन धमनियों एवं शिराओं को सिकोड़ता है, जबकि डाइहाइड्रोअरगोटामीन में वाहिकाओं के संकीर्णन (संकुचन) की प्रवृत्ति होती है. यह धारण वाहिकाओं पर प्रतिरोधक वाहिकाओं की तुलना में अधिक प्रभावी होता है. अरगोटोक्सीन समूह के डाइहाइड्रोजीनेटेड व्युत्पन्न कम सक्रिय होते हैं और अधिकतर हाइपोटेंशन उत्पन्न करते हैं क्योंकि वह सी.एन.एस. को प्रभावित करते हैं. जबकि अमाइड अल्कलायड, जो अरगोटामीन से कम गुणकारी होते हैं, रक्तचाप को थोड़ा बढ़ा सकते हैं, एवं उपचारात्मक मात्रा में देने पर रक्त प्रवाह को शरीर के अंतिम सिरों पर कम कर सकते हैं.

अल्कलायड का अवशोषण एवं उत्सर्जन :- अरगोटामीन यकृत में चयापचय रस प्रक्रिया (जिसका पाथ-वे ज्ञात नहीं है) द्वारा, 90 प्रतिशत बाइल में चला जाता है. मल, मूत्र की जांच में अपाचित औषधि की सूक्ष्म मात्रा ही मिलती है. यह वाहिका संकीर्णन उत्पन्न करता है जो 24 घंटे या उससे अधिक रहता है, हालांकि इसकी अर्धायु रक्त प्लाज्मा में दो घंटे की है. डाइहाइड्रोगोटामीन अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में शरीर द्वारा सोख लिया जाता है और अरगोटामीन की तुलना में शीघ्र शरीर से बाहर निकल जाता है.

अरगट व्युत्पन्न एवं पार्किन्सन रोग :- अरगट व्युत्पन्न मुख्यतः न्यूरोट्रांसमीटर 'डोपामीन' को बढ़ाने की क्षमता के कारण, इसकी कमी से होनेवाली बीमारी पार्किन्सन में प्रयोग किए जाते हैं. इस बीमारी पर हुए नए परीक्षणों (अरगट व्युत्पन्न के साथ) से ज्ञात हुआ है कि इन यौगिकों का प्रभाव 'डोपामीन रिसेप्टर' पर होता है. अधिकतर डोपामीन एगोनिस्ट, अरगट व्युत्पन्न है. अरगोलीन रिंग तथा एन्डोजीनस मोनोएमाइन्स की संरचना में समानता के कारण ही इन यौगिकों का असर डोपामीनर्जिक, सीरोटोर्जिक और एड्रीनर्जिक रिसेप्टर्स पर होता है. इस समय ब्रोमोक्रिप्टीन, ली.सुराइड और परगोलाइड, मुख से लेने वाली, तीन अरगट डोपामीन अगोनिस्ट हैं.

ब्रोमोक्रिप्टीन, जिसमें प्रबल डी2 अगोनिस्ट गुण है, एक कमजोर डी 1 प्रतिरोधी रिसेप्टर है. यह पार्किन्सन रोग में प्रयोग किया जानेवाला पहला अरगोलीन है. अरगोलीन का, सिंथेटिक व्युत्पन्न, परगोलाइड डी2 डोपामीन रिसेप्टर पर लंबे समय तक क्रिया करनेवाला अगोनिस्ट है, जबकि इसका डी1 रिसेप्टर पर हल्का अगोनिस्टिक प्रभाव है. ब्रोमोक्रिप्टीन एवं परगोलाइड दोनों ही पार्किन्सन रोग के

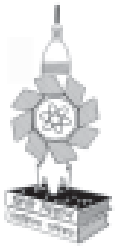

लक्षणों में आराम पहुंचाते हैं और कंपन के उतार-चढाव को कम कर देते हैं.

लीसुराइड, अरगट व्युत्पन्न, पोस्टसिनेप्टिक स्टेटल डी2 रिसेप्टर को उत्तेजित करता है और हल्का डी1 रिसेप्टर अगोनिस्ट है. इस दवा के पार्किन्सन रोग के ऊपर प्रभाव ब्रोमोक्रिप्टीन तथा परगोलाइड के समान हैं. लीसुराइड पानी में अत्यधिक घुलनशील है अतः एम्ब्यूलेट्री इन्फ्यूजन पंप द्वारा पेरेन्ट्रल थिरापी में प्रयोग किया जा सकता है. यह यौगिक पार्किन्सन रोग के उतार चढ़ाव को रोकने में अत्यधिक प्रभावी है. 4 जनवरी सन् 2007 के 'न्यू इग्लैण्ड जनरल ऑफ मेडिसिन' में एक ब्रिटिश शोध पत्र छपा, जिसमें परगोलाइड एवं केबरगोलीन, जो कि पार्किन्सन रोग में सामान्यतः प्रयुक्त होती हैं, उनका प्रभाव 11,000 रोगियों पर देखा गया. परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि ये औषधियां हृदय वाल्व के 'लीकी रोग' को 700 प्रतिशत तक बढ़ा सकती है.

वर्तमान में अरगट का प्रभाव :- अरगट अनाज के उत्पादन को प्रभावित करता है. विशेषज्ञों द्वारा बीज के साथ इसके मिले होने की कानूनी सीमा 0.3 प्रतिशत भार राई एवं गेहू के लिए और 0.1 प्रतिशत भार जौ, जई एवं ट्रिटीकेल्स के लिए तय की गई है. अनाज में यदि उपरोक्त सीमा से अधिक अरगट मिला रहता है, तो उसे 'अरगोटी' कहा जाता है और **यह खाने के लिए अनुपयुक्त रहता है.** अत्यधिक ठंडे मौसम में यह समस्या लगातार बनी रहती है. इसका प्रभाव बीज उत्पादन, कटाई में परेशानी, आयात करने में पाबंदी आदि होता है. पशुओं में इस फफूंद से संक्रमित खेतों या घास के मैदानों में चरने से, संक्रमण हो जाता है, विशेषतः जब लंबी शीत ऋतु के बाद भीगा मौसम होता है. पशुओं में विष के प्रभाव से दूध की मात्रा एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है तथा उनकी प्रजनन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है.

अच्छी फसल के लिए शुद्ध व साफ बीज का चयन आवश्यक है. बीज को अरगट से मुक्त रखने के लिए 30 प्रतिशत पोटेशियम क्लोराइड या 20 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोते हैं. अरगट हल्के और फूले होने के कारण ऊपर तैरते हैं और उनको निकालकर अलग कर देते हैं. फसल कटाई के उपरान्त गहरी जुताई करने से भूमि पर गिरी स्केलेरोशिया का जमाव नहीं हो पाता है.

इस प्रकार से हम देखते हैं कि अरगट जो सदियों से सभ्यता को प्रभावित करता आया और जिसके औषधि गुणों से मानव आदि काल से परिचित था, वास्तव में अनेक औषधियों का मूल स्रोत है. अतः आज, जब हम फसल को अरगट से बचाने के सरल उपाय जानते हैं, तो क्लेवीसेप्स के उत्तम स्ट्रेन टिशु कल्चर तकनीक द्वारा प्रयोगशाला में उगाकर उनसे बेहतर यौगिक भी बनाए जा सकते हैं. जिनका भविष्य की औषधियों में प्रयोग किया जा सकता है.

तालिका-1
अरगट के अल्कलायड्स का संक्षिप्त विवरण

समूह	अल्कलायड	फार्मूला	खोज कर्ता
1. अरगोमेट्रीन	अरगोटमेट्रीन अरगोटमेट्रीनीन	$C_{19}H_{22}O_2N_3$	ड्यूडले एवं मायर, 1932
2. अरगोटामीन	अरगोटामीन अरगोटमिनीन	$C_{33}H_{35}O_5N_5$	स्पाइरो एवं स्टाल, 1920
	अरगोसीन अरगोसीनीन	$C_{30}H_{37}O_5N_5$	स्थिम एवं टिमिस, 1937
3. अरगोटाक्सीन	अरगोक्रिस्टीन अरगोक्रिस्टीनीन	$C_{35}H_{39}O_5N_5$	स्टाल एवं बुर्कहार्डर, 1937
	अरगोक्रिप्टीन अरगोक्रिप्टीनीन	$C_{32}H_{41}O_5N_5$	स्टाल एवं हाफमेन, 1937-1943
	अरगोकोरनीन अरगोकोरनीनीन	$C_{31}H_{39}O_5N_5$	

चित्र-6

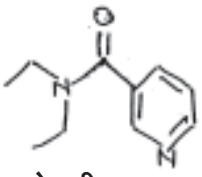

कोरामीन
(निकोटिनिक एसिड डाई)
इथाइल अमाइड
(अ)

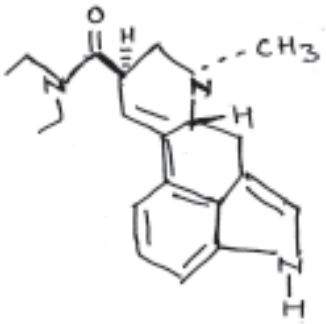

(ब)

एल.एस.डी.

लाइसर्जिक एसिड
डाइ इथाइल अमाइ

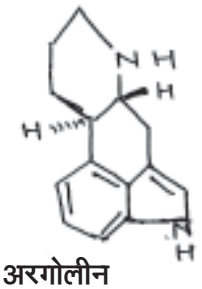

अरगोलीन
(स)

चित्र-7 (अ) लाइसर्जिक एसिड अमाइड के यौगिकों की संरचना

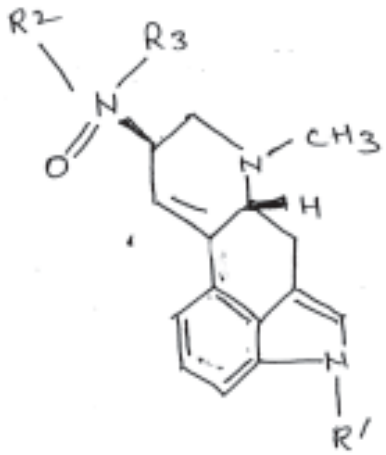

नाम	R^1	R^2	R^3
अरजीन	H	H	H
अरगोनोवीन	H	$CH(CH_3)CH_2OH$	H
मेथरजीन	H	$CH(CH_3)CH_2OH$	H
मेथीसरजाइड	H	$CH(CH_3)CH_2OH$	H
एलएसडी	H	CH_2CH_3	CH_2CH_3

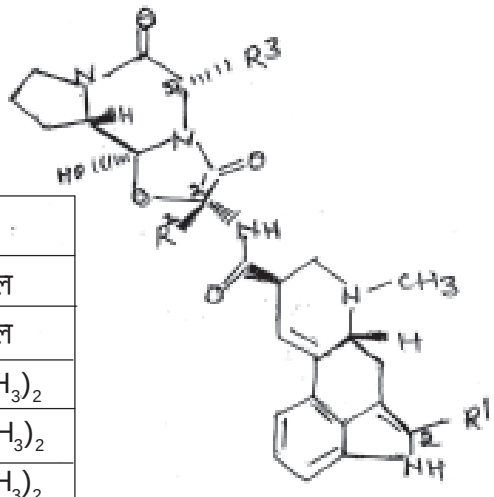

नाम	R^1	R^2	R^3
अरगोवमीन		CH_3	बे-जाइल
अरगोक्रिस्टीन		$CH(CH_3)_2$	बे-जाइल
अरगोकोरनीन		$CH(CH_3)_2$	$CH(CH_3)_2$
अरगोक्रिप्टीन		$CH(CH_3)_2$	$CH_2CH(CH_3)_2$
ब्रोमोक्रिप्टीन	Br	$CH(CH_3)_2$	$CH_2CH(CH_3)_2$
अरगोवेलीन		CH_3	$CH(CH_3)_2$

चित्र 7 (ब)

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

शैलों के आयु-निर्धारण में आयोनियम-थोरियम अनुपात की भूमिका

- डॉ.विजय कुमार उपाध्याय -
के.के.सिंह कोलोनी, राजेंद्र नगर, पो.जमगोड़िया, वाया-जोधाडीह,
चास, जिला-बोकारो, झारखण्ड, पिन.कोड-827013

सन् 1954 में पहली बार पिक्सियोटो तथा विलगेन नामक वैज्ञानिकों ने आयोनियम तथा थोरियम के अनुपात का उपयोग कर गहरे समुद्र में पाये जानेवाले अवसादों का आयु-निर्धारण किया. कुछ समय बाद सन् 1962 में गोल्डबर्ग तथा क्वायडे नामक वैज्ञानिकों ने इस विधि का विस्तृत अध्ययन किया.

आयोनियम वस्तुतः थोरियम का ही एक समस्थानिक है जिसका परमाणु भार 230 है, जबकि साधारण थोरियम का परमाणु भार 232 है. समुद्र में पाये जानेवाले आयोनियम का मुख्य स्रोत समुद्री जल में यूरेनियम-238 का विखंडन है. यूरेनियम-238 का विखंडन तथा विभिन्न चरणों में विभिन्न तत्वों के निर्माण की प्रक्रिया चित्र 1 में दिखायी गयी है. इस चित्र में हम देखते हैं कि आयोनियम, रेडियम का जनक पदार्थ है. आयोनियम या थोरियम-230 निर्माण के बाद शीघ्र ही अवसाद में उपस्थित लौह (फेरिक हाइड्रॉक्साइड, तथा मैंगनिज हाइड्रॉक्साइड के कणों की सतह पर सट कर समुद्री जल से अवक्षेपित होकर अलग हट जाता है. स्थलीय क्षेत्र में उपस्थित चट्टानों के अपक्षय से भी कुछ आयोनियम मुक्त होता है. थोरियम 232 तो पूर्ण रूप से चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होता है (चित्र 1).

आयोनियम का अर्द्धजीवन काल 7.52×10^4 वर्ष है जिसके बाद यह रेडियम में परिवर्तित हो जाता है. जबकि थोरियम-232 रेडियोसक्रिय विखंडन द्वारा हीलियम मुक्त करता है तथा लेड-208 में परिवर्तित होता है. थोरियम-232 का अर्द्धजीवन काल 1.39×10^9 वर्ष है. चूंकि समुद्रीजल में आयोनियम एवं थोरियम-232 के रासायनिक गुण एक समान हैं, अतः ये दोनों जल से अलग होकर अवसाद में एक साथ शामिल होते हैं. एक बार जब ये समस्थानिक अवसाद में प्रवेश कर जाते हैं, तो विखंडन की दर अधिक होने के कारण आयोनियम की मात्रा तेजी से कम होने लगती है. परंतु थोरियम-232 की कमी उतनी तेजी से नहीं होती, क्योंकि इसका अर्द्धजीवन काल आयोनियम के अर्द्धजीवन काल की तुलना में बहुत अधिक है. इस प्रकार विभिन्न गहराइयों पर उपस्थित अवसादों में आयोनियम तथा थोरियम-232 के अनुपात को माप कर उन अवसादों के निर्माण-काल की गणना आसानी से की जा सकती है.

चूंकि समुद्री अवसादों (सेडिमेंट्स) में आयोनियम तथा थोरियम-232 के अतिरिक्त यूरेनियम भी अवक्षेपित होता है, अतः यह आवश्यक है कि गणना में आयोनियम की उस मात्रा को भी शामिल किया जाय जो यूरेनियम-238 के विखंडन द्वारा उत्पन्न होती है. सामान्य तौर पर इसे गणना में शामिल नही किया जाता, क्योंकि यूरेनियम के विखंडन द्वारा उत्पन्न आयोनियम कई अर्द्ध जीवन कालों तक नगण्य रहता है. साधारणतः तीन-चार लाख वर्षों तक यह मात्रा

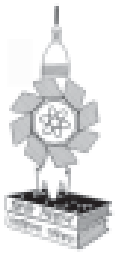

नगण्य रहती है.

समुद्री जल में आयोनियम तथा थोरियम-232 की मात्रा की गणना तथा समुद्र में इन समस्थानिकों की प्रवेश दर, यह सूचित करती है कि रासायनिक सक्रियता के कारण इन समस्थानिकों का समुद्री जल में आवास काल काफी कम है. कई अध्ययनों से पता चला है कि इन समस्थानिकों का आवास काल लगभग 100 वर्ष है, जो महासागरों के मिश्रण काल की तुलना में काफी कम है. स्थिर समुद्र में किसी घटक का आवास काल वह अवधि है जिसके दौरान समुद्र में उस घटक की मात्रा की आपूर्ति तथा विलगाव दर समान तथा स्थिर हो जाती है. इस तथ्य को निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जा सकता है.

$$t = A /(da/dt)$$

जहां t उस घटक का आवास काल है, A समुद्र में उपस्थित उस घटक की मात्रा है, तथा (da/dt) आपूर्ति या विलगाव की दर है. समुद्रों का मिश्रण काल वह समय है जिसके दौरान नदियों द्वारा घुलाकर लाया गया कोई घटक समुद्र में पहुंचने के बाद समसर्वत्र (होमोजीनियस) रूप से फैल जाता है. गहरे समुद्रों का मिश्रण काल 800 वर्ष से 1000 वर्ष के बीच पाया गया है. मिश्रण काल संबंधी ये आँकड़े रेडियो कार्बन डेटिंग से प्राप्त किये गये हैं. आयोनियम -थोरियम-232 का अनुपात थोरियम-232 की उस मात्रा पर निर्भर करेगा, जो उस क्षेत्र में प्रवेश कर रही है. जहां तक यूरेनियम-238 के विखंडन द्वारा आयोनियम के उत्पादन का प्रश्न है, इसकी दर लगभग निश्चित है, क्योंकि इसका मातृत्व यूरेनियम-238 का आवास काल लगभग पांच लाख वर्ष है. इसी कारण से समुद्र में उसका वितरण समसर्वत्र रूप से है.

थोरियम-232 नदियों के जल में घुलकर समुद्र में प्रवेश करता है तथा अधिक सक्रियता के कारण समुद्र में समसर्वत्र रूप से वितरित नहीं रहता है. इस प्रकार समुद्र तट के निकट के पानी में, जिसमें नदियों का पानी काफी परिमाण में रहता है, आयोनियम / थोरियम-232 का अनुपात, बीच समुद्री पानी की तुलना में कम रहता है. गोल्डबर्ग तथा क्वायडे जैसे वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों के आधार पर पता लगाया है कि जैव रासायनिक तथा अकार्बनिक विधियों द्वारा थोरियम-232 का समुद्री पानी के सतही भाग से गहरे भाग की ओर स्थानान्तरण होता है. इस कारण सतही पानी के भाग में आयोनियम/थोरियम-232 का अनुपात गहरे भाग की तुलना में अधिक रहता है. इस मत की पुष्टि सतही अवसादों में उपस्थित कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा तथा आयोनियम/थोरियम-232 अनुपात के अध्ययन से भी होती है. जिन अवसादों में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा अधिक होती है, उनमें आयोनियम तथा थोरियम-232 का अनुपात भी अधिक पाया जाता है. कैल्शियम कार्बोनेट की अधिक मात्रा का कारण उसमें उपस्थित उन परिप्लावी (प्लैक्टौनिक) फौरामिनिफेरा की अधिक मात्रा है जो समुद्र के ऊपरी सतह वाले जल में उपस्थित रहते हैं (सतह की मोटाई लगभग सैकड़ों मीटर). मृत्यु के बाद ये फौरामिनिफेरा नीचे समुद्र की तलहटी की ओर बैठ जाते हैं तथा साथ-साथ आयोनियम/थोरियम-232 के उच्च अनुपात को उत्पन्न करते हैं. इस प्रकार सतही अवसादों में आयोनियम/थोरियम-232 का अनुपात मुख्य रूप से प्रारंभिक स्रोत, समुद्री धारा, तथा जैव रासायनिक एवं अकार्बनिक घटकों पर निर्भर करता है.

आयोनियम/थोरियम-232 विधि के सफलतापूर्वक उपयोग हेतु निम्नलिखित चार बातें पहले से मानकर चलनी पड़ेगी - (i) समुद्र में अवसादों के ऊपर स्थित समुद्री जल में आयोनियम तथा थोरियम-232 का अनुपात उस अवधि में लगभग स्थिर रहा है, जिसके दौरान आयु-निर्धारण संबंधी विभिन्न अध्ययन किये गये (ii) आयोनियम तथा थोरियम-232 समस्थानिकों के रासायनिक गुण एक ही समान रहेंगे, जिससे समुद्री पानी तथा जमा होनेवाले अवसाद के बीच इन समस्थानिकों का विलगीकरण नहीं होता, (iii) अवसाद के भीतर इन समस्थानिकों का कोई प्रव्रजन (माइग्रेशन) नहीं हो, तथा (iv) विश्लेषित पदार्थों में मलवा निर्मित (डेट्रिटल) कणों के उद्भववाले थोरियम के समस्थानिक नहीं रहते.

उपर्युक्त शर्तें यदि पूरी होती हैं तो अवसादों की आयु गणना के लिये दो समीकरणों का उपयोग किया जाता है जो निम्नलिखित हैं :-

$$R/R_o = e^{-\lambda t}$$

तथा

$$R = (I_o - I_{on}) / Th$$

जहां I_o समुद्री जल से अवक्षेपित आयोनियम की मात्रा, I_{on} अवसादों में यूरेनियम के विखंडन द्वारा उत्पन्न आयोनियम की मात्रा,Th समुद्री जल से अवक्षेपित किये गये थोरियम-232 की मात्रा, R_o सतही अवसादों में आयोनियम/थोरियम-232 की सक्रियता का अनुपात, λ आयोनियम का विखंडन स्थिरांक, $e \cong 2.73...$ चरघातांक आधार है तथा t समय है.

आयोनियम का अर्द्धजीवन काल आधुनिकतम जानकारी के अनुसार लगभग 75200 वर्ष है, जबकि सन् 1962 तक किये गये अध्ययनों में आयोनियम के अर्द्धजीवन काल का मान 80000 वर्ष लिया जाता था. अर्द्धजीवन काल $t_{1/2}$ तथा

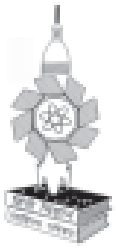

विखंडन स्थिरांक λ के बीच संबंध निम्नलिखित सूत्र के अनुसार स्थापित किया गया है.

$$t_{1/2} = 0.693/\lambda$$

पुनर्निर्मित थोरियम समस्थानिक को पृथक करने के लिये जो रासायनिक विधि अपनायी जाती है, उसमें अवसादों को सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा प्रतिक्रिया कराकर उसमें उपस्थित घुलनशील पदार्थ को घुला (लीच) लिया जाता है. इस क्रिया द्वारा अवशोषित समस्थानिक को हटा लिया जाता है, जबकि कणदार आयोनियम तथा थोरियम पीछे छूट जाते हैं. अम्लीय घोल से आयोनियम तथा थोरियम-232 समस्थानिकों को प्लैटिनम डिस्क के ऊपर इलेक्ट्रोड की स्थिति के आधार पर, निष्कर्षित (एक्सट्रैक्ट) करने के बाद शेल्फ स्पेक्ट्रोमीट्री द्वारा मात्रा-निर्धारण किया जाता है. इस अनुपात को थोरियम-232 के प्रत्येक विखंडन में आयोनियम के विखंडनों की संख्या के आधार पर प्रायः व्यक्त किया जाता है.

अध्ययनों से पता चला है कि गहरे समुद्र से प्राप्त अधिकांश क्रोड (कोर) नमूनों में आयोनियम-थोरियम-232 का अनुपात गहराई के साथ चरघातांकीय (एक्सपोनेंशियल) रूप से तथा निश्चित दर से घटता दिखायी देता है, किंतु कुछ क्रोड नमूनों में गहराई के अनुसार आयोनियम-थोरियम-232 अनुपात की कमी की दर अनियमित भी है. अनेक भूवैज्ञानिकों का मत है कि गहराई के अनुसार आयोनियम/थोरियम-232 अनुपात में कमी की दर में परिवर्तन अवसादन की दर से संबंधित है. कुछ ऐसे भी क्रोड मिले हैं जिनमें गहराई के साथ आयोनियम/थोरियम-232 अनुपात में कमी नहीं आती. बल्कि या तो वे बढ़ते हैं या स्थिर रहते हैं. इस बात की व्याख्या यह मानकर की जा सकती है कि इन क्षेत्रों में अवसादन की दर बिल निर्माणकारी जीवों (बरोइंग ऑर्गैनिज्म) तथा समुद्री धाराओं द्वारा बाधित की गयी है अथवा इन अवसादों में यूरेनियम के विखंडन से उत्पन्न आयोनियम की मात्रा बहुत अधिक है.

इस विधि द्वारा काल-निर्धारण के लिये जिन चार धारणाओं को अपनाया गया है, उनमें सबसे अधिक असंभाव्य इस बात को मान लेना है कि विश्लेषित पदार्थ में कणदार (डेट्रिटल) उद्भव की किंचित मात्रा भी थोरियम की नहीं है. अर्थात विश्लेषित पदार्थ की संपूर्ण मात्रा **तत्रजात** (औथिजेनिक) आयोनियम तथा थोरियम-232 की है. इसका कारण यह है कि अनेक क्रोड नमूने जिनमें शायद ही कोई तत्रजात खनिज उपस्थित रहते हैं, वे भी थोरियम-232 की काफी मात्रा रखते पाये गये हैं. यह थोरियम-232 अवश्य ही डेट्रिटल उद्भव का है या आयन-विनियम द्वारा अवसाद कणों की सतह पर शोषित हुआ है. यह अध्ययन आयोनियम तथा थोरियम-232 विधि तथा प्रोटाक्टिनियम/आयोनियम विधि द्वारा किया गया तथा एक ही नतीजे प्राप्त हुए.

प्रशान्त महासागर से प्राप्त दो क्रोड नमूनों का आयु-निर्धारण आयोनियम तथा थोरियम-232 के अनुपात के आधार पर किया गया तथा इसकी तुलना एटलांटिक महासागर से प्राप्त तीन नमूनों से की गयी, जिनका आयु-निर्धारण दो विधियों प्रोटाक्टिनियम विधि तथा प्रोटाक्टिनियम/आयोनियम विधि द्वारा किया गया था, प्रशान्त महासागर से प्राप्त क्रोड नमूनों में फौरामिनिफेरा के परिवर्त्तन के आधार पर आज से लगभग दस लाख वर्ष पूर्व परिवर्तनों की एक श्रृंखला स्पष्ट दिखाई पड़ी. लगभग एक लाख वर्ष से दस लाख वर्ष पूर्व के बीच (प्लिस्टोसीन काल) की ये घटनायें एटलांटिक से प्राप्त तीन नमूनों में घटी घटनाओं से संबधित मानी गयी हैं. दो भिन्न विधियों से निर्धारित इन प्लिस्टोसीन घटनाओं की आयु की तुलना की जा सकती है. इस प्रकार जीवाष्म वैज्ञानिक (पैलियोंटोलौजिकल) तादात्म्य (कोरिलेशन) के द्वारा आयोनियम/थोरियम विधि तथा प्रोटाक्टिनियम एवं प्रोटाक्टिनियम/थोरियम विधियों के बीच तुलना की जा सकती है. प्लिस्टोसीन काल में निर्मित विभिन्न चट्टानों की सीमाओं के काल-निर्धारण में दोनों विधियों द्वारा लगभग एक ही नतीजे प्राप्त होते हैं. अवसादन की दर जो आयोनियम/थोरियम विधि द्वारा मालूम की गयी वह परा चुम्बकीय ध्रुवीयता विधि से मालूम की गयी दर के बराबर है. अध्ययनों से पता चला है कि आयोनियम/थोरियम विधि द्वारा तीन लाख से चार लाख वर्ष पूर्व निर्मित अवसादों का काल-निर्धारण संतोषजनक ढंग से किया जा सकता है. इस विधि द्वारा जिन क्रोड नमूनों का काल निर्धारण किया गया उनमें गहराई के साथ आयोनियम थोरियम के अनुपात में चरघातांकीय ह्रास दिखाई पड़ा, हालांकि कभी-कभी इसमें अपवाद भी देखा जाता है.

इस विधि का उपयोग पुरातात्विक, सामुद्रिक (ओसेनोग्राफिक) तथा भूवैज्ञानिक पर्यावरण से प्राप्त नमूनों के काल-निर्धारण में भी संतोषजनक रूप से किया जा सकता है. इस प्रकार के नमूनों का प्रतिनिधित्व करते हैं, पुरातात्विक खुदाइयों से प्राप्त हड्डी, लकड़ी, काष्ठ कोयला, स्थलीय एवं समुद्री कार्बोनेट शैल, तथा समुद्री अवसाद के प्रतिदर्श.

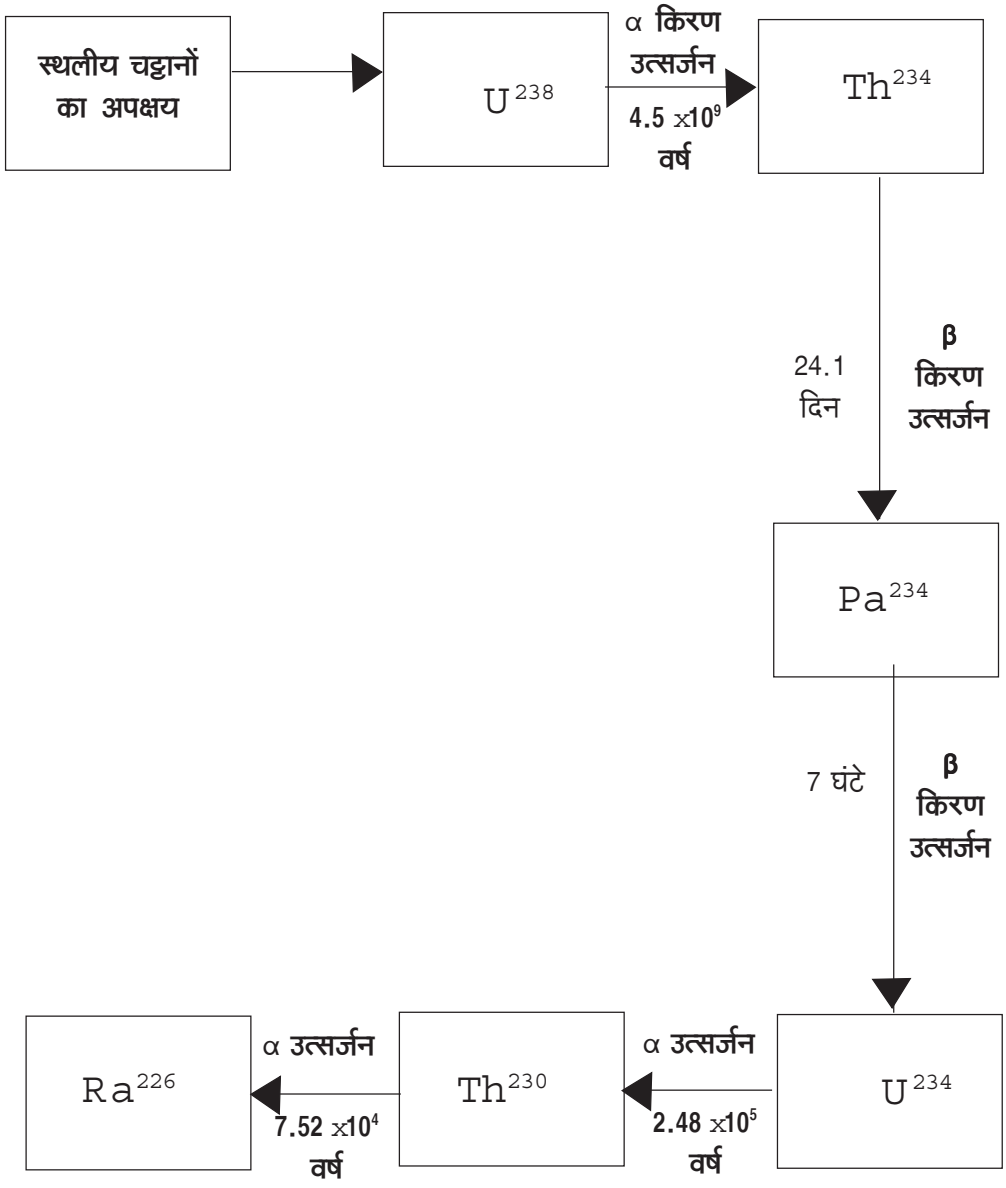

चित्र 1 : यूरेनियम-238 के विखंडन से आयोनियम का निर्माण तथा पुनः आयोनियम के विखंडन से रेडियम का निर्माण.

यूरेनियम-238 (U^{238}) -थोरियम-234 (Th^{234}) - प्रोटाक्टिनियम (Pa^{234}) - यूरेनियम - 234 (U^{234}) - आयोनियम (Th^{230}) - रेडियम (Ra^{226})

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

मानव प्राणघातक विदेशज पशुजन्य रोग और जैव सुरक्षा द्वारा बचाव

- डॉ.रमेश सोमवंशी -
विभागाध्यक्ष, विकृति विज्ञान विभाग,
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली (उ.प्र.)-243122
dr.rsomvanshi@gmail.com

मानव की भांति पशुओं को भी अनेक संक्रामक रोग होते हैं. मानव के अनेक संक्रामक रोग सिर्फ मानव में ही होते हैं. इसी प्रकार से पशुओं के अनेक संक्रामक रोग सिर्फ पशुओं में ही होते हैं. किन्तु कुछ संक्रामक रोग प्रजाति सीमा को नहीं मानते हैं. ऐसी स्थिति में मानव के रोग पशुओं व पशुओं से मानव में रोग संचरित होते हैं. ऐसे रोग पशुजन्य या जूनोटिक रोग कहलाते हैं. ये संख्या में लगभग 300 हैं. ये मानव जीवन हेतु संकट होते हैं तथा पशुओं द्वारा फैलते हैं.

विशाल विश्व की भौगोलिक सीमाओं में अनेक संक्रामक रोग विशेष भूखण्ड/भौगोलिक क्षेत्र में सीमित होते हैं. उदाहरणार्थ-येलोफीवर दक्षिणी अमरीका, सेटसे (tstse) मक्खी संक्रमण (अफ्रीका में) आदि. वर्तमान में आवागमन के तेज साधनों (विमान) के कारण दुनिया को 'गोलार्ध ग्राम' कहा जाता है. इसके कारण संक्रामक रोगों का भी तीव्रता से संचरण व प्रसार हुआ है. जलवायु परिवर्तन तथा गोलार्ध में ताप गरम होने से कीटों का प्रसार हुआ है तथा हाल के वर्षों में अनेक मानव व पशु रोग दुनिया के नये-नये क्षेत्रों में फैले हैं. इनके प्रकोपों से नयी-नयी समस्याओं के साथ मानव जीवन अत्यधिक खतरे में पड़ गया है. ऐसे प्रकोपों से पूर्व में भी हजारों लोग कालग्रस्त हुए हैं. विश्व स्वास्थ्य संगठन ऐसे मानव रोगों और ऐसे पशुजन्य रोगों पर निगरानी, शोध तथा बचाव हेतु उपाय विकसित करता है. प्रस्तुत लेख में चन्द विदेशज मानव प्राणलेवा पशुजन्य रोगों

चित्र -1 : क्रीमियन कॉन्गो रक्तस्रावीय ज्वर का वाहक हाइलोमा प्रजाति की किलनी

की चर्चा व इनके बचाव हेतु जैवसुरक्षा विषय पर चर्चा की है.

कीमियन-कांगो रक्त स्रावित ज्वर : एक समाचार, 11 जनवरी, 1911 अहमदाबाद (गुजरात) में घातक कीमियन-कांगों हीमेरिजिक ज्वर (सीसीएचएस) के प्रकोप से तीन मरे. मृतकों में थेः अमीनाबाई मोमिन, उनके चिकित्सक, डा.गंगाजीत शर्मा और नर्स आशा जोन. इसके अलावा इनके कई रिश्तेदार भी बीमार पड़े. यह भारत में सीसीएचएस का प्रथम प्रकोप था. कारण था-हायलोमा प्रजाति की किलनी (चित्र-1) संचारित नैरो नामक विषाणु. इस रोग का संचारण संपर्क द्वारा होता है. यह एक नये पशुजन्य विदेशज रोग का भारत में प्रवेश था.

स्वाइन फ्लू महाप्रकोप : सन् 2009 की स्वाइन फ्लू के प्रकोप की खबरों को याद करें. इसे एच-1 एन-1/2009 के नाम से जाना जाता है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 30 मई, 2010 तक इससे 214 देशों में हजारों लोगों की मृत्यु हुई. केवल भारत में 44,101 लोग संक्रमित हुए व 2679 मरे. दूसरी ओर दुनिया भर में 6,22,482 लोग संक्रमित हुए व 18,366 मरे. अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने इसे 'अमेरिका की राष्ट्रीय आपातकालीन स्थिति' मानने की घोषणा की. कहते हैं कि इस रोग का प्रारंभ मैक्सिको से हुआ था. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एच1 -

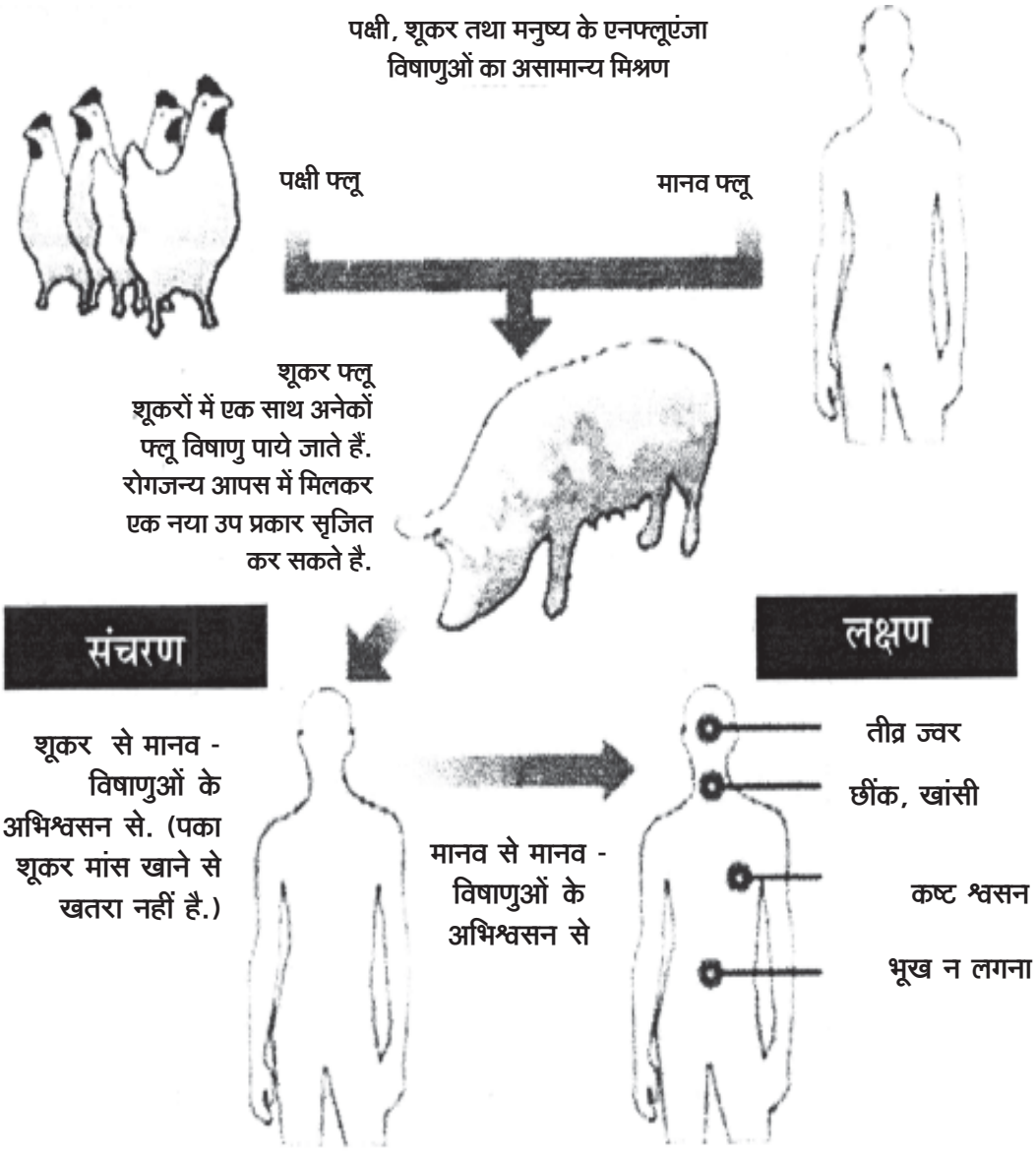

चित्र-2 : ए/एच 1 विषाणु का पक्षी, शूकर व मानव-चक्र

एन 1 प्रकोप को 'फेज 6 अलर्ट' अवस्था घोषित किया. यह उच्चस्तरीय चेतावनी थी जो इसके पूर्व में विरले ही घोषित की गई हो. इतिहास साक्षी है कि सन् 1918 में स्पेनिश फ्लू से यूरोप में 5-10 करोड़ लोग मरे थे. शूकर से मनुष्य में संचरण पशुजन्य शूकर इनफ्लुएन्जा कहलाता है **(चित्र-2)**. इस रोग में अत्यधिक मृत्यु का कारण 'साइटोकाइन स्टोर्म' माना जाता है. साइटोकाइन स्टोर्म से फेफड़ों में अत्यधिक द्रव, श्वेत कोशिका संचरण, फेफड़ों में मेक्रोफेगस के जमाव से कष्टपूर्ण श्वसन व अंततः रोगी की मृत्यु हो जाती है.

साइटोकाइन, तंत्रिका तथा प्रतिरक्षी कोशिकाओं द्वारा स्रावित विशिष्ट प्रकार की प्रोटीन हैं जो कि कोशिका माध्यमिक तथा द्रवीय प्रतिरक्षा उत्पन्न करती हैं. साइटोकाइन स्टोर्म में इनकी अत्यधिक मात्रा उत्पन्न होती है व कई रोगों (यथा एच1-एन1, एच 5-एन 1, सार्स आदि) में सर्वाधिक मृत्यु का कारण बनती है.

बर्ड फ्लू - सन् 2006 में कुक्कुटों में एक महामारी का प्रकोप हुआ. फरवरी, 2006-नवापुर, महाराष्ट्र, गुजरात व मध्य प्रदेश में, जुलाई, 2007-मणिपुर, बंगाल व त्रिपुरा जमशेदपुर, झारखण्ड में जनवरी, 2008-त्रिपुरा में, जून, 2010-असम व सिक्किम में, मई, 2010-पश्चिमी बंगाल (मुर्शिदाबाद) और फरवरी, 2011-अगरतल्ला, त्रिपुरा में बर्ड फ्लू के प्रकोप हुए. इन प्रकोपों पर समस्त राष्ट्र का ध्यान गया था. सन् 2006 में लोगों ने भय के कारण चिकन (मुर्गा) खाना बंद कर दिया था. लोग अंडा खाने से डर गये थे. इससे कुक्कुट उद्योगों को बहुत नुकसान हुआ. मुर्गियों में बर्ड फ्लू से हमारा कुक्कुट पालक कांप उठा था. इससे कुक्कुट उद्योग को अनुमानतः 30,000 करोड़ रुपयों की आर्थिक हानि हुई. रोग का कारण था एच1 एन5 विषाणु का प्रकोप (चित्र-3). यह विषाणु कुक्कुटों को संक्रमित करता है. जबकि शूकरों को कम ही प्रभावित करता है. परंतु, सबसे बड़ा डर है - मनुष्यों में संक्रमण फैल जाने का, क्योंकि यह विषाणु अंतर प्रजाति संक्रमण की क्षमता रखता है (चित्र-4). सौभाग्य से भारत में ऐसा नहीं हुआ. हालांकि विदेशों में सन् 2003 से अब तक एच1-एन1 से रोगी मुर्गियों के प्रत्यक्ष संपर्क से 300 मनुष्य संक्रमित व कालग्रस्त हुए. इससे हमें चौकन्ना रहने की आवश्यकता है.

निपा विषाणु ज्वर प्रकोप - पश्चिमी बंगाल के सिलीगुड़ी में निपा विषाणु मस्तिष्कशोथ प्रकोप की कहानी कम रोचक नहीं है. फरवरी, 2001 में सिलीगुड़ी में एक ज्वर का प्रकोप हुआ. तब इसका कारण नहीं ज्ञात हुआ. राष्ट्रीय विषाणु संस्थान, पुणे तथा सीडीसी, अटलांटा, जार्जिया, अमेरिका के वैज्ञानिकों ने इस पर संयुक्त अन्वेषण किया. ज्ञात हुआ कि यह बंगला देश में पहले से हो रहे निपा विषाणु व्युत्पन्न मस्तिष्कशोथ का प्रकोप है. यह भारत में निपा विषाणु रोग आघटन का पहला प्रतिवेदन था. अधिक जानकारी के लिए चड्ढा आदि का 2006 का शोध-पत्र पढ़े. प्रभावित लोग थे- मरीजों के संबंधी तथा चार अस्पतालों का स्टॉफ. इससे पूर्व सन् 1999 में मलेशिया में संक्रमित शूकरों से यह प्रकोप हुआ था. बांगलादेश में सन् 2001, 2003 व 2004 में इसका

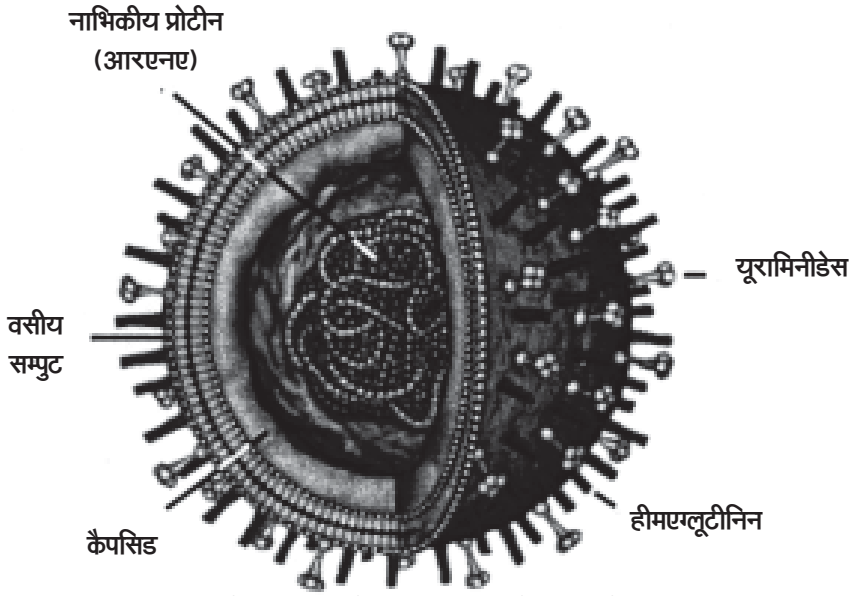

चित्र-3 : पक्षी इनफ्लूएन्जा विषाणु की संरचना

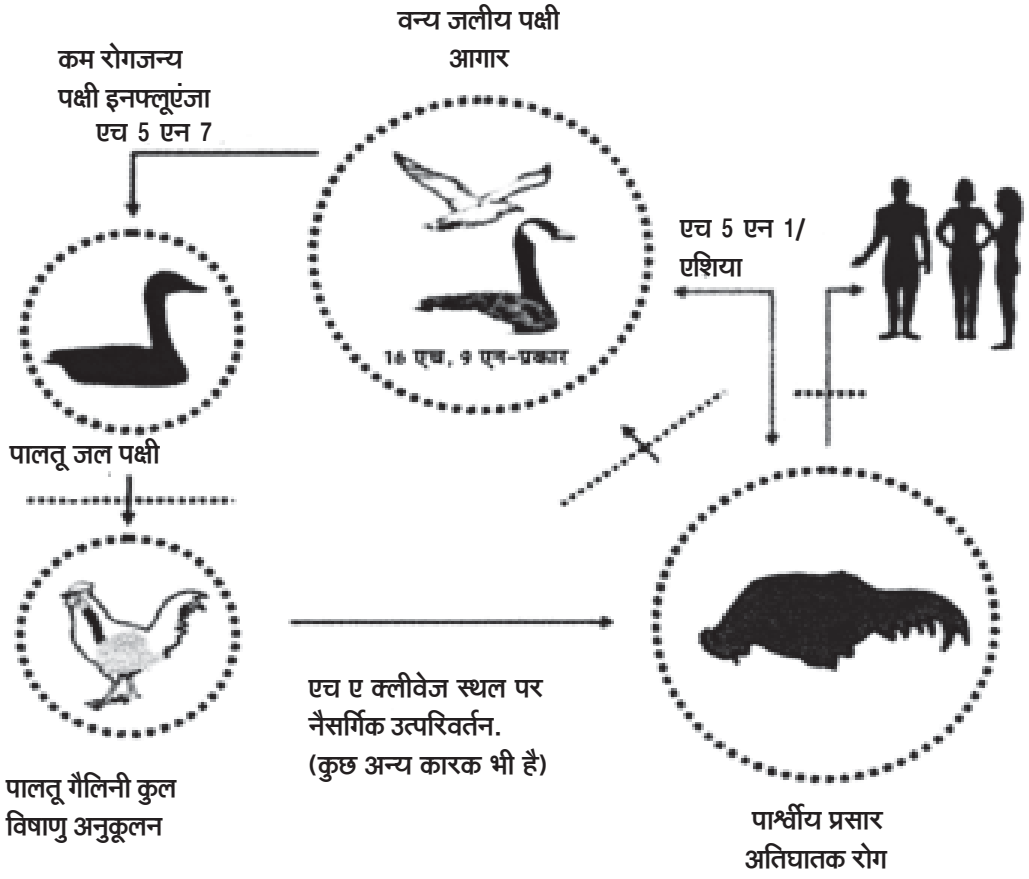

चित्र-4 : पक्षी इनफ्लूएंजा विषाणु का पक्षी-मानव-चक्र

मानव से मानव में संचरण हुआ. निपा विषाणु का प्राकृतिक स्रोत था-फलाहारी चमगादड़. इस प्रकार से पूर्वोत्तर भारत में यह रोग प्रविष्ट कर चुका है. कहते हैं कि विशेष प्रजाति के चमगादड़ (चित्र-5) की दूषित लार या मूत्र में मौजूद निपा विषाणुओं से खजूर, ताजी ताड़ी पीने वाले लोग प्रभावित होकर रोगी हुए होंगे.

घोड़ों का हेंड्रा विषाणु प्रकोप - आस्ट्रेलिया (1944) में, लगभग 21 घोड़ों को श्वास की एक बीमारी हुई. साथ ही दो लोग बीमार हुए व एक मरा. अब तक इस रोग के आस्ट्रेलिया में 10 प्रकोप हुए हैं. तीन में मनुष्य प्रभावित हुए.

चित्र-5 : निपा तथा हेंड्रा विषाणु के प्राकृतिक आगार विशिष्ट प्रजाति के फलाहारी चमगादड़

चित्र-6: जैव खतरे का प्रतीक चिन्ह

कारण था-हेंड्रा नामक विषाणु. इसका घोड़ों से मनुष्य में संचरण हुआ. विषाणु का प्राकृतिक आगार था - फलाहारी चमगादड़, इसके लक्षण थे-श्वसन और तंत्रिका तंत्रीय और डर था - कारक विषाणु उपभेद की आनुवंशिक विविधता. यह अधिक संक्रामक विषाणु क्षमता का प्रतीक है. घोड़ों और मनुष्यों में इसका विशिष्ट उपचार या टीका उपलब्ध नहीं है. अच्छी बात यह है कि यह विरल रोग है तथा आस्ट्रेलिया में ही सीमित है. निपा और हेंड्रा विषाणु एक ही कुल के सदस्य हैं.

सार्स - सार्स (SARS) का अनुवाद है प्रखर तीव्र श्वसनी संलक्षण. यह पशुजन्य रोग नहीं है. इसका प्रथम प्रतिवेदन सन् 2003 में एशिया से हुआ था. इसका कारण है - सार्स-करोना नामक विषाणु. नियंत्रण से पूर्व, कुछ ही माह में यह गोलार्ध प्रकोप-2003 बन गया. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सन् 2003 में कुल 8,098 लोग रोगग्रस्त हुए तथा 774 मरे. अमरीका में केवल आठ वृत्तान्त हुए. वह भी पूर्वी एशिया से लौटे सैलानियों में. तीव्र ज्वर, सिर दर्द, बेचैनी, शरीर दर्द व कुछ रोगियों में, दस्त के लक्षण उत्पन्न हुए. सूखी खांसी व निमोनिया रोग के प्रमुख लक्षण हैं. इसका मानव से मानव में संचरण होता है. निकट संपर्क (तीन फिट दूर) तथा छींक द्वारा रोग का प्रसार होता है.

बचाव उपाय-जैव सुरक्षा - यूरोपियों ने अमरीका की मूल आबादी को युद्ध में पराजित करके, जैविक हथियारों (चेचक फैलाकर) व पैसे से उनकी भूमि खरीदकर सफाया किया और वहां अपना कब्जा जमा लिया. कुछ वर्षों पूर्व आतंकवादियों ने पत्रों द्वारा अमेरिका में एंथ्रैक्स के विषाणुओं को फैलाने का प्रयास किया. मानव प्राणघातक विदेशज पशुजन्य रोगों के प्रसार व बचाव के उपाय हैं - उन्हें शोध व अध्ययन द्वारा समझना व बचाव उपायों द्वारा नियंत्रण करना. ऐसे घातक रोगजन्यों को विशेष प्रयोगशालाओं में जैवसुरक्षा (चित्र-6) उपायों को अपनाकर हस्तगत किया जाता है.

जैवसुरक्षा - यह तकनीकी शब्द व्याधिरोधक सिद्धान्तों, प्रौद्योगिकियों व अभ्यास से संदर्भित है ताकि रोगजन्यों व विषों का गैर-इरादतन अनावरण न हो व ये दुर्घटनावश मुक्त न हों. इसके स्तर-I, II, III एवं IV होते हैं. इसका स्तर व्यक्तियों, पर्यावरण व समुदाय को बढ़ते क्रम में प्रतिरक्षा प्रदान करने के साथ बढ़ता है.

जैव सुरक्षा के स्तर चार प्रकार के होते हैं -

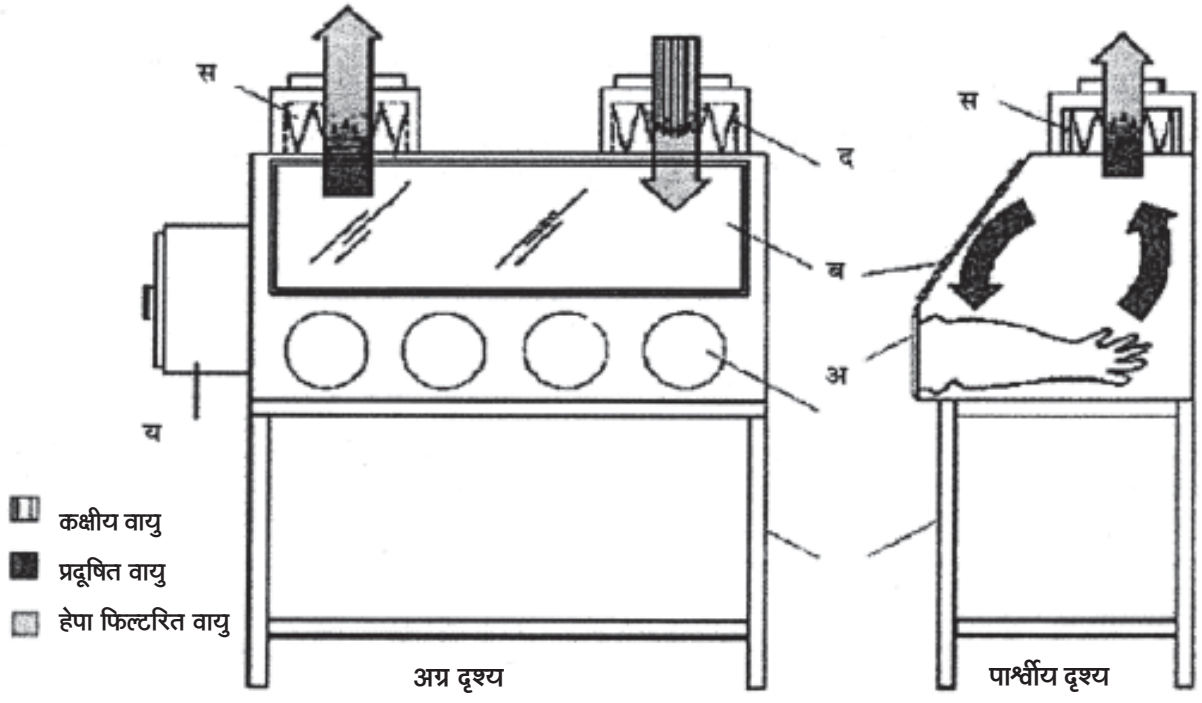

चित्र-7 : वर्ग जैव सुरक्षा कैबीनेट : (अ) दस्ताना स्थल, (ब) शैस, (स) हेपा फिल्टर एक्सहास्ट, (द) हेपा फिल्टर आपूर्ति एवं (य) द्विअंतीय आटोक्लेव

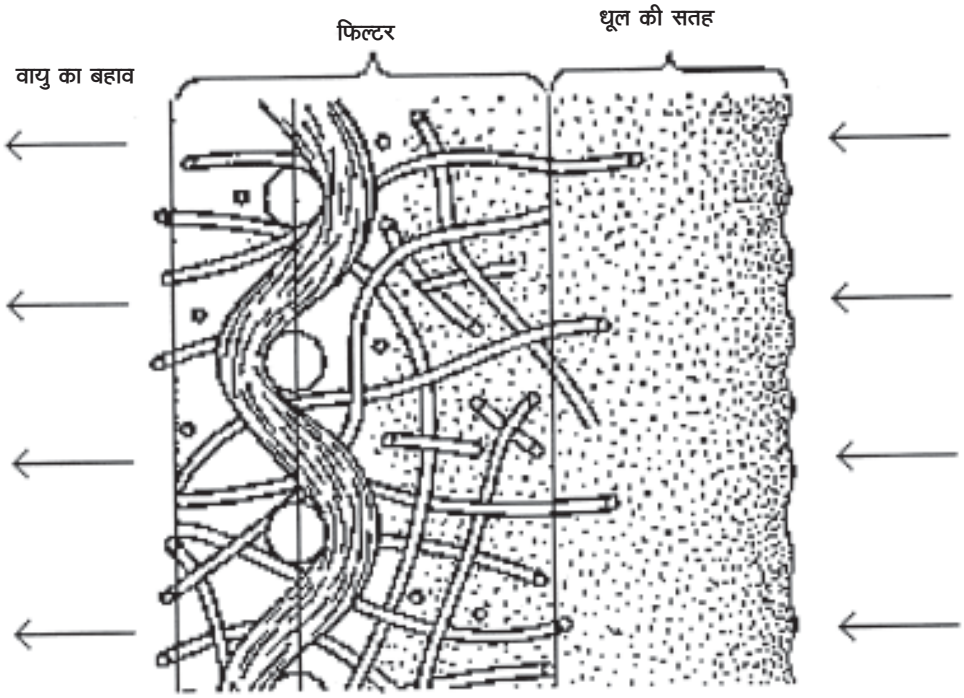

चित्र-8 : हेपा फिल्टर का सिद्धान्त

I. **व्यक्ति व समुदाय को न्यूनतम खतरा** - ये रोगाणु न्यूनतम खतरनाक होते हैं. प्रयोगशाला में कार्य खुली बेंच पर किया जाता है. उदाहरणार्थ-अरोग्यजन इ. कोलाई, कैनाइन हिपेटाइटिस विषाणु आदि. इनसे मानव स्वास्थ्य पर कोई खतरा नहीं होता है.

II. **मध्यम व्यक्ति खतरा व न्यूनतम समुदाय खतरा** - ये रोगाणु मध्यम दर्जे के खतरनाक स्तर के होते हैं. प्रयोगशालीय कार्य के समय वहां प्रवेश निषेध की व्यवस्था का प्रबंध व प्रशिक्षित कार्यकर्ता होना चाहिए. उदाहरणार्थ-इनफ्लुएन्जा, एचआईवी, डेंगू, जीएमओ आदि.

III. **उच्च व्यक्ति खतरा व कम समुदाय खतरा** - ये गंभीर/घातक रोग कारक होते हैं. इन पर वैज्ञानिक, अध्यापन, शोध या उत्पादन प्रयोगशालाओं में जैवसुरक्षा कैबीनेट में कार्य करते हैं, या व्यक्तिगत सुरक्षा संयंत्र व विशिष्ट वस्त्र प्रयोग करते हैं. साथ ही विशेष अभियांत्रिक डिजाइनवाली प्रयोगशाला में काम किया जाता है. उदाहरणार्थ - एन्थ्रैक्स, टीबी, वेस्ट नाइल, सार्स, येलो फीवर आदि.

IV. **उच्च व्यक्ति व उच्च समुदाय खतरा** - इस वर्ग में खतरनाक विदेशज रोग कारक आते हैं जो जानलेवा हैं व जिनके टीके या उपचार उपलब्ध नहीं हैं. जैव सुरक्षा-3 कैबीनेट में कार्य करनेवाला कार्यकर्ता एकल धनात्मक दाबयुक्त 'मून सूट' पहनता है जिसमें जीवन समर्थन प्रणाली होती है. प्रयोगशाला बिल्कुल अलग स्थान पर होती है. यहां आवागमन प्रयोगशाला निदेशक द्वारा नियंत्रित होता है. यह प्रयोगशाला विशिष्ट अभियांत्रिक डिजाइनवाली होती है जिसमें एअरलॉक प्रवेश, वाह्य स्नान गमन व विशेष वर्ज्य पदार्थ निसारण प्रबन्ध होता है. उदाहरणार्थ-चेचक, सीसीएचएस, विविध रक्तस्रावीय ज्वर, इबोला विषाणु संक्रमण आदि.

जैव सुरक्षा सयंत्र - जैव सुरक्षा कैबीनेट : यह घेरेदार, रोशनदानयुक्त प्रयोगशाला कार्य स्थल है जो कार्यकर्ता को रोगजन्य से सुरक्षा प्रदान करता है. विभिन्न जैव सुरक्षा स्तर के रोगजन्यों को विशिष्ट प्रकार/वर्ग के कैबीनेट में हस्तगत करते हैं. यथा -

वर्ग-1 - यह कैबीनेट व्यक्तिगत तथा पर्यावरण सुरक्षा प्रदान करता है किन्तु पदार्थों की सुरक्षा नहीं.

वर्ग-2 - यह कैबीनेट नमूने व पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करता है. इसमें हेपा फिल्टर लगा होता है. इसके चार प्रकार हैं - ए1, ए2, बी1, बी2. लगभग 95 प्रतिशत जैव सुरक्षा कैबीनेट ए2 प्रकार के होते हैं. प्रायः इनका प्रयोग करते हैं.

वर्ग-3 - यह कैबीनेट सर्वोच्च जैवसुरक्षा प्रयोगशाला में प्रयुक्त होती है (चित्र-7). यह गैसटाइटयुक्त, घेरायुक्त संयत्र है जिसमें पदार्थ दो दरवाजेवाले आटोक्लेब के द्वारा आता-जाता है. इसमें लगे ग्लोज के प्रयोग से कार्यकर्ता रोगजन्य विषाणु के संपर्क में नहीं आता है. ये कैबीनेट जटिल व विशिष्ट अभियांत्रिक प्रयोगशाला में लगे होते हैं.

हेपा फिल्टर : हेपा का पूरा अर्थ है- हाई इफीसियेंसी पार्टीकुलर एअर फिल्टर (चित्र-8 व 9). यह 0.3 माइक्रोमीटर या उससे बड़े आकार के 99.97 प्रतिशत वायुजन्य कणों को रोक देता है. इसका प्रयोग उच्च प्रौद्योगिकी उद्योग जैसे कि ऐरोस्पेस, भैषज्य प्रसंस्करण, चिकित्सालयों, स्वास्थ्य देखभाल व जैवसुरक्षा संयत्रों में होता है. यह विशेष सिद्धांत द्वारा कार्य करता है जिसका चित्र-9 में उल्लेख है.

उल्पा और सुल्पा फिल्टर : उल्पा (ULPA) और सुल्पा (SULPA) का मतलब है - अल्ट्रा लो पेनीट्रेशन एयरफिल्टर. सुल्पा में 'एस' का अर्थ है-सुपर. इनकी क्षमता है - 99.999 तथा 99.9999 प्रतिशत डॉप (DOP) क्षमता. डॉप का अर्थ है-डाइस्टाइल थेलेट-यह एक माप प्रणाली है. ये अधिक क्षमतावान आधुनिक फिल्टर हैं जो कि जैव सुरक्षा स्तर-1 में प्रयुक्त होते हैं.

एक दूरदर्शी की सोच व देन : मानव व पशुओं के घातक विदेशज रोगों को भलीभांति जानने वाले एक भारतीय दूरदर्शी व भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर (उ.प्र.) के तत्कालीन निदेशक डॉ.चिंतामणि सिंह ने सन् 1973 में एक आधुनिक विज्ञान संस्था की कल्पना रखी कि भारत में एक पशुरोग अध्ययन से संबंधित उच्च सुरक्षा प्रयोगशाला की स्थापना हो. कृषि एवं खाद्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र विकास एजेंसी, विश्व बैंक व भारत सरकार आदि के तकनीकी व आर्थिक सहयोग से ऐसी ही प्रयोगशाला की भोपाल में स्थापना हुई. जून, 2000 में इसका उद्घाटन भारत के तत्कालीन कृषि मंत्री श्री नीतीश कुमार ने किया था. यह जैव सुरक्षा स्तर-4 की क्षमतायुक्त अति आधुनिक प्रयोगशाला है. अब इसका स्तर (जैव सुरक्षा स्तर) 3+1 है. इसे ओआईई की पक्षी इनफ्लुएन्जा रेफरल प्रयोगशाला का दर्जा प्राप्त है. इसने भारत में अनेक मानव प्राण लेवा विदेशी पशुजन्य व पशु रोगों को प्रवेश से रोकने व उनके निदान/नियंत्रण में अभूतपूर्व योगदान दिया है. भारत में राष्ट्रीय रोग नियंत्रण केंद्र (एनआईसीडी) नई दिल्ली व राष्ट्रीय विषाणु संस्थान, पुणे, घातक विदेशज संक्रामक रोगों पर नजर रखता है. हिसडल, भा.प.चि.अ.सं.परिसर (लेखक की प्रयोगशाला) भोपाल, विदेशज पशु रोगों के निदान व इसकी रोकथाम की तैयारी में लगा है. प्रयोगशाला में सजगतापूर्वक जैव सुरक्षा के नियमों का पालन करना अनिवार्य है. स्वयं व पर्यावरण को संक्रामक रोगजन्यों से बचायें. स्वस्थ रहें, देश को आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाएं व चैन की बंशी बजायें.

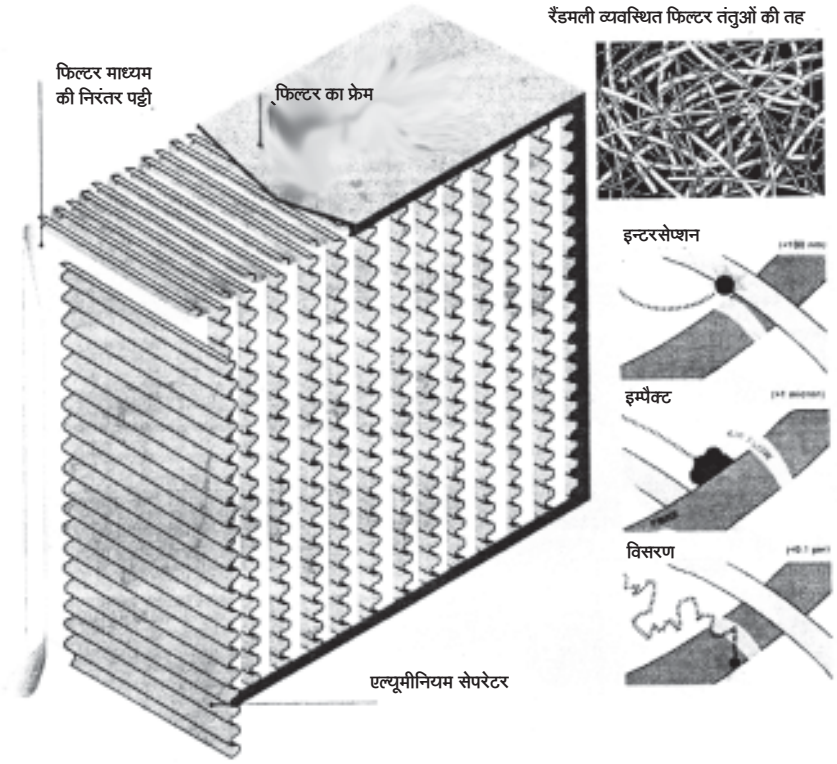

चित्र - 9 : हेपा फिल्टर की रचना व कार्य सिद्धांत

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

भारत के अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सूखते पारंपरिक तालाब

- अशोक कुमार सिंह -
वरिष्ठ वैज्ञानिक, केंद्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान,
छलेसर, आगरा-282006 (उ.प्र.)

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांव में रहती है. उसकी जरुरी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये जल संसाधनों का सही तरीके से पूरा विकास किया जाना चाहिये. पूर्वकाल में जल संसाधनों के विकास में उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, मौसम तंत्र, मृदा, वनस्पति व अन्य जरुरतों को ध्यान में रखा गया था. यह विकास इस तरह से किया गया था, जिससे ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवालों की आवश्यक जरुरत न केवल पूर्ण हों, बल्कि पड़ोस के क्षेत्र में रहनेवालों के साथ भी किसी तरह का संघर्ष न हो. साथ ही साथ जल संसाधनों का दुरुपयोग भी न हो. इस तरह का जल प्रबंधन 80 के दशक तक अच्छी तरह से चला. किंतु, पिछले कुछ वर्षों से भारत सरकार व राज्य सरकारों द्वारा संचालित जलग्रहण परियोजनाओं के कुछ कार्यक्रमों से इस जल संरक्षण व प्रबंधन पर बुरा असर पड़ा है. जलागम कार्यक्रम (water-shed programme) में जलसंरक्षण (water harvesting) पर अत्यधिक जोर दिया गया है. जिसमें जलग्रहण क्षेत्रों के नालों में जल संरक्षण के लिए छोटे-2 बांध (एनीकट व चैक डैम) बनाये गये. किंतु, इन छोटे-2 बॉधों को बनाने में दो बातों को ध्यान में नहीं रखा गया - एक तो जलग्रहण क्षेत्र में जल संरक्षण के लिये जल की उपलब्धता, व दूसरा बनाये गये बांधों की जगह का उद्देश्य के अनुसार सही चुनाव. इन दो कारणों से पारंपारिक तालाबों (Tanks) पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है और गांव की जीविका कहे जानेवाले ये तालाब अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं.

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य तालाबों को पुनर्जीवित क़रने के सही तरीके सुझाना जिससे की इन तालाबों व भूजल (ground water) उपयोग करनेवाले किसानों की जीविका की हानि न हो एवं पर्यावरण में सुधार भी हो सके.

कर्नाटक के अर्द्धशुष्क क्षेत्र (semi arid zone) में कुछ समय पहले की गई एक खोज, यह दर्शाती है कि अगर समय रहते उचित उपाय नहीं किये गये, तो ये तालाब एक दिन इतिहास का हिस्सा बनकर रह जायेंगे. जलग्रहण विकास के कार्यक्रम के प्रभाव को जानने के लिये कर्नाटक के अलग अलग हिस्सों में तीन तालाबों को चुना गया, जो कि गुडलूर तालाब जिला चित्रदुर्ग व अनबूरतालाब-जिला बैलारी में स्थित हैं. कर्नाटक के अर्द्धशुष्क क्षेत्र में वेल्लारी जिले के अनबूरतालाब-जिला बैलारी, जो कि 2150 हैक्टेअर क्षेत्रफल में 76^0 22′ से 76^0 33′ उ. देशान्तर एवं 14^0 33′ से 14^0 42′ पू. अक्षांश में विस्तारित है. (चित्र-1) इसमें पांच गांव अनबूर, बीजी हल्ली, जोगी हल्ली, डीबी हल्ली, उपरहल्ला विकास खण्ड में स्थित हैं. जिसमें जलग्रहण की मृदा लाल-दोमट है, जो कि ग्रेनाइट व गनीसिस की परतों से युक्त है. इसकी समुद्र तल से ऊंचाई 600-711 मीटर तक है. यहां पर जलग्रहण क्षेत्र का सामान्य ढ़लान 1.5 से 3.5 प्रतिशत तक है. मुख्य क्षेत्रीय फसलें जैसे-ज्वार, धान, मक्का, रागी, मूंगफली, सूरजमुखी, कपास, चना तथा सब्जियां हैं. इन क्षेत्रों में जल संरक्षण के लिए जल की उपलब्धता 11 से 18 प्रतिशत तक मापी गई है.

अपवाह जल की गणना : विगत 11 वर्षो (2000-2010) की वर्षा जल अपवाह की गणना करने के लिये बैल्लारी से मिलें आंकडों द्वारा ली गयी इस क्षेत्र की सामान्य वर्षा 531 मिमी (401 से 654 मिमी) थी. एक दिन की 12.5 मिमी से अधिक वर्षा को कटावी वर्षा मानकर अपवाह जल के लिये कर्व नम्बर विधि (curve number method) से गणना की गयी, जिसमें कटावी वर्षा 271 मिमी (सामान्य वर्षा की 51 प्रतिशत) और अपवाह जल की मात्रा करीब 69 मिमी (सामान्य वर्षा का 11 प्रतिशत) पायी गयी.

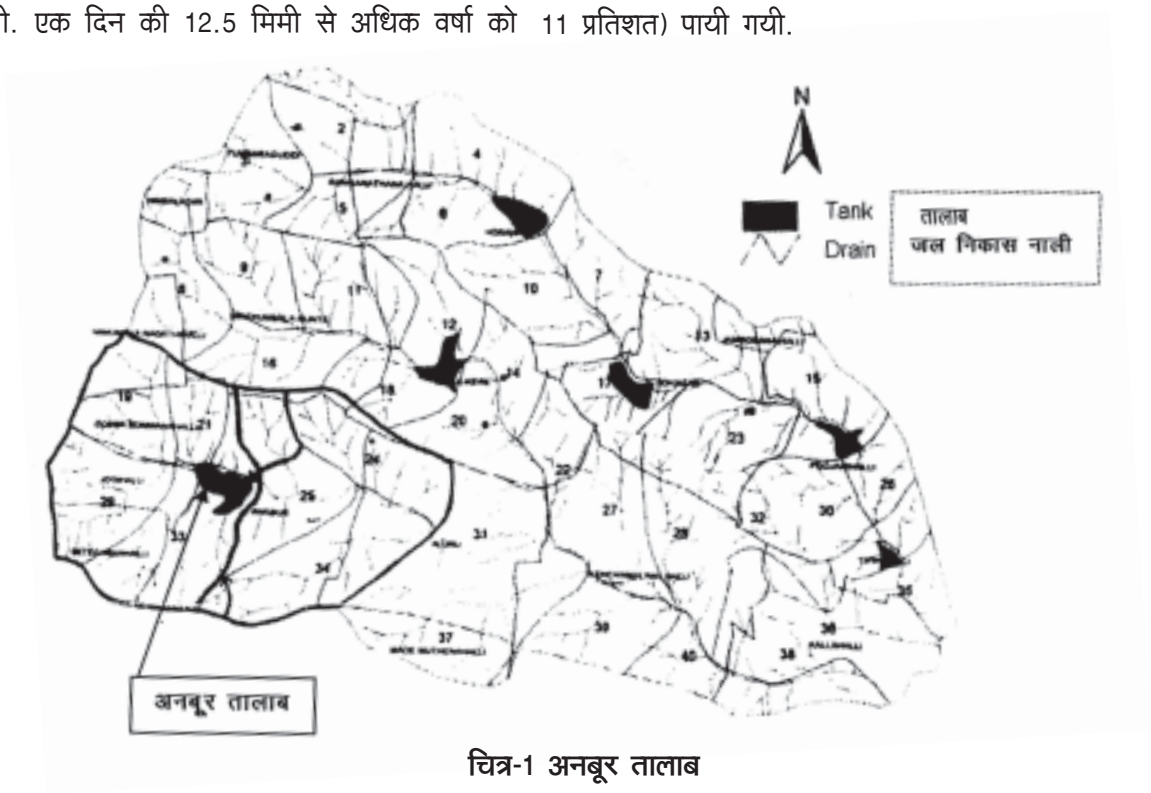

चित्र-1 अनबूर तालाब

(सारणी-1)

सारणी :- 1 अनबूर तालाब का वार्षिक अपवाह

वर्ष	कुल वर्षा (मिमी)	कटावी वर्षा (मिमी)	अपवाह (मिमी)	वर्षा के दिन	अपवाह के दिन
2000	547.9	189.1	48.0	43	5
2001	530.1	236.0	76.9	36	6
2002	463.1	200.2	33.3	39	6
2003	506.9	262.0	96.8	36	6
2004	576.8	378.0	108.8	37	10
2005	499.3	257.3	78.7	26	10
2006	568.9	371.8	60.7	33	8
2007	401.3	104.52	20.1	42	3
2008	506.5	348.3	60.6	42	7
2009	654.5	303.3	66.4	47	9
2010	582.2	230.6	41.9	49	7
औसत	530.68	270.98	62.9	39	7
		(51%)	(11%)		(18%)

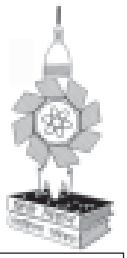

कर्नाटक राज्य के कुछ तालाबों के अपवाह जल में आई कमी की सारांश में समीक्षा

तालाबों के नाम	अपवाह जल में आई कमी के कारण
गुडलूर (जिला चित्रदुर्ग)	नालों में से जमा रेत (silt) का निकालना व खनन के कारण जलग्रहण क्षेत्र में जलभराव की क्षमता का बढ़ जाना
अनबूर (जिला बैल्लारी)	जलाशय निर्माण के समय तालाब में दो सहायक नालियों द्वारा अपवाहित जल की आमद होती थी. परंतु एक नाली पर जलसंरक्षण संरचनाओं के बनने व दूसरी नाली के जलग्रहण क्षेत्र का संरक्षण बहुत अच्छा न होने के कारण ये नालियां अपना उद्देश्य पूरा नहीं कर पा रहीं है.
इनचिगरी (जिला बीजापुर)	इनचिगरी (बीजापुर) जलाशय के अधिग्रहण क्षेत्र में नालियों पर किसानों द्वारा बड़े-बड़े बांध बनाने से अपवाह जल की आमद अवरुद्ध हुई है व इसके अलावा गन्ना व धान जैसी फसलों के लिये अत्यधिक भूजल दोहन होना, क्षेत्र में पेयजल समस्या का मुख्य कारण बना है.

परिणाम व चर्चा -

अनबूर तालाब का पुराना स्वरुप - अनबूर तालाब के जल ग्रहण (2150 हेक्टर) में लगभग 531 मिमी वर्षा होती है. इस तालाब की क्षमता 144 हेक्टेयर मीटर है. पहले इस तालाब से करीब 65 हे., क्षेत्र सिंचित होता था. अनबूर तालाब का जलग्रहण क्षेत्र कुल 326 (हे. मी.) था, इनके बहाव की दिशा में परिवर्तन कर अपवाह जल को तालाब तक लाया गया, जिससे कि तालाब में जल स्तर अपनी क्षमता तक आ सके. वर्ष 2004 में अधिकतम अपवाह जल (270 हेक्टेयर मीटर) मापी गई. उपरोक्त आंकड़ों से दर्शित है कि यह तालाब पहले वर्षा के समय एक बार अवश्य भरते थे तथा उसके बाद कुछ मात्रा में अपवाही जल निष्कासित (spill over) होकर नीचे के तालाबों को चला जाता था (सारणी-2)

गत वर्षों क़ी वर्षा के आंकड़ों से यह पाया गया कि 73 प्रतिशत अपवाह जल माह जुलाई, अगस्त व सितंबर में व 27 प्रतिशत अन्य महिनों में रहा. यह अपवाह जल वर्षा के केवल 7-10 दिनों के अंदर होता है. जब ये तालाब अपनी क्षमता तक भरते थे, तब न केवल 65 हैक्टेयर में विभिन्न फसलों की सिंचाई होती थी वरन समाज के विभिन्न वर्गों की जीविका भी इन्हीं तालाबों पर निर्भर थी. जिसके कारण ग्रामीण वर्ग गांव छोड़ कर जीविका के लिए शहर की ओर कम ही पलायन करते थे.

सारणी :- 2 अनबूर जल ग्रहण क्षेत्र में महिनेवार अपवाह जल, मि.मी.

वर्ष	अप्रैल (मिमी)	मई (मिमी)	जून (मिमी)	जुलाई (मिमी)	अगस्त (मिमी)	सितंबर (मिमी)	अक्तूबर (मिमी)	नवंबर (मिमी)	कुल (मिमी)	तालाब में जल की आवक (हे.मी.)	तालाब में जल की आवक (हे.मी.)	
											दोनों नालियों के बाद	एक नाली के बाद
2000	-	-	5.2	-	1.6	-	41.2	-	48.0	103.20	118.85	107.40
2001	3.2	-	-	-	64.0	9.7	-	-	76.9	165.35	190.40	172.87
2002	-	-	21.3	9.9	2.1	-	-	-	33.3	71.60	82.45	74.86
2003	-	13.3	77.2	-	-	-	5.4	0.9	96.8	208.12	239.67	217.61
2004	11.8	4.2	90.0	-	1.8	-	-	0.9	108.8	233.92	269.40	244.36
2005	-	-	34.4	-	20.1	10.3	-	13.9	78.7	169.21	194.85	145.66
2006	-	10.1	-	-	10.0	12.5	28.1	-	60.7	130.51	150.28	136.45
2007	-	-	2.2	-	-	3.8	14.1	-	20.1	43.22	49.77	45.19
2008	-	6.2	-	-	2.0	3.2	49.2	-	60.6	130.29	150.04	136.23
2009	-	-	-	0.9	4.2	57.6	3.7	-	66.4	142.76	164.30	149.26
2010	2.4	-	0.9	5.2	0.02	16.1	-	15.3	41.9	90.09	103.63	96.19
औसत	0.16	3.1	21.0	1.5	9.8	10.3	12.9	2.7	62.9	135.3	155.74	138.55

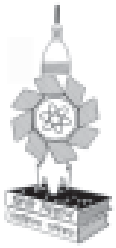

अनबूर तालाब का जल ग्रहण क्षेत्र = 2150 हेक्टेअर है तथा अनबूर तालाब के लिये दो अतिरिक्त नालियो का जलग्रहण क्षेत्र = 228+98 = 326 है.

अनुबूर तालाब का वर्तमान स्वरुप - वर्तमान अध्ययन व तालाब के अपवाह जल की मात्रा को देखने के बाद पाया गया कि यह तालाब पिछले 11 वर्षों में अपनी पूर्ण क्षमता तक नहीं भर सका. शोध द्वारा यह भी पता चला कि तालाब के जल आवक में आयी कमी के कई कारण रहे हैं, उनमें से मुख्य कारण निम्न हैं -

1. जलग्रहण क्षेत्र में अत्यधिक जलसंरक्षण के लिये संरचनाओं (structures) का निर्माण होना.
2. भूजल का अत्यधिक दोहन.
3. बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाकर खेती करना.
4. सरकारी नीतियां.

1. जलग्रहण क्षेत्र में अत्यधिक जलसंरक्षण के लिये संरचनाओं का निर्माण होना : अनबूर तालाब के जल के जलग्रहण क्षेत्र में जलागम परियोजना वर्ष 1995 में प्रारंभ हुई. जिसमें विभिन्न प्रकार की जल एवं मृदा संरक्षण की 26 संरचनाओं का निर्माण हुआ (सारणी-3). इसके कारण अधिकतर अपवाह जल इन संरचनाओं के पीछे रुक जाता है. जिससे तालाब तक बहुत कम अपवाह जल ही जा पाता है. इस अध्ययन से एक विशेष जानकारी यह भी मिली कि इन जल संरक्षण संरचनाओं के पीछे एकत्रित जल का वाष्पीकरण स्तर तालाब के जल के वाष्पीकरण स्तर से कहीं अधिक होता है और उससे कहीं अधिक मात्रा में जल का वाष्पीकरण के द्वारा क्षरण भी होता है (सारणी-4).

2. भूजल का अत्यधिक दोहन : किसी भी क्षेत्र में सामान्यतः सिंचित फसलों की पैदावार और बारानी क्षेत्र की फसलों की तुलना की जाय तो यह पाया गया है कि सिंचित क्षेत्र की फसलों द्वारा 3 से 5 गुना अधिक लाभ होता है. इसी कारण किसानों ने जलग्रहण क्षेत्र में सिंचाई के लिये गहरे कुएं खोदना शुरु कर दिया. 1990 से पहले किसानो के पास केवल कम गहरे 76 कूएं थे, जिनकी गहराई 10 मीटर तक थी, इस तालाब पर ही आश्रित थे. परंतु आज जलग्रहण क्षेत्र के अंदर के ये कुएं सूख गये हैं. अब इनके स्थान पर नई तकनीकी वाले बोरवैल व ट्यूबवैल बनने लगे हैं. जिनकी गहराई 300 मी. से भी अधिक है. इस प्रकार के बोरवैल के कारण क्षेत्र के अंदर भूजल का अत्यधिक दोहन हुआ व भू-जल स्तर बहुत तेजी से नीचे गिरता गया. जिसके कारण असंतृप्त क्षेत्र (unsaturated zone) में वृद्धि हुई. इसके कारण तालाबों व नालियों के अंदर बहुत कम समय के लिये जल नजर आता है (सारणी-5).

3.बंजर जमीन को कृषि योग्य बनाकर कृषि करना - जलागम परियोजना के अंतर्गत इस बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है कि किस तरह से बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया जाय. इसके लिये बंजर भूमि पर बड़े-बड़े

सारणी :- 3 अनबूर तालाब जलग्रहण क्षेत्र में जल संरक्षण संरचनाओं का विस्तृत विवरण

गांव/संरचनाओं के प्रकार	संरचनाओं की संख्या	जलफैलाव क्षेत्र (हे.)	क्षमता (हे.मी.)
बी.जी.हल्ली			
चैक्र्डन	4	1.60	0.64
नाला बंद	1	4.00	5.60
जोगीहल्ली			
चैक्र्डन	5	1.50	0
नाला बंद	1	2.25	2.80
डी.बी.हल्ली			
चैक्र्डन	2	0.24	0.144
नाला बंद	1	2.00	2.40
अनबूर			
चैक्र्डन	10	2.00	0.60
नाला बंद	2	4.00	5.60
कुल मात्रा	26	17.59	15.54

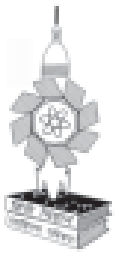

सारणी :- 4 तालाब में जल आवक पर संरचनाओं का प्रभाव

			जलागम कार्यक्रम से पहले			जलागम कार्यक्रम के बाद		
वर्ष	वर्षा (मि.मि)	अपवाह जल (हे.मी.)	आवक जल (हे.मी.)	स्तर जल (हे.मी.)	निष्कासन (हे.मी.)	आवक जल (हे.मी.)	स्तर जल (हे.मी.)	निष्कासन (हे.मी.)
2000	547.9	107.4	81.27	69.08	0	75.06	63.8	0
2001	530.1	172.87	142.98	146.94	2.94	130.56	110.98	0
2002	463.1	74.86	46.79	39.77	0	35.02	29.77	0
2003	506.9	217.61	181.42	154.21	10.21	168.33	153.08	0
2004	576.8	244.36	206.15	175.23	31.23	193.74	164.68	20.68
2005	499.3	145.46	121.51	103.28	0	106.67	90.67	0
2006	568.9	136.45	90.05	76.54	0	62.21	52.88	0
2007	401.3	45.19	20.35	17.29	0	14.14	12.02	0
2008	506.5	136.23	101.85	86.56	0	93.04	79.09	0
2009	654.5	140.26	100.13	100.41	0	111.92	95.13	0
2010	582.2	94.19	58.22	40.98	0	35.46	30.14	0
औसत	530.7	137.7	104.6	91.8	4.0	93.3	80.2	1.9

सारणी :- 5 समय के अनुसार इस अध्ययन क्षेत्र में कुओं की संख्या

वर्ष	बी.जी.हल्ली		जोगीहल्ली		डी.बी.हल्ली		अनबूर		कुल
जलग्रहण क्षेत्र	कुएं	इनवेल बौरवेल	कुएं	इनवेल बौरवेल	कुएं	इनवेल बौरवेल	कुएं	इनवेल बौरवेल	
1965 तक	6(6)	-	20(20)	-	20(20)	-	22(22)	-	68(68)
1965-70	6(6)	-	20(20)	1	20(20)	-	22(22)	-	1
1970-75	6(6)	-	20(20)	1	20(20)	-	22(22)	-	1
1975-80	6(6)	-	20(20)	1	20(20)	-	22(22)	-	1
1980-85	6(6)	-	20(20)	4	20(20)	-	22(22)	-	4
1985-90	6(6)	-	20(20)	3	20(20)	-	22(22)	-	3
1990-95	6(6)	1	20(20)	3	20(20)	2	22(22)	5(1)	11(1)
1995-00	6(6)	4	20(20)	10	20(20)	14	22(22)	3	31
2000-2010	6(6)	5	20(20)	10	20(20)	1	22(22)	13	29
कुल	6(6)	10	20(20)	31	20(20)	17	22(22)	17	147(69)

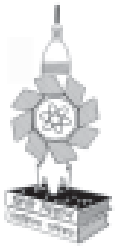

मिट्टी के बांध बनाये गये व वर्षा जल को रोका गया. उन खेतों में संकर प्रजाति की फसलों को उगाया जाता है. यह सब प्राकृतिक संसाधनों की स्थिति को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता है, जिसके कारण जल उपयोग संकर जाति की फसलों को उगाने में अत्यधिक होता है. शोध से यह भी ज्ञात हुआ कि जहां पहले 214 हे., क्षेत्रफल में सिंचाई होती थी. वह अब बढ़कर 336 हे.(57 प्रतिशत अधिक), तक पहुंच गई. वहीं पर भूजल उपयोग 207 हे.मी., से बढ़कर 340 हे.मी. (65 प्रतिशत अधिक), तक पहुंच गया (सारणी-6).

4. सरकारी - नीतियां :-

जलाशयों की वर्तमान स्थिति के लिये सरकारी नीतियां भी दोषपूर्ण हैं. इनमें संशोधन अति अनिवार्य लगते हैं जो इस लेखक की समझ से इस प्रकार से हैं -

1. जलागम विकास परियोजना के तहत निर्मित संरचनाओं के दोषपूर्ण होने के कारण तालाबों के अंतर्गत अपवाह जल, भूगर्भ जल पुनर्भरण (ground water re-charge) में कमी आयी.

2. भूगर्भ जल निकालने के लिये कुएं खोदने या बोरिंग करने के संबंध में सरकारी ठोस नीति का न होना. इसके साथ जल का उपयोग करने वाले लोगों का सक्षम संगठन न होना.

3. भारतवर्ष में 70-80 के दशक में हरित क्रांति पर बहुत जोर दिया गया. जबकि हरित क्रांति के साथ-साथ शुष्क खेती (dry land agriculture) के विकास पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए था, जिससे कि जल संसाधन पर कम दबाव पड़ता.

4. दक्षिण भारत के तालाबों को पहले सामाजिक देखरेख में मरम्मत व रखरखाव होता था परंतु बाद में सरकारी नियंत्रण में हो जाने से इनके रखरखाव में बहुत कमी आयी.

तालाबों के सुधार हेतु विशेष सुझाव - यह पाया गया है कि आज भी नये जलसंसाधनों का विकास करने में जितना खर्च आता है, उससे बहुत कम खर्च में इन तालाबों का जीर्णोद्धार किया जा सकता है. यदि इन पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार किया जाता है तो समाज के विभिन्न वर्गों के लिये जीवन यापन करने का सहारा मिल जायेगा. साथ ही गांवों से लोगों का पलायन भी रोका जा सकेगा. इसके लिये निम्न तथ्यों पर ध्यान दिया जाना बहुत जरुरी है-

1. जो समाज आज इन तालाबों से अलग हो चुका है

सारणी :- 6 जलागम कार्यक्रम से पहले व बाद में सिंचाई क्षेत्र व भूजल उपयोग की तुलना

गांव का नाम	सिचिंत क्षेत्र (है.)				सिंचाई की गहराई (मी.)			भूजल दोहन, (है.मी.)			
	वर्षा	सर्दी	गर्मी	कुल	वर्षा	सर्दी	गर्मी	वर्षा	सर्दी	गर्मी	कुल
वर्तमान स्थिति											
जलग्रहण	81.46	60.92	35.60	177.98	0.6	1.2	1.8	48.71	73.11	60.32	182.14
कमान्ड	83.06	46.36	28.80	158.22	0.6	1.2	1.8	49.83	55.63	51.84	157.30
कुल	164.52	107.28	64.40	336.20	0.6	1.2	1.8	98.54	128.34	112.36	339.40
पुरानी स्थिति											
तालाब द्वारा	-	65.00	-	65.00	0.6	1.2	1.8	-	-	78.00	78.00
सिंचाई कुएं द्वारा सिंचाई	85.4	61.40	2.20	149.00				51.24	73.68	3.96	128.88
कुल	85.4	126.40	2.20	214.00	0.6	1.2	1.8	51.24	151.68	3.96	206.88

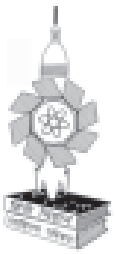

उसको दुबारा से इनके सुधार व रखरखाव में सहभागी बनाया जाय और ग्राम सभा जैसी चुनी हुई संस्थाओं से भी जोड़ा जाय.

2. जलागम परियोजना के तहत जलसंरक्षण के लिये जो संरचनाएं बनायी जाती हैं, उनके लिये अपवाहजल की मात्रा का विशेष रुप से ध्यान रखा जाय. अपवाह जल की मात्रा तालाब की क्षमता से अधिक होने पर ही जलागम क्षेत्र में जल संरचनाएं बनायी जांय अन्यथा इन्हें न बनाया जाय.

3. जल संरक्षण की संरचनाओं की अभिकल्पनाएं (design) इस प्रकार से हों कि इन संरचनाओं में जल अपनी क्षमता (भराव) अनुसार ही हो. शेष जल निचले स्तर के तालाबों व नालियों में पहुंच सके. यह तभी संभव है जब जल संरक्षण के लिये संरचनाओं में जलद्वारों का निर्माण किया जाय, जिससे कि जब वर्षा समाप्त होने को हो और नालियों में स्वच्छजल बह रहा हो तो उस समय जलद्वारों को बंद कर दिया जाय. इससे जल संरक्षण संरचनाओं में मिट्टी का जमाव रोका जा सकेगा और इनकी क्षमता भी लंबे समय तक बनी रहेगी.

4. जैसा कि सर्वविदित है कि तालाब प्राचीन काल से ही अर्द्धशुष्क क्षेत्र में बहुत उपयोगी रहे हैं, यदि जलग्रहण क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियां अनुकूल हों तो वहां पर भूसतह के नीचे जलसंरक्षण संरचनाओं (sub surface water harvesting structures) का निर्माण किया जाय. जिससे जलसंरक्षण संरचनाओं के एकत्रित जल के वाष्पीकरण को कम किया जा सके.

5. तालाब में जल नालियां लाती हैं इनकी लगातार सफाई होनी चाहिए, जिससे कि अपवाह जल की गति में अवरोध न हो सके. साथ में एक सुनिश्चित समय अंतराल पर तालाबों की मिट्टी को उलीछत (desiltation) करना आवश्यक है.

6. जलग्रहण क्षेत्र के अंतर्गत बेकार पड़े कुएं व बोरिंगों को जल पुनर्भरण के उपयोग में लाया जाय.

7. गहरे जल स्रोतों से जल निकालने की प्राथमिकता केवल पीने के पानी के लिए ही होनी चाहिए यह सुनिश्चित करना बहुत जरुरी है.

8. तालाबों में उचित मात्रा में जल होने पर लिफ्ट सिंचाई योजना के तहत किसानों को जलग्रहण क्षेत्र में जल दिया जाय, वहीं कमाण्ड क्षेत्र में भूगर्भ जल निकालने की अनुमति होनी चाहिए. जिससे कि लाभार्थी किसानों को समानरुप से लाभ मिल सके.

9. तालाबों के पानी से सिंचाई होने की दशा में जलग्रहण क्षेत्र में इस तरह की फसलों का चयन हो, जिनमें जल मांग कम व लाभ भी औसत स्तरीय हो, इससे तालाबों में अधिक समय तक जल बना रह सकेगा.

10. पारंपरिक जल संरक्षण की अन्य विधियों, जैसे, छत के पानी को इकट्ठा करके उपयोग में लाये जाने की विधि को प्रोत्साहित करने की ओर भी ध्यान दिया जाय.

11. कुछ तालाबों में दूसरे जलग्रहण क्षेत्र से जल लाने के लिये नालियों का निर्माण किया जाय या दुबारा से चालू किया जाय.

तालाबों को सुधारने के लिये कानूनी व प्रशासनिक सुझाव -

1. योजना का प्रारुप बड़े स्तर पर तैयार हो परंतु कार्यक्रम ग्राम स्तर से ही शुरु हो.

2. प्राकृतिक संसाधनों के रखरखाव की योजना लंबे समय के लिये होनी चाहिए.

3. तालाबों के जलपर पीने के पानी का अधिकार पहले होना चाहिये. उसके बाद भूजल भरण व सिंचाई के लिये प्राथमिकताएं होनी चाहिए.

4. प्रोत्साहन व प्रताड़ना का कानूनी अधिकार जल उपयोग समिति के पास रहना चाहिए, जिससे भ्रष्टाचार कम हो. इन सबके साथ-साथ भूजल दोहन व प्रबंधन के लिये भी प्रभावी कानून बनने चाहिए और ईमानदारी के साथ लागू भी होने चाहिए.

5. तालाब सुधार योजनाओं को राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना जैसी परियोजनाओं के साथ जोड़ा जाना चाहिए.

निर्णायक परिणाम - तालाबों की वर्तमान स्थिति के लिये सारांश में जलग्रहण विकास से ज्यादा छोटे बांधों का बनना, भूगर्भ जल का अत्यधिक दोहन व खेती के क्षेत्र में बढ़ोतरी, तालाबों को उचित रखरखाव में कमी के लिए सरकारी कानून को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है. आज इन पारंपारिक बहुउद्देशीय तालाबों का दुबारा से जीवित करना बहुत जरुरी हो गया है. जिससे इनके द्वारा पर्यावरण व समाज के सब वर्गों को दुबारा से लाभ मिल सके, इसके लिये ऊपर बताये गये कारणों को समझकर उनका समय रहते समाधान निकालना होगा. तभी तालाबों की बहुउद्देशीय पहचान बन सकेगी और गांव के प्राकृतिक वातावरण को, जीविका के साधन बढ़ाने के लिये और अच्छा बनाया जा सकता है.

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

चंदा मामा क्यों छुप गये थे?

- प्रो.सुरेश चंद्र -
निदेशक, भौतिकशास्त्र संकुल
श्री माता वैष्णो देवी विश्वविद्यालय, कटरा 182 320 (जम्मू एवं काश्मीर)

आज अनिल का जन्मदिन है. इस बार अनिल को प्रसन्नता कुछ ज्यादा ही है क्योंकि जन्मदिन पूर्णिमा को पड़ रहा है. अनिल को चंदा मामा बहुत अच्छे लगते है और आज चंदा मामा अपने पूर्ण आकार में उपस्थित होंगे. जन्मदिन के उपलक्ष्य में अनिल के घनिष्ठ मित्रों व पड़ोसियों को आमंत्रित किया गया है. जन्मदिन का जश्न मनाने के लिए एक बड़ा सा केक मंगवाया गया है, घर को अच्छी तरह से सजाया गया है. परिवार का सबसे छोटा सदस्य होने के कारण, सभी लोग अनिल को अत्यधिक प्यार करते है. अनिल ने अपनी पसंद के बहुत कीमती कपड़े माताजी से आग्रह करके बनवाये है. जन्मदिन का केक कटने के बाद आतिशबाजी का कार्यक्रम है तथा सभी को भोजन करने के लिए आमंत्रित किया गया है.

शाम को ही, थाली के आकार जैसे सुंदर दिखाई देने वाले चंदा मामा उपस्थित हो गये. अनिल चंदा मामा को देखकर बहुत खुश हुआ. उसे ऐसा लगा कि चंदा मामा भी उसे 'हैप्पी बर्थ डे' कहने के लिए सजधज कर आये हैं. वह बार-बार घर के बाहर जाकर चंदा मामा को देखता और मन ही मन खुश होता. चंदा मामा अपने अनुसार ही चमक रहे थे, परंतु भावनानुसार उसकी सुंदरता बढ़ती दिखाई दे रही थी. अनिल ने अपने दादाजी व माताजी से अनेक रोचक कहानियां चंदा मामा के विषय में सुनी है. एक कहानी में चंदा मामा को सर्दी की रात में ठंड से बचने के लिए अपनी माताजी से एक ऊनी वस्त्र की मांग करते बताया गया था, क्योंकि चंदा मामा का आकार दिन प्रतिदिन बदलता दिखाई देता है, अतः चंदा मामा की माताजी उससे पूछती हैं कि बताओ किस नाप का वस्त्र आपके लिए बनाया जाये. जैसा कि हम देखते हैं कि पूर्णिमा की रात्रि में चंद्रमा का आकार सबसे बड़ा दिखाई देता है. वह धीरे-धीरे घटकर अमावस्या की रात्रि में बिल्कुल दिखाई नहीं देता. फिर से चंद्रमा का आकार धीरे-धीरे बढ़ता दिखाई देता है और बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा की रात्रि को पूर्ण रूप धारण कर लेता है. यह क्रम लगातार चलता रहता है. कुछ कहानियों में चंद्रमा को खूबसूरती का प्रतीक बताया गया है. कुछ प्रेमी अपनी प्रेमिका की खूबसूरती की तुलना चंद्रमा की खुबसूरती से करते हैं.

धीरे-धीरे दोस्त व पड़ोसी आने शुरू हो गये. जैसे ही घर में लगी घंटी बजती, अनिल बाहर की ओर दौड़कर जाता तथा आने वालों का स्वागत करने के साथ-साथ, चंदा मामा की ओर देखना नहीं भूलता. एक-एक करके लोग आते जा रहे थे, उन्हें बैठने के लिए स्थान दिया जा रहा था. पीने के लिए पानी तथा चाय व नाश्ता कराया जा रहा था.घंटी बजी, और अनिल दौड़कर बाहर गया. इस बार भी अनिल ने चंदा मामा की ओर देखा. अनिल को ऐसा लगा कि चंदा मामा किसी वस्तु के पीछे छिपते जा रहे हैं. अनिल के मन में आया कि क्या चंदा मामा छुपा-छुपी का खेल खेल रहे है. जैसे-जैसे चंदा मामा का भाग घटता जा रहा था, अनिल उदास होता जा रहा था कि केक काटने का समय आ रहा है और चंदा मामा छुपते जा रहे है, क्या चंदा मामा मुझसे

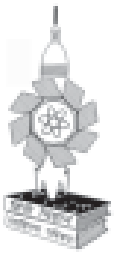

नाराज हो गये हैं. इस नाराजगी का कारण क्या है? मैंने तो उन्हें घर के अंदर आने के लिए बोला था, वे स्वयं ही अंदर नहीं आये थे. प्रत्येक बार घंटी बजती, अनिल बाहर जाकर देखता कि चंदा मामा छुपते ही जा रहे थे, और धीरे-धीरे वो पूरी तरह से छुप गये. पूर्णिमा की रात्रि में अंधकार छा गया. सभी दोस्त व पड़ोसी आ गये थे, केवल चंदा मामा ही नहीं दिखाई दे रहे थे. अनिल बार-बार बाहर जाकर देख रहा था कि शायद चंदा मामा की नाराजगी समाप्त हो गई हो तथा फिर से वापिस आ गये हों. परंतु ऐसा बिल्कुल नहीं था. चंदा मामा अभी भी नहीं आए थे. अब और अधिक इंतजार भी नहीं किया जा सकता था अनिल को अंदर बुलाया गया व केक काटने के लिए कहा गया. अनिल ने केक काटा, सभी ने एक स्वर में अनिल को 'हैपी बर्थ डे' कहा तथा उसकी सुखद, मंगलमय व दीर्घ आयु की मनोकामना की. केक व मिठाईयां सभी में बांटी गई. बाद में सभी को भोजन कराया गया. जब सभी लोग भोजन ग्रहण कर रहे थे, अनिल बार-बार बाहर जाकर चंदा मामा का इंतजार कर रहा था.

काफी प्रतीक्षा के बाद, चंदा मामा के शरीर का एक भाग निकलता दिखाई दिया. अनिल की निराशा खुशी में परिवर्तित होने लगी. उसे लगा कि फिर से चंदा मामा उससे खुश हो गये हैं. कुछ समय पश्चात चंदा मामा पूरी तरह से बाहर आ गये तथा पहले की भांति चमकने लगे. अनिल समझ नहीं पा रहा था कि चंदा मामा क्यों छुप गये थे? ऐसा प्रश्न अनिल ने दादाजी से पूछ ही डाला.

दादाजी : कुछ माह पूर्व सूर्य ग्रहण हुआ था, जिसके विषय में मैंने आपको विस्तार से बताया था. आज जो आपने देखा है वह चंद्र ग्रहण है.

अनिल : हां दादाजी, आपने जब सूर्य ग्रहण के विषय में बताया था तो सूर्य, चंद्रमा व पृथ्वी पर विशेष ध्यान देने की बात कही थी. उस समय सूर्य ग्रहण था, अब चंद्र ग्रहण है, तो पृथ्वी ग्रहण कब होता है?

दादाजी : सूर्य ग्रहण के समय सूर्य हमारी आंखों से ओझल होता है, चंद्र ग्रहण के समय चंद्रमा हमारी आंखों से ओझल होता है. क्योंकि हम पृथ्वी की सतह पर रहते है अतः पृथ्वी कभी भी हमारी आंखों से ओझल नहीं हो सकती. इस प्रकार पृथ्वी ग्रहण का प्रश्न नहीं उठता.

अनिल : सूर्य ग्रहण के समय, सूर्य और पृथ्वी के बीच चंद्रमा आने से सूर्य बहुत थोड़े समय, के लिए (2-3) मिनट पूर्णतः ओझल हुए थे. अब चंद्रमा व पृथ्वी के बीच में कौन आ गया? निश्चित ही सूर्य तो हो नहीं सकता, अन्यथा रात में ही दिन निकल आता.

दादाजी : आप ठीक ही कह रहे हैं. चंद्र ग्रहण के समय सूर्य बीच में नहीं आता. चंद्र ग्रहण के समय सूर्य व चंद्रमा के बीच में हमारी पृथ्वी आती है. चंद्रमा की अपनी कोई रोशनी नहीं होती. हमारे सौर-मण्डल में केवल सूर्य में ही अपनी चमक है. यह ऊर्जा उसकी नाभि में चल रही ताप-नाभिकीय क्रियाओं से उत्पन्न होती है. सूर्य से उत्पन्न हुई प्रकाश किरणें चंद्रमा से परावर्तित होकर हमारी आंखों में आती है, जिससे चंद्रमा दिखाई देता है. इसको इस प्रकार समझा जा सकता है कि अंधेरे में हम किसी वस्तु को देखने के लिए टार्च का प्रयोग करते हैं. अब टार्च से उत्पन्न हुई प्रकाश किरणें उस वस्तु से परावर्तित होकर हमारी आंखों में आती है और वह वस्तु दिखाई देती है.

अनिल : अच्छा तो चंदा मामा एक वस्तु के समान हैं, जिसमें अपनी कोई चमक नहीं होती है. परंतु, किसी वस्तु को हम अलग-अलग दिन देखें तो उसका आकार एक समान ही रहता है. फिर चंदा मामा का आकार कैसे दिन-प्रतिदिन बदलता जाता है? वे हमेशा एक ही आकार के क्यों नहीं दिखाई देते हैं, मैं तो चाहूंगा कि वे हमेशा थाली के आकार के दिखाई दें. क्योंकि इस आकार में वे मुझे बहुत अच्छे लगते हैं, बहुत सुंदर दिखाई देते हैं.

दादाजी : हमारी पृथ्वी व सूर्य की भांति, चंदा मामा भी गोलाकार हैं तथा उन पर सूर्य की प्रकाश किरण पड़ने पर वे थाली के आकार के ही दिखाई देने चाहिए. क्योंकि चंद्रमा, पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण कर रहा है. अतः उस प्रकाशित थाली को हम अलग-अलग दिशा (कोण) से देखते हैं. इस प्रकार चंद्रमा हमेशा एक ही आकार का न होकर, अलग-अलग आकार का दिखाई पड़ता है. इस बात को समझने के लिए हम एक फुटबाल को दो भागों में बंटा हुआ मानकर, एक भाग को सफेद रंग देते हैं. अब आप फुटबाल के सामने खड़े हो जाओ ताकि आपको पूर्ण सफेद भाग दिखाई दे. अब धीरे-धीरे एक दिशा में घूमना शुरु करो. आपको सफेद भाग अलग-अलग आकार का दिखाई देगा.

अनिल ने धीरे-धीरे फुटबाल के चारों और घुमना शुरु किया और उसे सफेद भाग विभिन्न आकार का प्रतीत होने लगा. जब वह घूमते घूमते विपरीत दिशा में पहुंचा तो उसे सफेद भाग दिखाई देना बंद हो गया.

अनिल : दादाजी, सफेद भाग बिल्कुल दिखाई देना बंद हो गया.

दादाजी : इस स्थिति को हम अमावस्या की रात कहते हैं तथा जहां से आपने चलना प्रारंभ किया था, उसे

पूर्णिमा की रात कहते हैं. आपको याद होगा कि जब सूर्य ग्रहण हुआ था, वह अमावस्या का दिन था. सूर्य ग्रहण हमेशा अमावस्या के दिन ही होता है. दूसरी ओर चंद्र ग्रहण हमेशा पूर्णिमा की रात में ही होता है और आज पूर्णिमा की ही रात है. अब आप धीरे-धीरे घूमते जाओ.

अनिल : दादाजी, मुझे फिर से सफेद भाग दिखाई देने लगा और वह बढ़ता जा रहा है.

अनिल जब उस स्थिति में आया जहां से चलना प्रारंभ किया था तब उसे सफेद भाग थाली के आकार का पुनः दिखाई दे रहा था.

अनिल : दादाजी, यह मैं बिल्कुल अच्छी तरह से समझ गया कि चंद्रमा का आकार अलग-अलग कैसे दिखाई देता है.

दादाजी : इन विभिन्न आकारों को हम चंद्रमा की कलाएं कहते है. (ये कलाएं एक साथ चित्र-1 में दिखाई गई है).

राहु व केतु दो स्थितियों के विषय में बताया था. ये स्थितियां तभी होती हैं जब सूर्य, पृथ्वी और चंद्रमा एक ही रेखा में होते हैं. एक रेखा में होते हुए, जब सूर्य व चंद्रमा के बीच, रात्रि के समय पृथ्वी आती है तो चंद्र ग्रहण होता है. ग्रहण के समय, सूर्य से चंद्रमा की ओर जानेवाली प्रकाश किरणों को पृथ्वी रोक लेती हैं, (जैसा कि चित्र 2 में दिखाया गया है). फुटबाल के साथ किये गये प्रयोग से अब यह बिल्कुल स्पष्ट है कि चंद्र ग्रहण पूर्णिमा की रात्रि में ही संभव होता है. पृथ्वी की सतह के जिस भाग पर यह स्थिति पैदा होती है, वहीं पर चंद्र ग्रहण दिखाई देता है.

अनिल : दादाजी, क्या प्रत्येक पूर्णिमा को चंद्र ग्रहण होता है?

दादाजी : ऐसा नहीं है. एक कलैण्डर वर्ष में साधारणतया दो चंद्र ग्रहण होते हैं, कुछ वर्ष ऐसे भी हो सकते हैं जिनमें एक, तीन या शून्य चंद्र ग्रहण हो सकते हैं.

अनिल : दादाजी, चंद्र ग्रहण की बात अब मेरी समझ में आ गयी. मुझे याद है कि मेरे पिछले जन्मदिन पर पूर्णिमा

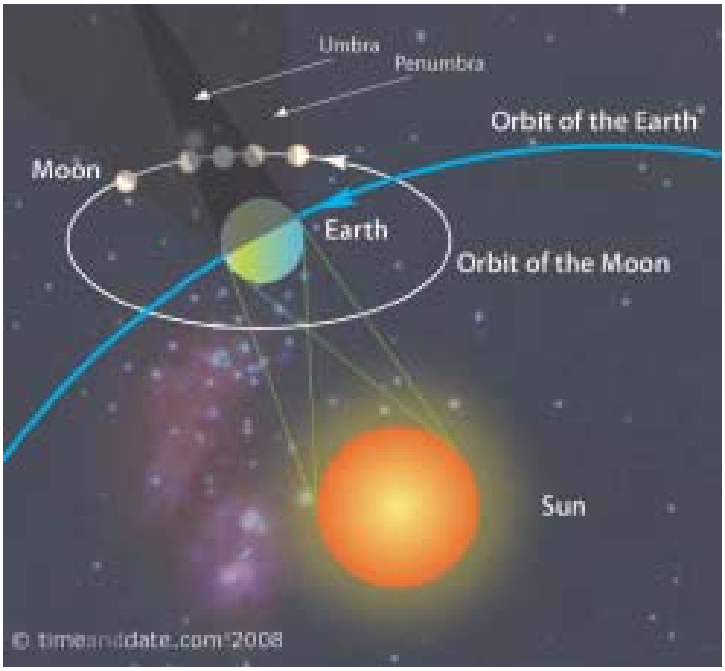

चित्र : 1 चंद्रमा की कलाएं. यहां छोटे वाले वृत्त के मध्य में पृथ्वी दिखाई गई है. इसी वृत्त पर पृथ्वी के चारों ओर चंद्रमा की विभिन्न दिनों की स्थितियां भी दिखाई गई है.

अनिल : दादाजी, अब मुझे ठीक तरह से बताईये कि चंद्र ग्रहण कैसे होता है?

दादाजी : सूर्य ग्रहण के विषय में बताते समय मैंने

नहीं थी, चंदा मामा पूर्ण आकार के नहीं दिखाई दे रहे थे. ऐसा किस कारण से था?

दादाजी : एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा आने में लगभग

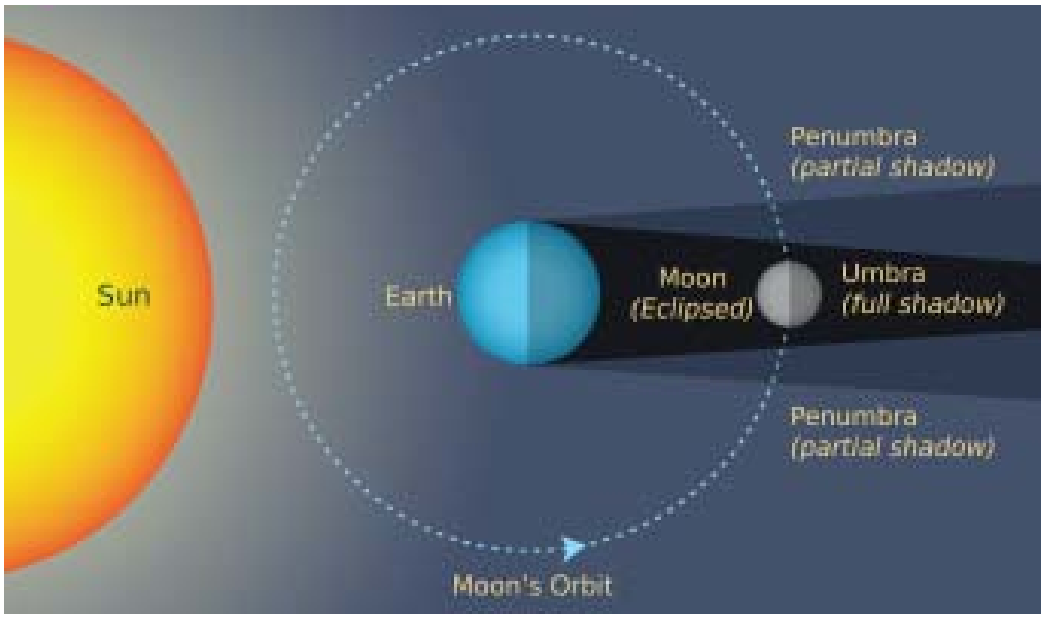

(चित्र-2) यहां पृथ्वी चंद्र और सूर्य की अधिक स्पष्ट स्थितियां चंद्रग्रहण के समय दर्शाई है. लेकिन इन पिंडों की आपसी दूरियां सही नहीं है.

29.5 दिन लगते हैं अतः 12 पूर्णिमा आने में 354 दिन लगते हैं. दूसरी ओर एक कलैण्डर वर्ष में 365 दिन होते हैं. अतः चंद्र-वर्ष, कलैण्डर वर्ष से 11 दिन छोटा होता है. अधि-वर्ष में यह अंतर 12 दिन का होता है क्योंकि अधि-वर्ष में 366 दिन होते हैं और फरवरी माह में 29 दिन होते हैं. मुसलमान चंद्रमा की स्थिति से ही अपने त्यौहार मनाते हैं, अतः उनके सभी त्यौहार प्रत्येक वर्ष 11 दिन पहले आ जाते हैं. यद्यपि हिंदुओं के त्यौहार भी पीछे हटते हैं परंतु हिंदुओं के कलैण्डर में प्रत्येक तीसरे वर्ष (अधिक मास वर्ष) में 12 के स्थान पर 13 पूर्णिमा ली जाती हैं. इस प्रकार त्यौहार लगातार पीछे की ओर न हटकर आगे-पीछे होते रहते हैं.

अनिल : इसका मतलब, जैसे कि दीपावली का त्यौहार प्रत्येक वर्ष जाड़े की ऋतु के प्रारंभ में आता हैं, उसी प्रकार ईद का त्यौहार कभी जाड़ों में तथा बाद में कभी गर्मी में भी आ सकता है.

दादाजी : हां, ऐसा ही है.

अनिल : दादाजी, आपने बताया कि एक चंद्र मास में 29.5 दिन होते हैं जब कि एक कलैण्डर माह में 31 दिन तक होते हैं. तो क्या एक कलैण्डर माह में दो पूर्णिमा आ सकती हैं.

दादाजी : आपने बिल्कुल सही कहा. कभी-कभी एक माह में दूसरी बार चंद्रमा पूरे आकार का होता है. उस दूसरे चंद्रमा को ब्लू-मून कहते हैं. इसका मतलब यह नहीं कि चंद्रमा का रंग नीला होता है. ब्लू-मून शब्द का प्रयोग विरल घटित होनेवाली घटना के संदर्भ में भी किया जाता है. दिसंबर 2009 में 2 व 31 दिनांक को पूर्णिमा थी अतः वर्ष 2009 के अंतिम दिन ब्लू-मून था. इससे पूर्व मई 2007 में 2 तथा 31 तारीख को पूर्णिमा थी. इस प्रकार 31 मई 2007 को भी ब्लू-मून था. कुछ ब्लू-मून के विषय में जानकारी निम्न तालिका में दी गई हैं जहां एक कलैण्डर माह में दो पूर्णिमाएं प्रदर्शित की गई है.

2001	नवंबर 1 तथा 30
2004	जुलाई 2 तथा 31
2007	मई 2 तथा 31
2009	दिसंबर 2 तथा 31
2012	अगस्त 2 तथा 31
2015	जुलाई 2 तथा 31
2018	जनवरी 2 तथा 31
2020	अक्तूबर 1 तथा 31

यह बात आपको रोचक लगेगी की 31 जनवरी 2018 को ब्लू-मून होने के कारण फरवरी 2018 में कोई पूर्णिमा नहीं होगी.

अनिल : दादाजी, तालिका को देखने से लगता है लगभग 2 वर्ष 8 माह के अंतराल पर ब्लू-मून की घटना होती है. अब समझ में आया कि किस कारण से विरल घटनाओं को ब्लू-मून की संज्ञा देते हैं. भले ही सूर्य में अपना प्रकाश है, परंतु हम उसे सीधे नहीं देख सकते हैं. दूसरी ओर चंदा मामा को हम अपनी आंखों से देख सकते और वह मुझे हमेशा प्यारे लगते हैं. अच्छा, चंदा मामा मुझसे नाराज नहीं हुए थे. यह कहकर अनिल ने दादाजी के चरण स्पर्श किए और सोने के लिये चला गया.

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

कीटनाशकों व पीडकनाशकों का मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभाव

- राघव शैलेंद्र कुमार सिंह -
कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी
भारतीय उष्णदेशीय मौसम विज्ञान संस्थान, पाषाण रोड, पुणे - 411008 (महाराष्ट्र),

कीटनाशी एवं पीड़कनाशी क्रमशः कीटों (insects) एवं पीड़कों (pests) के नियंत्रण के लिये उपयोग में लाये जाते हैं. यदि इनका प्रयोग ठीक ढंग और उचित प्रकार के उपकरणों द्वारा किया जाता है तो ही ये पर्यावरण और मानव जाति के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं. अमूमन कृषक वर्ग के लोग सोचते हैं कि ये दवायें सिर्फ हानिकारक कीट-पतंगों को मारकर उपज बढ़ाती हैं और तत्पश्चात वातावरण में नष्ट हो जाती हैं. मगर वास्तव में ऐसा होता नहीं है. ये दवाएं कई बार पूरी तरह से नष्ट नहीं होतीं तथा खाद्यान्नों में प्रवेश कर जाती हैं. जब मनुष्य इन खाद्यान्नों का उपयोग करता है तो मानवस्वास्थ्य पर इनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है.

कीटनाशी एक प्रकार के रसायन है, जिनका प्रयोग पौधों का भक्षण करने वाले कीड़ों को मारने के लिए किया जाता है. यद्यपि टिड्डियाँ और दूसरे कीड़े खाद्य आपूर्ति के प्रति बहुत विनाशकारी हो सकते हैं, परंतु ध्यान रहे कीटनाशी हानिकारक स्वास्थ्य प्रभावों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भी ले जा सकते हैं, जो पर्यावरण के लिये अहितकर होते हैं और पौधों की वृद्धि को भी रोकते हैं. सौभाग्यवश ऐसे कीटनाशियों को विकसित करने के लिये कई प्रयास जारी हैं जो कि नुकसानदेह कीड़ों के प्रति तो प्रभावी हो, किंतु पौधों, जानवरों और मनुष्यों के प्रति नुकसानरहित भी हों. अच्छी तरह से इस्तेमाल करने पर जो पौधा भक्षण करनेवाले कीड़ों से पौधों की रक्षा कर सके, ऐसे कीटनाशी पौधों के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं. फिर भी, कुछ कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग, पौधों के प्रति पादप-आविषालु (Phytotoxic) होकर, उनकी वृद्धि को रोक सकता है.

कीटों की संख्या में कमी करने के लिए ऐसे कीटनाशकों का निर्माण किया जाता है जो पौधों पर अपना गुजारा करते हैं. कुछ कीटनाशी कीटों का विनाश करते हैं, जबकि कीटनाशकों की अन्य किस्में या तो कीटों की प्रजनन क्षमता को नष्ट करती हैं, अथवा कीटों की वृद्धि में बाधक बनती हैं. दुर्भाग्यवश, कई नुकसानदायक कीड़े कीटनाशकों से अबाधित होकर बढ़ते हैं. कीटनाशकों की कुछ किस्मों के साथ, यह नियंत्रण करना मुश्किल है कि किस जानवर को नुकसान पहुंचेगा. इस कारण छोटे स्तनधारी प्राणी, पक्षी और लाभदायक कीड़े भी कभी-कभी कीटनाशकों द्वारा मारे जाते हैं. विशालकाय वन्य प्राणी और मछलियों पर भी इनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है. प्रत्यक्ष संसर्ग से नुकसानदायक प्रभावों के

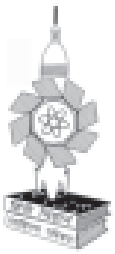

अलावा, कीटनाशी मनुष्यों के भोजन में जाकर उसे दूषित करते हैं.

कीटनाशी प्रायः उन क्षेत्रों में चले जाते हैं जो कि अभीष्ट नहीं होते. क्योंकि कीटनाशकों का छिड़काव बहुधा प्रधूलकों से किया जाता है और वायु भी कीटनाशकों की फुहार को अवांछित दिशाओं में धकेल कर ले जा सकती है. कीटनाशी उस क्षेत्र को तुरंत नहीं छोड़ता है, जहां पर इसका छिड़काव किया जाता है. कालांतर में कीटनाशी इकट्ठा होते रहते हैं तथा दूसरे रसायनों के साथ मिलकर और अधिक नुकसानदेह रसायनों का निर्माण करते हैं. ये रसायन जलापूर्ति में जा कर मिल जाते हैं और मनुष्यों में प्रतिकूल स्वास्थ्यगत समस्याएं पैदा करते हैं. फिर भी, कीटनाशकों की कुछ किस्में ऐसी भी है, जो दूसरे प्रजातियों को नुकसान नहीं पहुंचाती हैं.

मनुष्यों पर कीटनाशकों के स्वास्थ्य परिणाम प्रयुक्त कीटनाशी के किस्म पर निर्भर करती है. सन् 1940 से डी डी टी (DDT) एक लोकप्रिय कीटनाशी था, जिसने पक्षियों को विस्तृत नुकसान पहुंचाया. यह कीटनाशी पार्किसन रोग में वृद्धि से भी जुड़ा हुआ है. इस कीटनाशी पर प्रतिबंध लगाया गया है, परंतु कुछ फार्म इसे अब भी उपयोग में लाते हैं.

डिक्लोरवस (Dichlorvos) कीटनाशी चर्मगत् समस्यायें पैदा कर सकता है, यदि इसका चर्म के साथ दीर्घ समय तक संपर्क बना रहे. यह कीटनाशी उत्तेजक के जैसा काम करता है और खुजली पैदा करता है. डिक्लोरवस में पाया जानेवाला इस्टर फॉस्फेट जहरीला भी हो सकता है, यदि इसे दीर्घ काल तक खुला रखा जाये. इस तरह की विषाक्तता से तंत्रिका तंत्र में गड़बडी पैदा हो जाती है.

स्वास्थ्य समस्यायें उत्पन्न करनेवाले अन्य दो प्रकार के कीटनाशी लिण्डेन और मेथोक्सीक्लोर (Methoxychlor) हैं. लिण्डेन के अत्यधिक उपभोग से लिवर और किडनी में अनियमितितायें आ जाती हैं. मेथोक्सीक्लोर का अत्यधिक उपयोग जनन तंत्र में अव्यवस्था से जुड़ा हुआ है.

पीड़कनाशी रसायनों का (pesticide) स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव - पीड़कनाशी रसायन हानिकारक कीटों को मारने के लिए होते हैं, पर कुछ कीटनाशी मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रतिकुल असर भी डाल सकते हैं. अस्वस्थता पैदा होने की संभावना पीड़कनाशी रसायनों के किस्म, प्रयुक्त उत्पाद में उपस्थित रसायनों के अलावा इन तथ्यों पर भी निर्भर करता है कि पीड़कनाशियों की कितनी मात्रा को कितने समय तक अनावृत्त किया गया है, बहुधा पीड़कनाशी तंत्रिका तंत्र (हमारे शरीर में वह प्रणाली जो हमारे तंत्रिकाओं और मांसपेशियों को नियंत्रित करती है) को प्रभावित करती है. 'पीड़कनाशी' शब्द रसायनों या उत्पादों के एक बहुत विस्तृत और विभिन्न समुदायों का वर्णन करता है. पीड़कनाशी रसायनों के अंतर्गत आवासीय परिसर में पाये जानेवाले खटमलों, तिलचट्टों, छिपकलियों, चींटियों, दीमकों, मधुमक्खियों तथा चूहों को मारने वाली दवाईयां भी शामिल हैं. अतः प्रयुक्त किये गये उत्पादों के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करना बहुत जरूरी है. पीड़कनाशी अनावरण के कुछ स्वास्थ्य संबंधित दुष्प्रभाव, अनावरण के तुरंत बाद भी हो सकते हैं. कुछ लक्षण अनावरण के कई घंटे बाद हो सकते हैं. जबकि अन्य प्रभावों, जैसे कैंसर आदि का वर्षों तक अनुभव किया नहीं जा सकता.

पीड़कनाशी अनावरण के कुछ लक्षण अपने आप चले जाते हैं. जबकि दूसरे लक्षण कुछ समय के बाद जाते हैं. नियमित आधार पर पीड़कनाशी रसायनों से अनावरित लोगों के लिये, दीर्घकालिन स्वास्थ्य की समस्यायें चिंता का विषय हैं. गर्भवती या स्तन-पान करानेवाली महिलाओं को पीड़कनाशी रसायनों के संसर्ग में काम करने के दौरान डॉक्टर से अपना परीक्षण करवाते रहना चाहिये. क्योंकि कुछ पीड़कनाशी रसायन, गर्भ में पल रहे बच्चे अथवा स्तन-पान करनेवाले शिशुओं के लिये नुकसानदायक सिद्ध हो सकते हैं.

पीड़कनाशी रसायन हमारे शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं? : मिश्रण तैयार करने, घोल बनाने, इस्तेमाल करने अथवा सफाई के दौरान, पीड़कनाशी रसायन सीधे संसर्ग से हमारे शरीर के अंदर प्रवेश कर जाते हैं. सामान्यतः तीन तरीकों से कोई रसायन अथवा पदार्थ हमारे शरीर के अंदर प्रवेश कर सकता है.

(i) त्वचीय (चर्म के माध्यम से) अवशोषण : कार्य की अधिकांश स्थितियों में, चर्म से हो कर अवशोषण पीड़कनाशी अनावरण का सबसे आम रास्ता है. मिश्रित करने, भारण या पीड़कनाशी का इस्तेमाल करते समय लोग छीटें या फुहारे मारने से अनावरित हो सकते हैं.

(ii) अंतःश्वसन (फेफडों से) : वायुवाहित लघु बूंदों (फुहारों) या भाप के नजदीक काम करने से अंतःश्वसन होता है. निम्न-दाब के अनुप्रयोग से खतरा कुछ कम रहता है, क्योंकि अधिकांश लघु बूंदें वायू कणों (अणुओं) से ज्यादा बड़ी होने के कारण अधिक देर तक हवा में टिकी नहीं रह सकती हैं. उच्च दाब के साथ पीड़कनाशी का अनुप्रयोग या कूहायन यंत्र का इस्तेमाल यह संकट बढ़ा सकते हैं, क्योंकि लघु बूंदें छोटी होने के कारण हवा में अधिक दूरी तक जा सकती हैं.

(iii) अंतर्ग्रहण (मुख से) हालांकि अंतर्ग्रहण अनावरण का एक कम सामान्य तरीका है, परंतु ऐसा होने पर यह सर्वाधिक गंभीर विषाक्तता का कारण हो सकता है. अनजाने में लोगों द्वारा बिना लेबल लगी बोतलों, पेय कपों या मधुर पेय डिब्बों में रखे हुए पीड़कनाशी रसायनों के पीने की कई रिपोर्ट आती रहती हैं. मजदूर, जो कि पीड़कनाशी संभालते हैं, अनजाने में खाते या धूम्रपान करते समय इनका विष उनके मुख के अंदर जा सकता है यदि उन्होंने अच्छी तरह से हाथ नहीं धोये है.

पीड़कनाशी रसायन हानिकारक जीवों को नष्ट करने के लिए होते हैं और चूंकि उनके कार्य का तरीका किसी एक जाति के प्रति सुनिश्चित नहीं रहता है, इसलिये वे प्रायः कीटों से भिन्न दूसरे जीवों (मानव इत्यादि) को मार सकते अथवा नुकसान पहुंचाते हैं. बच्चे, युवा वर्ग या कोई भी विकसित जीव पीड़कनाशी के दुष्प्रभाव से बच नहीं पाते हैं. पीड़कनाशीयों के विकास/परिवर्धन के दौरान हुए संसर्ग का अत्यल्प स्तर भी स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है. पीड़कनाशी का अंतर्ग्रहण तंत्रकीय स्वास्थ्य प्रभावों जैसे स्मरण-शक्ति की कमी, सहयोग की कमी, उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया में ह्रासित वेग, दृश्य क्षमता में कमी, परिवर्तित या अनियंत्रित मनोदशा और सामान्य बर्ताव तथा घटी हुई गतिपरक दक्षता, जैसी अन्यान्य कठिन दशाओं को पैदा कर सकते हैं. दूसरे संभाव्य स्वास्थ्य प्रभावों में दमा, प्रत्यूर्जता (allergies), अतिसंवेदनशीलता शामिल है. पीड़कनाशी के दुष्प्रभाव कैंसर, हार्मोनों के विघटन, पुनरूत्पादन और भ्रूण विकास की समस्याओं से भी जुड़े हुए है.

पीड़कनाशी रसायनों के संरूपण में 'सक्रिय' और 'निष्क्रिय' दोनों ही संघटक सन्निहित हैं. सक्रिय संघटक वे हैं जो पीड़कों को मारते हैं और निष्क्रिय संघटक सक्रिय संघटकों की मदद करते हैं, ताकि वे अधिक दक्षता से काम कर सकें. इन निष्क्रिय संघटकों का परीक्षण आद्योपांत सक्रिय संघटकों की तरह नहीं किया जा सकता और ये उत्पाद लेबलों पर विरले ही प्रकट होते हैं. इसी प्रकार इनके विलायक (जो कि अधिकांश पीड़कनाशी रसायनों के सूत्रण में निष्क्रिय संघटक होते हैं) भी विषाक्त हो सकते हैं, यदि ये चर्म द्वारा शोषित या मुख द्वारा अंतर्ग्रहण किये गये हों.

पीड़कनाशी रसायनों के पर्यावरणीय प्रभाव : पीड़कनाशी रसायनों के पर्यावरणीय प्रभाव प्रायः अनुमानित प्रभाव से कहीं ज्यादा होते हैं. छिड़काव किये गये कीटनाशकों का 98 प्रतिशत से ज्यादा और शाकनाशी का 95 प्रतिशत उनके लक्षित वर्गों जैसे वायु, जल, जमीनी तलछट और भोजन से विभिन्न गंतव्यों तक पहुंचते हैं. यदि पीड़कनाशी रसायनों के प्रयोग से लाभ हो सकता है, तो इसका अनुचित प्रयोग प्रतिकूलतापूर्वक पीड़कनाशी के प्रतिरोध को बढ़ाने के साथ-साथ पीड़कों के प्राकृतिक दुश्मनों का भी सफाया कर देते हैं.

पीड़कनाशी रसायनों की वह मात्रा जो कि अभीष्ट प्रयोग क्षेत्र से प्रवर्जन करती है, किसी खास रसायन के गुणों से प्रभावित होती है. जैसे, मिट्टी से बंधने के लिये इसका झुकाव, इसका वाष्प दबाव, इसकी जलीय विलेयता और कालक्रम में विघटित होने पर इसका प्रतिरोध. मिट्टी में उपस्थित गुणों जैसे कि इसका गठन, पानी धारण करने की इसकी क्षमता और इसमें शामिल कार्बनिक पदार्थों की मात्रा पीड़कनाशी रसायनों की उस मानकीकृत मात्रा को प्रभावित करती है जो कि उस क्षेत्र में प्रस्तावित की जाती हैं.

पीड़कनाशी वायु-प्रदूषण में योगदान कर सकता है. वायु में कणों के रूप में लंबित पीड़कनाशी रसायन (संभवतः प्रदूषित होकर), वायु द्वारा दूसरे क्षेत्रों की ओर ले जाये जाते हैं. फसलों में प्रयुक्त होने वाले पीड़कनाशी रसायन वाष्पीकृत हो सकते हैं और निकटवर्ती क्षेत्रों में वायु द्वारा बह कर वन्य जीवों के लिए संकट बन सकते हैं. प्रयोग के समय मौसम की स्थितियों के साथ-साथ तापक्रम और आपेक्षित आर्द्रता, वायु में पीड़कनाशी रसायनों के फैलाव को प्रभावित करते हैं. इसके अलावा छिड़के गये पीड़कनाशी रसायनों की लघु बूंदें वायु के सहारे दूसरे क्षेत्रों की ओर जा सकती हैं. पीड़कनाशी उन कणों से चिपक सकते हैं जो कि धूल कणों की तरह वायु में बहते हैं. भू-छिड़काव पीड़कनाशी रसायनों का वायु छिड़काव की अपेक्षा कम अपवाह (drift) पैदा करता है. मिट्टी को धूमित करने के लिए खेतों में छिड़के गये पीड़कनाशी रसायन वाष्पशील कार्बनिक यौगिक बना सकते हैं जो कि दूसरे रसायनों से प्रतिक्रिया कर क्षोभमंडलीय ओजोन स्तर को प्रभावित कर सकते है.

जल - पीड़कनाशी रसायनों के अवशेष वर्षा और भूमि जल में पाये गये हैं. जलीय तंत्रों पर पीड़कनाशी रसायनों के प्रभाव का अध्ययन प्रायः जलीय विज्ञान अभिगमन प्रतिरूप का उपयोग करके किया जाता है. चार प्रमुख रास्तों के सहारे पीड़कनाशी जल के अंदर पहुंच जाते हैं.

1. छिड़कने पर यह अभीष्ट क्षेत्र के बाहर अपवाह कर सकता है.

2. मिट्टी में रिस कर या घोल बना कर अलग हो सकता है.

3. वाहक के रूप में यह भूमि जल के साथ बह सकता है या उपेक्षा करने पर यह छलक सकता है.

4. मिट्टी का अपरदन करके, यह पानी तक जा सकता है.

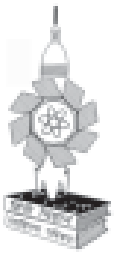

जल को संदूषित करने के लिये निम्न कारक पीड़कनाशी रसायनों की क्षमता को प्रभावित करते हैं -

इसकी जल में विलेयता,

जल निकाय और प्रयुक्त जगह के बीच दूरी,

मौसम, मिट्टी की किस्म,

विकसित फसल की उपस्थिति और रसायनों को इस्तेमाल करने के लिए प्रयुक्त विधि.

DDT के प्रति अनावरण पार्किन्सन रोग से जुडा हुआ था. पर्यावरण और लोगों पर इसके प्रतिकूल प्रभाव के कारण, इस पीड़कनाशी पर सन् 1972 में प्रतिबंध लगा दिया.

खेद की बात यह है कि DDT पर प्रतिबंध के बावजूद, कुछ दूसरे पीड़कनाशी रसायनों का प्रयोग जारी है. सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करने पर भी, पीड़कनाशी रसायन पेय जल स्रोतों में वाह के रूप में अपना रास्ता बनाते रहते हैं. कुछ अधिक लोकप्रिय पीड़कनाशी रसायनों की सूची और इन्हें अंतर्ग्रहण करने पर मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को आगे बताया गया है.

अलाक्लोर (Alachlor) - यह एक शाकनाशी है जिसका उपयोग सन् 1969 से अनाज, सोयाबीन और मूँगफली की फसलों में घासमय अपतृण को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है. अलाक्लोर के अंतर्ग्रहण से नेत्र, लिवर, गुर्दे, प्लीहा की समस्यायें, अनीमिया और कैंसर का खतरा अत्यधिक बढ़ जाता है.

अट्राजिन (Atrazine) - ज्वार और क्षेत्रीय अनाज पर शाकनाशी के रूप में कई दशकों से इसका व्यवहार होता आ रहा है. ग्रहण करने पर, अट्राजिन से हृदयवाहिका और प्रजनन समस्यायें आ सकती हैं. कुछ यूरोपीय देशों में भी इस पर प्रतिबंध लगा है.

इंडोथाल (Endothall) - सन् 1995 से मीठे चुकन्दरों, पालक और आलु पर शाकनाशी के रूप में इसका प्रयोग होता आया है. इंडोथाल का अंतर्ग्रहण उदरीय और आंत्रिक (intestinal) समस्यायें पैदा कर सकता है.

लिण्डेन (Lindane) - यह एक कीटनाशी है जिसका प्रयोग वर्तमान में मवेशी, काठ-कबाड़ और उद्यान में किया जाता है. लिण्डेन का अंतर्ग्रहण लिवर और गुर्दे में खराबी ला सकता है.

कीटनाशी : कीटों के विरुद्ध प्रयुक्त होने वाले पीड़कनाशी रसायन को कीटनाशी कहते हैं. इनमें अण्डनाशी (ovicides) और डिंभकनाशी (larvicides) शामिल हैं, जिनका प्रयोग क्रमशः कीटों के अंडों और लार्वा नष्ट करने के लिए किया जा रहा है. भारत में सब पीड़कनाशी रसायनों में से कीटनाशियों का प्रयोग लगभग 70 प्रतिशत होता है, इसकी तुलना में विकसित देशों में यह केवल 30 प्रतिशत ही होता है. इसका मुख्य कारण है कि भारत में फसलों पर पादप-भोजी कीट बहुप्रज (multivoltine) होते हैं. इस प्रकार इनकी समस्या अधिक गंभीर है. अतः किसान इसके निवारण के लिये इन रासायनिकों का अधिक उपयोग करते हैं. कीटनाशी का प्रयोग कृषि, दवा उद्योग और घर-बार में किया जाता है. 20वीं शताब्दी में कीटनाशकों का प्रयोग कृषि उत्पादकता में बढोतरी का एक प्रमुख कारण है. लगभग सभी कीटनाशकों में परितंत्र को सार्थक रूप से बदलने की क्षमता होती है, और यह बहुत से मनुष्यों के प्रति विषैले भी होते हैं तथा अन्य आहर-शृंखला में केंद्रित रहते हैं.

कीटनाशकों का वर्गीकरण कई तरीकों से किया जाता है (i) प्राकृतिक कीटनाशक, जैसे कि निकोटीन, पायरेथ्रूम (pyrethrum) और नीम के अर्क, कीड़ों से सुरक्षा के लिए पौधों से बनाये जाते हैं. निकोटीन पर आधारित कीटनाशकों का प्रयोग व्यापक रूप से अभी भी अमेरिका और कनाडा में होता है जब कि ये यूरोपीय देशों में प्रतिबंधित हैं.

(ii) कार्बनिक कीटनाशक संश्लिष्ट रसायन हैं. इस श्रेणी में वर्तमान काल में उपयोग किए जाने वाले पीड़कनाशी रसायनों कि सबसे बड़ी संख्या शामिल है.

(iii) अकार्बनिक कीटनाशक धातुओं से बनाये जाते हैं जिसमें सल्फर (जिसका प्रायः इस्तेमाल किया जाता है), आर्सेनेट, ताम्र और फ्लोरीन के यौगिक शामिल हैं.

जैव कीटनाशक - इसका एक उदाहरण बैसीलस थुरिन्जिएन्सिस (Bacillus Thuringiensis) के इस्तेमाल में विकास और वृद्धि है, जो कि लेपीडॉप्टेरन्स (Lepidopterans) और अन्य कीटों द्वारा उत्पन्न एक जीवाण्विक रोग है. इस जीवाणु की विभिन्न नस्लों द्वारा उत्पन्न विषैले तत्वों का इल्लियों, भौंरों और मच्छरों के विरूद्ध डिंभकनाशी के रूप में इस्तेमाल होता है. सच्चारोपोलिस्पोरा स्पिनोसा (Saccharopolyspora Spinosa) से प्राप्त विषैले रसायनों को किण्वन द्वारा विगलित किया जाता है और स्पिनोसाड (spinosad) के रूप में बेचा जाता है. चूंकि इनके विष (टॉक्सिन) का दूसरे जीवाणुओं पर अल्प प्रभाव पड़ता है, ये संश्लिष्ट पीड़कनाशी, अन्य रसायनों की तुलना में अधिक पर्यावरणीय दोस्त समझे जाते हैं. बी.थुरिन्जिएन्सिस से प्राप्त टॉक्सिन को आनुवंशिक अभियंत्रण की मदद से पौधों में प्रत्यक्ष रूप से समाविष्ट किया जाता है.

पादप रोग नियंत्रण में प्रगति : रासायनिक पीड़कनाशी रसायनों के साथ निरंतर बढ़ती समस्यायें प्राधिकारियों

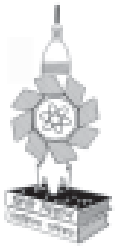

और किसानों को अधिक टिकाऊ कृषि उपज/पैदावार प्राप्त करने के लिए नवीन और सुरक्षित पीड़कनाशी रसायनों को आजमाने के लिए बाध्य कर रही है.

उपभोक्ता उस खाद्य पदार्थ को खरीदना नहीं चाहते हैं, जिसे रसायनों से उपचारित किया गया है और जिसमें पीड़कनाशी रसायनों के अवशेष शामिल रहते हैं. विश्व के अनेक देशों में उपभोक्ता समुदाय खाद्य सुरक्षा के प्रति काफी जागरूक हो गये हैं और खाद्य श्रृंखला से ऐसे अवशेषों को हटाने के लिये सक्रिय हैं.

उपभोक्ताओं को अधिक सुरक्षित उत्पाद प्रदान करने के साथ-साथ उनके फसलों को कटाई-पूर्व और कटाई-पश्चात रोगों से निजात दिला कर किसान अब जैविक कीटनाशी रसायनों कि नये पीढ़ी की ओर अग्रसर हो रहे हैं. यह प्रवृत्ति जैव पीड़कनाशी रसायनों (जैव-सूत्रकृमिनाशी और जैव-कवकनाशी) की नई पीढ़ियों के साथ भी मेल खाती है, जो कि मात्र प्रभावी ही नहीं, बल्कि उपयोगकर्त्ता की मांगों को भी पूरा करती हैं. ये जैविक उत्पाद प्राकृतिक रूप से घटित सूक्ष्म-जीवों पर आधारित हैं जो कि प्रकृति के अनुकूल बन कर घातक पर्यावरण को नियंत्रित करने के लिए काम करते हैं. उचित फसलों और यथोचित परिस्थितियों में प्रयुक्त, ये जैविक उत्पाद, संबंधित नुकसान को उत्पन्न किये बिना, अन्य पीड़कनाशी रसायनों के समकक्ष है.

पहले किसान जैविक नियंत्रण अभिकर्ता का प्रयोग करने में, उनकी अपेक्षाकृत कम शेल्फ आयु और मंद क्रियाशीलता के कारण हिचकिचाते थे. पर अब ये सीमाएं जैविक पीड़कनाशी रसायनों के नये वंश के पदार्पण से समाप्त हो गयी हैं. बॉयोनेम (BioNem), बॉयोसेफ (BioSafe) और शेमर (Shemer) जैसे उत्पादों की निधानी आयु एक वर्ष से ज्यादा होती है और ये दीर्घावधि में अच्छा परिणाम दिखा सकते हैं. क्षेत्र परीक्षणों में, बॉयोनेम-WP और बॉयोसेफ उत्पाद प्रत्यक्ष सुरक्षा और पर्यावरणीय फायदों के साथ-साथ कार्य-निष्पादन में भी रासायनिक पीड़कनाशी रसायनों के बराबर या बढ़कर हैं.

शेमर (Shemer) - जैव कवकनाशी शेमर सडन की एक व्यापक श्रेणी जैसे एस्परगीलस (Aspergillus) बोट्रीटिस (Botrytis), पैनीसिलियम (Penicillium) और रिजोपस (Rhizopus) को सार्थक रूप से रोकता है. इसका प्रयोग संकुलन गृह में कटाई के बाद और खेत में फल के पकने से पहले कटाई-पूर्व, दोनों ही स्थितियों में होता है. शेमर जैव-कवकनाशी वर्तमान में इजरायल में खुर्बानी, अंगूर, स्ट्राबेरी, निम्बू-वंश, आडू, काली मिर्च और शकरकंद के लिये पंजीकृत है.

सक्रिय संगठक : मेट्सचनीकोविया फ्रूक्टिकोला (Metschnikowia fructicola)

सूत्रण : जल परिक्षेपित कणिकायें.

कार्य की विधि : सड़न (rot) के विकास को मुख्यतया प्रतिस्पर्धा द्वारा रोकना.

अनुप्रयोग का तरीका : कटाई-पूर्व या बाद, बौछार या डुबकी.

निधानी आयु : व्यापक स्थितियों में एक वर्ष.

बॉयोनेम-WP और इसका कार्बनिक रूप

ये जैविक सूत्रकृमिनाशी बढ़ी हुई उपज को उद्दीप्त करते समय उल्लेखनीय ढंग से सूत्रकृमि की आबादी और मृदा में मूल ग्रसन को कम करते हैं. फसलों की एक व्यापक श्रेणी में, इनका उपयोग विभिन्न प्रकार के बहुत से सूत्रकृमियों में हो सकता है. एग्रो ग्रीन (Agro Green) जैव सूत्रकृमिनाशी वर्तमान में इजरायल में खीरा, बैंगन, काली मिर्च, टमाटर, बादाम, खुर्बानी, जैतून, आडू, बेर, अनार, मुख्य जड़ी-बूटियों, फूलों और लहसुन में इस्तेमाल के लिये पंजीकृत है.

सक्रिय संगठक : बैसीलस फर्मस (Bacillus firmus)

उपयोग का तरीका : गीला पावडर

कार्य की विधि : सूत्रकृमि आबादी में लगातार कमी

इस्तेमाल की विधि : किसी सिंचाई तंत्र, रोपण से पहले लगाना बेहतर है.

निधानी आयु : व्यापक स्थितियों में दो वर्ष से ज्यादा.

कीटनाशी रसायनों के नफे-नुकसान को लेकर दुनिया भर में बहस छिड़ी हुई है. विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार इन रसायनों के उपयोग से दुनिया भर में प्रतिवर्ष करीब 30 लाख लोग बीमार हो जाते हैं और 2 लाख लोग अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं. पैराथियान जैसे अत्यन्त विषैले कीटनाशक का असर 16 वर्ष से भी अधिक समय तक मिट्टी में बरकरार रहता है. इससे कीड़ों के साथ मधुमक्खी जैसे उपयोगी जीव भी मर जाते हैं. ऑल इंडिया बॉयोटेक एसोसिएशन के मुताबिक खाद्य श्रृंखला में प्रतिबंधित कीटनाशकों का प्रतिशत विश्व में 1.2 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह 25 प्रतिशत है. परिणामतः सिर्फ कीटनाशकों का असर होने के कारण से ही चाय, चावल, काफी आदि का अरबों रूपयों का निर्यात प्रतिवर्ष रद्द हो जाता है. विश्व भर में अब फिरसे रसायन रहित खेती की अवधारणा उभर रही है.

खपत की दृष्टि से विषैले कीटनाशकों का सर्वाधिक 45 प्रतिशत उपयोग कपास में किया जाता है. इसके बाद दूसरे नंबर पर 25 प्रतिशत कीटनाशक सब्जियों में इस्तेमाल किये जाते हैं. शेष मात्रा गेहूं, धान, दलहनी फसलों तथा

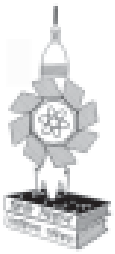

उद्यानों में प्रयोग की जाती है. बेअसर होते कीटनाशकों से जब फसलों की सुरक्षा होती दिखाई नहीं देती तो हताश कृषक आत्म-हत्या करने जैसे कदम उठाने के लिए मजबूर हो जाते हैं. इस प्रकार इस जहर का कहर कृषि के बाद कृषकों को भी अनजाने में लील रहा है.

कीटनाशी रसायनों के प्रयोग में प्रायः बहुत सी जरूरी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता. अधिकांश लोग उपयोग के समय गलतियां करते हैं. दस्ताने, चश्मा, जूते, श्वास उपकरण पहनने जैसे सुरक्षात्मक उपाय करना तो दूर, वे पैकिंग के साथ छपे आवश्यक निर्देशों को भी पढ़ने की जरूरत नहीं समझते. प्रायः छिड़काव या बुरकाव के यंत्रों से इन रसायनों का रिसाव होता रहता है. असुरक्षित भंडारण, स्थानांतरण तथा प्रयोग से दुर्घटनायें होती हैं. विष प्रभाव के लक्षण, प्राथमिक उपचार तथा प्रतिकारक उपचारों के विषय में जन-जागरूकता को बढ़ाया जाना जरूरी है. साथ ही साथ कीट नियंत्रण के वैकल्पिक उपायों को व्यापक रूप से अपनाया जाना चाहिए.

वैज्ञानिकों के समक्ष कृषि उत्पादन बढ़ाने का प्रयास प्रारंभ से ही एक चुनौती रहा है. भारत की बढ़ती जनसंख्या के लिये खाद्य-पदार्थों की उपलब्धता कराना, प्रत्येक सरकार का मुख्य उद्देश्य ही नहीं, अपितु संवैधानिक कर्तव्य भी है. एक समय ऐसा भी था जब हम गेहूं, चावल आदि के लिए अमेरिका व अन्य पश्चिमी देशों पर निर्भर थे, लेकिन सन् 1990 के प्रारंभ में 'हरित क्रांति' ने इस खाद्य समस्या से छुटकारा दिला दिया. वास्तव में यह क्रांति पौधों की संकर प्रजातियों, नई किस्मों एवं रासायनिक खादों के समुचित उपयोग से सफल रही. फलस्वरूप, जितनी भूमि में पहले लाखों टन खाद्यान्न उत्पन्न होता था, उतनी ही भूमि से करोड़ों टन खाद्यान्न उत्पादित होने लगा. किंतु, पिछले दो-तीन दशकों में इन कृत्रिम रासायनिक खादों, विषैले कवकों एवं कीटनाशकों का सर्वाधिक उपयोग किया गया. इसके दुष्परिणाम अब चरम सीमा पर पहुंच चुके हैं. सिर्फ भारत में ही अब लाखों हेक्टेयर उपजाऊ कृषि-भूमि बंजर बन गयी है.

विकल्प के रूप में वैज्ञानिकों ने खोज निकाला 'सदाबहार हरित-क्रांति' का रास्ता : हमारे देश के प्रख्यात कृषि वैज्ञानिक एवं किसान आयोग के अध्यक्ष डॉ.एम.एस.स्वामीनाथन् ने भारतीय किसानों को 'हरित-क्रांति से सदाबहार हरित-क्रांति' (Green revolution to evergreen revolution) की ओर अग्रसर होने का आह्वान किया है. उन्होंने स्पष्ट रूप से किसानों से कहा था कि फसलों पर होने वाला खर्च निरंतर बढ़ता ही जा रहा है तथा मिट्टी की प्राकृतिक संरचना, उपजाऊपन व उर्वरा शक्ति को कम करनेवाली, यह रासायनिक उर्वरकों और रासायनिक कीटनाशकों की तकनीक न तो टिकाऊ है और न ही फसल उत्पादकता में दीर्घकाल के लिए सहयोगी है. इससे फसल उत्पादन के साथ-साथ मृदा की गुणवत्ता भी क्षीण होती जा रही है.

कृषि में हरित क्रांति ने फसलों की पैदावार को बढ़ाकर कई गुना तो कर दिया, किंतु रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग करना भी सिखा दिया. अंधाधुंध छिडकाव का उल्टा असर पड़ा और शत्रु-कीटों के साथ-साथ मित्र-कीटों का भी सफाया होने लगा. सुंदर सफेद दिखनेवाली फूलगोभी पर मेथिल पैराथियान, हरी-हरी भिंडी पर कॉपर सल्फेट तथा चमकदार बैंगन पर पड़े खतरनाक रसायन दरवाजों से हो कर किचन तक बड़ी आसानी से पहुंच रहे हैं. सामान्य दर्द से लेकर कैंसर तक की संभावनाएं इस जहरीले प्रभाव के कारण बढ़ रही हैं. हमारी मिट्टी, पानी और हवा में अब पर्यावरणीय खतरे की घंटी बज रही है.

रासायनिक उर्वरकों का उपयोग कितना भी अधिक क्यों न किया जाये, फसल उत्पादन एक निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता. बल्कि इसके दुष्परिणाम से मृदा भी 'फर्टीहोलिक' हो गयी है. विशेषतः इन हानिकारक तथा महंगे रसायनों से किसानों पर आर्थिक संकट लगातार बढ़ता जा रहा है. कई राज्यों से किसानों के खुदकुशी करने के भी समाचार लगातार प्रकाश में आते रहे हैं. ऐसी विषम परिस्थितियों में प्राकृतिक केंचुए की बहुआयामी उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है.

खाद निर्माणकर्ता के रूप में : कार्बनिक अवशेष या वेस्ट पदार्थ हमारे पर्यावरण के लिए गंभीर समस्या बन चुके हैं. क्योंकि ये अधिक जगह घेरने के साथ-साथ बदबू भी फैलाते हैं तथा मच्छरों और कई प्रकार के सूक्ष्म जीवों के लिये प्रजनन गृह का काम करते हैं. आबादी के पास पड़ा हुआ ठोस कचरा तो बहुत ही हानिकारक होता है. केंचुए ही मात्र ऐसे जंतु हैं, जो ठोस कचरे को एक लाभकारी पदार्थ में बदलने की क्षमता रखते हैं. वर्मीकम्पोस्टिंग प्रक्रिया के तहत विभिन्न कार्बनिक पदार्थों को जैवउर्वरक के रूप में बदला जा सकता है. केंचुए की कई प्रजातियां जैसे यूड्रिलस यूजेनी, इसेनिया फेटिडा और पेरिऑनिक्स इक्सवेटस कृषि अवशेष जैसे गन्ने की खोई, गाय, भेड, घोडे आदि के गोबर को उर्वरक में बदलने में अत्यंत सहायक सिद्ध हो चुकी हैं. दुनिया के विकसित राष्ट्र तो हाईटेक वर्मीकम्पोस्टिंग द्वारा करोडों डालर कमाने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण एवं कचरे के जीवाणुओं से फैलने वाले रोगों को नियंत्रित करने में मदद भी कर रहे हैं. वर्मीकम्पोस्टिंग को कई देश अपने

चित्र-1 : प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में कायम नहीं रह पाने के कारण, लीची के फल कटाई के बाद क्रियात्मक और सूक्ष्म जैविकी परिवर्तन के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं. इससे लीची के व्यापार में बाधा उत्पन्न होती है. अभी हाल में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (B. A. R. C.) ने एक ऐसी प्रौद्योगिकी विकसित की है, जिससे लीची की निधानी आयु (shelf life) 30 से 40 दिनों तक बढ़ जाती है.

चित्र-2 : ग्रीनहाउस में कृषि : ग्रीनहाउस की खेती खर्चीली है, परंतु इसकी खेती कारखाने की तरह है जहां समुचित उत्पादन मिलना लगभग निश्चित है. सामान्य तरीके की खेती की तुलना में ग्रीनहाउस की खेती में फसल उत्पादन 3-4 गुणा अधिक होता है, तथा उत्पाद की गुणवत्ता भी काफी अच्छी होती है.

चित्र-3 : जहर के कहर से खुद को बचाने के लिए सावधानी बरतना बहुत ही जरूरी है क्योंकि इन रसायनों के छिड़काव या बुरकाव के यंत्रों से प्रायः रिसाव होता रहता है. कीटनाशकों का प्रयोग करते समय हवा के बहने की दिशा से विपरीत दिशा में चलना चाहिए ताकि ये रसायन हमारी आंखे व शरीर के संपर्क में न आएं.

यहां उद्योग के रूप में विकसित कर रहे हैं. उदाहरण के तौर पर कनाडा का 'वर्मीटेक सिस्टम' एवं अमेरिका का 'ओरेगॉन स्वायल कारपोरेशन' उच्च स्तर की तकनीकी का इस्तेमाल कर वर्मी उद्योग स्थापित करके ये वर्मी उर्वरक बेच रहे हैं. आवश्यकतानुसार केंचुओं के भोजन को बदलकर विभिन्न प्रकार के वर्मी उर्वरक भी तैयार किये जा रहे हैं.

भारत में राजस्थान जैसे शुष्क प्रदेश से भी पेरिऑनिक्स, इक्सकेवेटस एवं पालीफेरिटिया इलांगेटा जैसी केचुओं की उपयोगी प्रजातियों को खोजा गया है. केंचुए ताजा अथवा आंशिक रूप से सड़े-गले कार्बनिक पदार्थों को मृदा से ग्रहण करते हैं और ग्रहण किया हुआ कार्बनिक पदार्थ, उनके द्वितीय आमाशय (गिजर्ड) में जाकर पिसाई क्रिया द्वारा छोटे-छोटे टुकड़ों में टूटता है. यह खंडित कार्बनिक पदार्थ एन्जाइम क्रिया द्वारा पाचन के बाद कोलायडल ह्यूमस के रूप में उत्सर्जित होता है जो पौधों के लिये अत्यधिक लाभकारी है. आज के रासायनिक प्रदूषण के जमाने में रासायनिक खाद के स्थान पर कम्पोस्ट खाद का उपयोग पर्यावरण संरक्षण के लिये अति आवश्यक हो गया है.

केंचुए द्वारा त्यागे गये उत्पाद में कार्बनिक पदार्थ, मिट्टी के अलावा कुछ मात्रा में लोहा, कैल्सियम, मैगनेशियम भी उपस्थित रेहता है. इस बारे में अधिक जानकारी हेतु सचिव, केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड, वनस्पति संरक्षण, संगरोध एवं संग्रह निदेशालय, एन.एच.04 फरीदाबाद से संपर्क किया जा सकता है. कृषि मंत्रालय का यह विभाग कीटनाशकों की अशुद्धता, कमियों का विवरण, टर्मिनल अवशेषों, फसलों पर प्रयोग की अनुमति, प्रतीक्षा अवधि तथा विषाक्तता की अवधि आदि का विवरण रखता है. गुणवत्ता सुधारने की दृष्टि से सरकार द्वारा सभी कीटनाशी रसायनों पर अब आई.एस.आई. का मार्क होना अनिवार्य कर दिया है. समेकितनाशी कीट प्रबंधन जैसी प्रणालियों को लोकप्रिय किये जाने की आवश्यकता है. ताकि कीटनाशकों का प्रयोग केवल अपरिहार्य स्थिति में तथा कम से कम मात्रा में ही किया जाए. विशेष रूप से जो कीटनाशक पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल हैं, उनको बढ़ावा देने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा एन.ए.टी.पी.परियोजना चलाई जा रही है.

दरअसल ऐसी उपयोगी जानकारी को आम किसानों में उनकी अपनी भाषा में कारगर ढंग से पहुंचाया जाना बेहद जरूरी है. ऐसे मामलों में संचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है.

डॉ.होमी भाभा विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2011 में प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त

क्या रत्नागिरी की कालबादेवी खाड़ी की तलछट मानसून प्रभावित हैं?

- अनिल बी.वळसंगकर -
राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, दोना पावला, गोवा-004 403, भारत
ई मेल : vals@nio.org, valsabv50@gmail.com

सारांश : रत्नागिरी की कालबादेवी खाड़ी से जनवरी, मई और अक्टूबर महीनों में निकाले हुए तलछट में से रेत, गाद (silt) और मिट्टी की प्रतिशत, तथा कणों के आकार का अध्ययन किया गया. इस अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट होता है कि दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान खाड़ी में 5 मीटर की गहराई तक ढीली रेत का स्तर होता है. मानसून के बाद जनवरी में खाड़ी की रेत का प्रतिशत कम हो जाता है (रेत 5 से 10 मीटर गहराई तक पहुंच जाने के कारण). जबकि खाड़ी के मध्य भाग में दबाव कम (डिप्रेशन) होने से यह आंशिक रूप से रेत का तत्कालीन वितरण नियंत्रित करता हुआ नजर आता है, और खाड़ी में मिट्टी के संचय होने की प्रक्रिया मानसून के प्रभाव खत्म होने के बाद ही शुरू होती है.

परिचय : भारत के पश्चिम तट पर स्थित कोंकण प्रदेश की रेत इल्मेनाइट और मैग्नेटाइट खनिज के लिए काफी मशहूर है [1-12]. इस रेत में होनेवाले इल्मेनाइट, मैग्नेटाइट, हानब्लैन्ड, डायप्साइड, ऑगाइट, जिक्रोन (झिंक) और कायनाइट खनिज के आधार पर कुछ [1-4] संशोधकों ने दख्खन के ज़ाम्भा (बेसाल्ट) को प्रमुख स्रोत समझा, जबकि दूसरों [6] ने कंकड (लॅटराईट) का भाग और मिश्रित [7] उत्पत्ति स्थल माना है.

रत्नागिरी के कालबादेवी खाड़ी जो लगभग ~ 5 किमी लंबी, 250 मीटर चौड़ी है, और उत्तरी और दक्षिणी दिशा में नदिका [4] (स्ट्रीम) से जुड़ी है. कालबादेवी खाड़ी के खनिज के वितरण के बारे में काफी जानकारी मिली है और इसका मूल्यांकन भी किया गया है. परंतु जिस रेत, गाद और मिट्टी में ये खनिज मिलते हैं, उसके बारे में समुद्रीय योगदान की भूमिका बहुत ज्यादा समझ में नहीं आ पायी है. भविष्य में अपतटीय और तटवर्ती खनिजों के खनन की संभावना को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान (एन.आई.ओ.), गोवा, के शास्त्रज्ञों ने 2004 से कालबादेवी के तटवर्ती क्षेत्र का कई चरणों में अध्ययन किया [13]. उपरांत 2006 में, कालबादेवी के अपतटीय क्षेत्र में जनवरी (संक्रमणकालीन), मई (मानसून पूर्व) और अक्टूबर (मानसून उपरांत,[14]) महिनों के क्रमशः तीन अलग-अलग मौसम में तलछट की रेत, गाद और मिट्टी की मात्राओं की प्रतिशतता और उनका वितरण, तथा इन प्रतिदर्शों (नमूनों) में कणों के औसत आकार के अध्ययन के आधार पर ये परिणाम निकाले गए है.

सामग्री और तरीके - सन 2006 में, कालबादेवी खाड़ी में, खाड़ी की उत्तर दिशा में एक (ओ.पी.-01), मध्य भाग में एक (ओ.पी.-02) और दक्षिण दिशा में एक (ओ.पी.-03) ऐसे तीन अपतटीय मार्ग (प्रोफाइल) तय किए गए (चित्र 1). इसके बावजूद एक संदर्भ स्टेशन (ओ.पी.-एस.ओ./1) भी

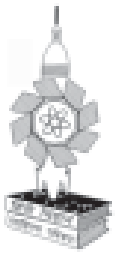

तय किया था (चित्र1). ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 अपतटीय मार्ग पर 5, 8 और 10 मीटर पानी की गहराई से, सतह के तलछट के 24 नमूने वॅन-वीन ग्रॅब की मदद से निकाले गये. इसमें ओ.पी.-01 प्रोफाइल के तलछट के नमूने जनवरी 2006 के दौरान लिये गये थे. प्रत्यक्ष में, कालबादेवी के तटवर्तीय मार्ग (प्रोफाइल) को ही खाड़ी में विस्तार कर अपतटीय मार्ग बनवाये गये [14]. सभी स्टेशन के अक्षांश और रेखांश का मापन जर्मन जी.पी.एस. (76 CSX) हैड सेट द्वारा किया गया, जो 5-7 मी. तक के मापन के लिए काफी उपयुक्त था. तलछट के कार्बोनेट, कार्बनिक पदार्थ और लोह की ज़ंग के आवरण (कोटिंग्स) को HCl (1:10), H_2O_2(1:30 आकारमान %) और $SnCl_2$ के घोलों से धुलवाकर सभी नमूनों को ओवन में 400 डिग्री सें. तापमान पर रखकर सूखाया. कोनिंग और क्वार्ट्रिंग द्वारा अलग किये गये रेत के नमूनों का वजन करवाकर, भिन्न आकार की रेत को अलग अलग अंतराल के 0.5 (ϕ) छन्नी (सीव्हस) से अलग किये गये. रेत, गाद और मिट्टी की प्रतिशतता (फ़ोक [15]) पिपेट विश्लेषण तरीके से निकाली गयी. यहां, सन 2006 के जनवरी (संक्रमण काल), मई (पूर्व मानसून) और अक्टूबर (मानसून के बाद) के दौरान लिये गये रेत, गाद और मिट्टी के नमूनों की प्रतिशतता और थिरण, तथा तलछट के विभिन्न आकार के कणों की तुलनात्मक चर्चा की है.

परिणाम : ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 अपतटीय मार्ग (प्रोफाइल) के तलछट के नमूनों में जनवरी के दौरान रेत 95 से 98% रही, जो मई में 95-99% और अक्टूबर के दौरान 98-99% पायी गयी (चित्र 2अ). इसी तरह, इन प्रोफाइलों के साथ गाद में जनवरी के दौरान 0.5 से 3%, मई में 0.01 से 3% और अक्टूबर में 0.04-0.9% (चित्र 2ब) तक बदलाव हुआ. मिट्टी की मात्रा में भी जनवरी में 0.8 से 2.5%, मई में 0.2 से 1.7% और अक्टूबर में 0.01 से 0.7% तक बदलाव हुआ (चित्र 2क). जनवरी, मई और अक्टूबर 2006 के मानसून पूर्व, मानसून बाद और संक्रमणकालीन अवधि के आंकड़ों की रेत, गाद और मिट्टी की प्रतिशतता में बहुत भिन्नता नहीं पाई गई और इनमें परिवर्तन केवल 2.9, 2.7 और 0.15% तक ही (क्रमानुसार) रहे. संदर्भ स्टेशन पर तलछट की रेत में कुछ परिवर्तन दिखाई दिये, जहां मई के दौरान 2.8% कमी और अक्टूबर में 3.4% वृद्धि हुई.

तीन महीनों के दौरान ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 प्रोफाइल के साथ तलछट के औसत आकार में बहुत भिन्नता दिखायी, लेकिन संदर्भ स्टेशन पर यह बदल न्यूनतम रहा (0.08-0.09 मि.मी., चित्र 3). ओ.पी.-02 (0.07-0.12 मि.मी.) की तुलना में यह भिन्नता ओ.पी.-03 प्रोफाइल के साथ बढ़ी है (0.09-0.16 मि.मी.), मई के दौरान, दोनों प्रोफाइलों में तलछट के औसत आकार न्यूनतम रहे (0.07 मि.मी.ओ.पी.-02 के लिए, और 0.09 से 0.1 मि.मी., ओ.पी.-03 के लिए). मगर अक्टूबर में यह सीमा ओ.पी.-02 में बढ़कर 0.08 से 0.12 मि.मी. हुई और ओ.पी.-03 में 0.09 में 0.16 मि.मी. तक पहुंची.

चर्चा : ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 प्रोफाइल में रेत और गाद के ग्राफ विरुद्ध प्रकृति के हैं (चित्र 2अ और 2ब). रेत के संबंध ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 के साथ तीन मौसमों के तीन महीने में अलग-अलग प्रकार के प्रोफाइल दर्शाते है और इनकी प्रतिशतता पर अन्य मानकों का प्रभाव दिखाई देता है (चित्र 2अ). ओ.पी.-02 प्रोफाइल के साथ रेत की मात्रा जनवरी में गहराई के साथ कम हुई, लेकिन मई और अक्टूबर में इसकी वृद्धि हुई है. इसलिए, यहां रेत की मात्रा में वृद्धि मानसून से प्रभावित है. क्योंकि, मानसून में उथले लहर के कारण गहराई में ज्यादा रेत जा सकती है. ऐसा लगता है कि मानसून के दौरान जमा होनेवाली रेत विरल होने के कारण जनवरी मास में रेत की प्रतिशतता कम होती है. शायद खाड़ी के मध्य भाग में मौजूद पूर्व-पश्चिम अवसाद (depression) का प्रभाव रेत को हटाने के लिये प्रभावी कारण हो सकता है, और ओ.पी.-02 प्रोफाइल इस अवसाद के साथ ही जुडा है. इसके अलावा, खाड़ी में अंतस्त (convergent) और बाह्यस्त (divergent) तटीय धाराओं के प्रवाह, रेत को गहरे स्तर पर पहुंचाने में योगदान दे सकते है. इसके विपरीत, ओ.पी.-03 के प्रवृत्तियों (ट्रेंड) में ज्यादा भिन्नता दिखाई देती है (चित्र 2अ, 2ब और 2क) और तीन महीनों के दौरान रेत की मात्रा गहराई के साथ बढ़ती हुई नजर आती है, जो उथले भाग से रेत के आने का संकेत देती है. दस मीटर की गहराई के मई वाले नमूनों में रेत की मात्रा में वृद्धि (99.8%) उपरोक्त तथ्यों का प्रामाणिक संकेत हैं. यह प्रभाव मानसून पूर्व के नमूनों में ही दिखता है. इससे ऐसा लगता है कि खाड़ी में मजबूत मानसून हवाओं का काफी प्रभाव रहा है और धाराओं द्वारा तलछट लाने से काफी उछलकूद पैदा करता है. दक्षिणी धारा से 10 मीटर की गहराई तक रेत का परिवहन संभव है. जनवरी की तुलना में, मई और अक्टूबर में रेत की मात्रा में हुई समग्र वृद्धि, अपतटीय क्षेत्र की ओर रेत के प्रवाह को दर्शाती है. इसलिए, मध्य (ओ.पी.-02) और दक्षिणी प्रोफाइल (ओ.पी.-03) के

साथ रेत की मात्रा के वितरण केवल पश्चिम की ओर लगते हैं. इसी तरह, ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 प्रोफाइल के साथ मिट्टी के नमुनों की तीनों महीनों के दौरान तुलना कर सकते हैं (चित्र 2क), हालांकि तलछट में कुल मिट्टी की मात्रा काफी कम है, जो जनवरी में ~ 2.5% से कम हैं तथा अक्टूबर में और भी (<0.5%) कम. ये परिणाम दर्शाते हैं कि खाड़ी में मिट्टी संचय होना मानसून अवधि (सितंबर-जून) के बाद आरंभ होता है.

यह देखा गया है कि 5 से 10 मीटर गहराई तक के तलछट में औसत आकार के कणों की मात्रा ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 प्रोफाइल के साथ मानसून पूर्व (जनवरी से मई) अवधि में कम होती हैं. इससे तलछट पर मानसून (जून से सितंबर) का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिसके कारण इन नमूनों में औसत आकार के कण और रेत की मात्रा में वृद्धि हुई है. हालांकि अक्टूबर के दौरान होनेवाली रेत के औसत आकार में बढ़त, अपतटीय क्षेत्र में रेत का परिवहन इंगित करता है (चित्र 3). मानसून के बाद तलछट के औसत आकार में व्यवस्थित प्रकार से कमी होना खाड़ी में मिट्टी कणों के जमा होने का संकेत करता है. शायद, खाड़ी क्षेत्र में होनेवाली विभिन्न प्रकार की हलचल, जनवरी में मिट्टी की मात्रा में वृद्धि कर सकती है [16].

निष्कर्ष - कालबादेवी खाड़ी की तलछट के रेत, गाद और मिट्टी की मात्रा में मानसून पूर्व और मानसून बाद में काफी परिवर्तन दिखाई देते हैं. खाड़ी में मिट्टी का संचय होने की प्रक्रिया केवल मानसून के बाद ही शुरू होने की संभावना लगती हैं.

संदर्भ

1. वृष्णन, वे.एस.एन्ड रॉय, बी.सी. 1945, टाइटेनियम, रेक, जिऑल, सर्व्हे. इंडिया, 76, पी.पी.1-32

2. रॉय, बी.सी., 1958, इल्मेनाइट सॅड एलाँग रत्नागिरी कोस्ट, बॉम्बे, रेक. जिऑल, सर्व्हे, इंडिया, 87, पी.पी. 438-452

3. चारी, सी.एन., मारवार, एस.ए.कुलकर्णी, एस.जी.भागवतवार, बी.ए.एन्ड बोबडे, एस.पी.1975, जिऑलॉज़ी एंड मिनरल रिसोर्सेस ऑफ महाराष्ट्र, डी.जी.एम. नागपुर, इंडिया, 136-144, (अनपब. रिप.)

4. मुखर्जी, एन.के. एवं सक्सेना, एस.के., 1976, मिनरॉलॉजी एंड जेनेसिस ऑफ हेवी मिनरल्स फ्रॉम द कोस्टल प्लेसर्स ऑफ रत्नागिरी, महाराष्ट्र, इंडिया, 25 इंट, जिओल, कांग्रेस, सिडनी, आस्ट्रेलिया, पी.पी.217-218.

5. सुब्बा राजू, एन.एवं राव, बी.आर, 1978. सम आस्पेक्ट्स ऑफ द बीच एन्ड ऑफशोर प्लेसर्स ऑफ रत्नागिरी एरिया, वेस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया. इंड, मिनरल्स, 32, 59-62.

6. सिद्दिकी, एच.एन., राजमनिकम, जी.वी. एवं अल्मेडा, एफ., 1979. ऑफशोर इल्मेनाइट प्लेसर्स ऑफ रत्नागिरी, कोंकण कोस्ट, महाराष्ट्र, इंडिया. मर.मिन.2,91-118.

7. राजमनिकम, जी.वी.एवं गुजर, ए.आर.1984. सेडिमेंट डिपाजिशल एनवायर्नमेंट इन सम बे इन सेंट्रल वेस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया. इंडियन ज.मर. साय.13,53-59.

8. गुजर, ए.आर., नाथ बी.एन. एवं बॅनर्जी, आर., 1988. मराइन मिनरल्सः द इंडयन पर्स्पेक्टिव, मर.मिन.,7,317-350.

9. राजमनिकम, जी.वी., 1997. प्रोवान्सेस ऑफ सेडिमेंट्स इन्फर्ड फ्रॉम ट्रांन्सपेरेंट हेवी मिनरल्स इन द इनर शेल्फ ऑफ सेंट्रल महाराष्ट्र, इंडिया. इनः प्रोस. सेकंड साउथ एशिया जिऑलॉजीकल कांग्रेस, एन.पी.विजयानन्दा, पी.जी.कूरे और पी.मोल्से (एडिटर), (जिऑलॉजीकल सर्व्हे और माइन्स ब्यूरो, कोलंबो, श्रीलंका), पीपी.309-324.

10. गुजर, ए.आर., मिसलनकर, पी.जी.एन्ड अम्ब्रे, एन.वी.,2004. कोस्टल प्लेसर्स ऑफ कोंकण महाराष्ट्र, देअर डिस्ट्रीबुशन, मिनरॉलॉजी ऍन्ड जिओमॉर्फिक एन्वायर्नमेंट ऑफ फॉर्मेशन, इंडियन ज.जिओमॉफॉल,. 9,123-130.

11. गुजर, ए.आर.,अंगुसामी, एन., एवं राजमनिकम, जी.वी.,2008. वेव्ह रिफ्रॅक्शन पॅटर्न एन्ड देअर रोल इन सेडिमेंट रीडिस्ट्रिबुशन एलोंग साउथ कोंकण, महाराष्ट्र, इंडिया. जिओएक्टा, 7,69-79.

12. गुजर, ए.आर., अंगुसामी, एन., एवं राजमनिकम, जी.वी.,2009. प्रोवेनांस सिग्नेचर ऑफ प्रि-केम्ब्रिअन एन्ड मेसोझोविक रॉक्स इन द निअरशोर प्लेसर्स ऑफ कोंकण, सेंट्रल वेस्ट, कोस्ट ऑफ इंडिया. मर. जिओरिसोर. जिओतटेक्नोल., 27,115-131.

13. वळसंगकर, ए.बी.2005. सीजनल वेरिएशंस इन हेवी मिनरल प्लेसर सॅन्ड फ्रॉम कालबादेवी बे, रत्नागिरी, महाराष्ट्र. इनः प्रोस. नॅशनल सेमीनार ऑन डेवलपमेंट प्लॅनिंग ऑफ कोस्टल प्लेसर मिनरल्स (प्लेसर-2005) वी.जे.लवसन, एन. चंद्रशेखर एवं ए. सिन्हा (इडि.), ए.एम.एस. युनिवर्सिटी, तिरूनेलवेली, 26-27 अक्टूबर, (अलाइड, न्यू दिल्ली), पीपी.59-65

14. वळसंगकर, ए.बी. 2007. हेवी मिनरल प्लेसर सॅन्ड फ्रॉम कालबादेवी बे.रत्नागिरी,

महाराष्ट्र. इन : प्रोस. नेशनल सेमीनार ऑन एक्स्प्लोरेशन, एक्स्प्लॉयटेशन, एनरिच्मेंट, एवं एनवायर्नमेंट (प्लेसर-2007), वी.जे.लवसन, पी.के.सेन एन्ड ए.सिन्हा (इडि.) सेंट्रल मेकॅनिकल इंजिनिरिंग रिसर्च इंस्टिटुट, दुर्गापुर, इंडिया, 25-26 मार्च (मॅकमिलन) इंडिया, न्यु दिल्ली), पीपी.111-116

15. फोक, आर.एल., 1968. पेट्रालोजी ऑफ सेडिमेंट्री राक्स, (हेम्फिल्स, ऑस्टिन), पीपी 177.

16. रेड्डी, एम.पी.एम., 1976. वेव रिफ्रॅक्शन इन रिलेशन टू सेडिमेंट ट्रान्स्पोर्ट टेंडंसी एलोंग वेस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया. इंडियन ज.मर.साय., 5,152-162.

17. वळसंगकर, ए.बी.:और डॉम्निका फर्नांडिस, 2011 रत्नागिरी के कालबादेवी खाड़ी की खनिज संपत्ती पर मानसून का प्रभाव. सागर बोध, राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, दोना पावला, गोवा.

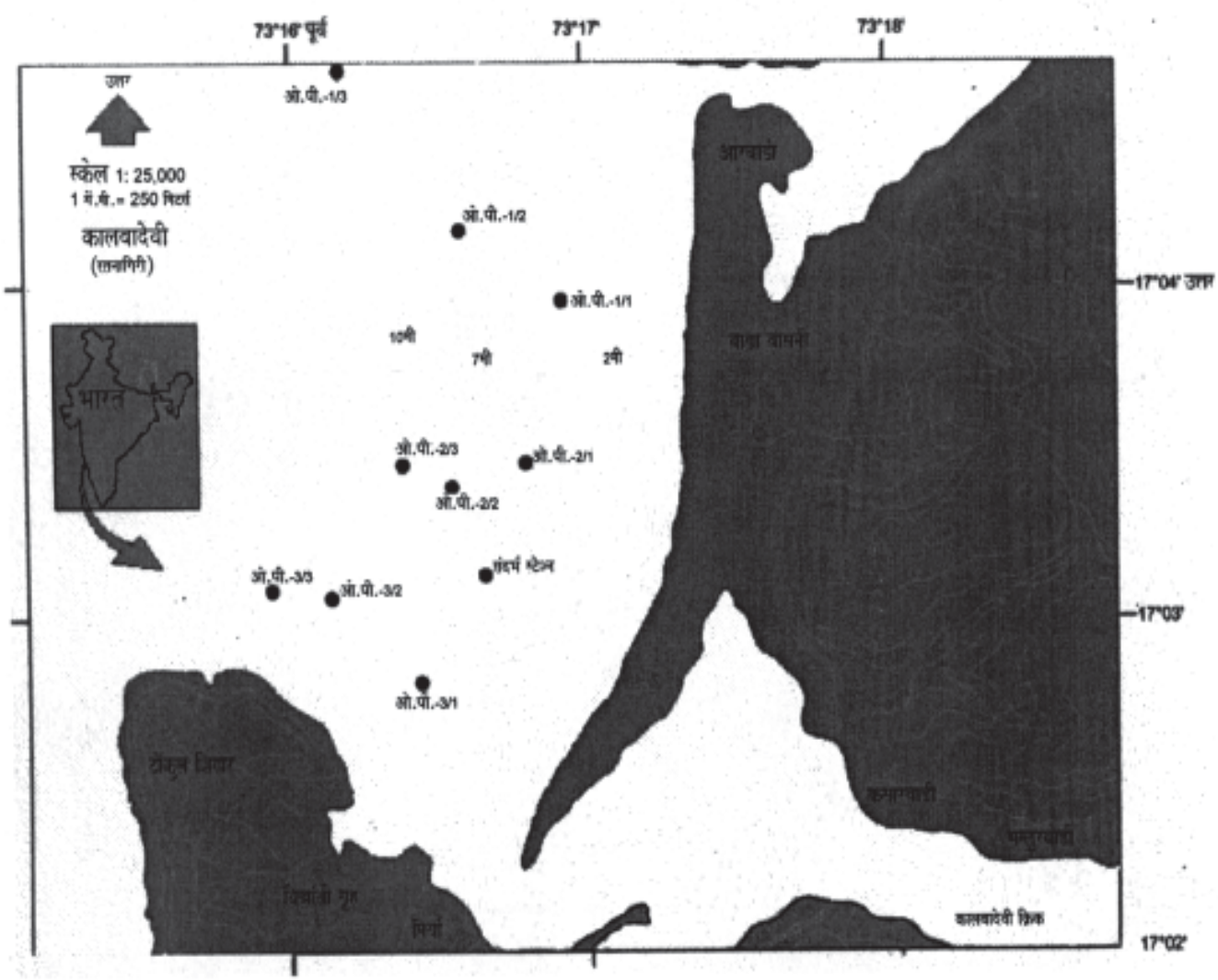

चित्र 1. रत्नागिरी के कालबादेवी खाड़ी में, जनवरी, मई और अक्टूबर. 2006 में, ओ.पी.-01, ओ.पी.-02 और ओ.पी.-13 के तीन अपतटीय मार्ग (प्रोफ़ाइल) पर लिए गए तलछट के नमूनों की जगह (●). गहराई मीटर में.

चित्र 2. जनवरी (♦), मई (■) और अक्टूबर (▲), 2006 के दौरान ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 अपतटीय प्रोफाइल पर मिट्टी (अ), रेत (ब) और गाद (क) में हुए बदलाव.

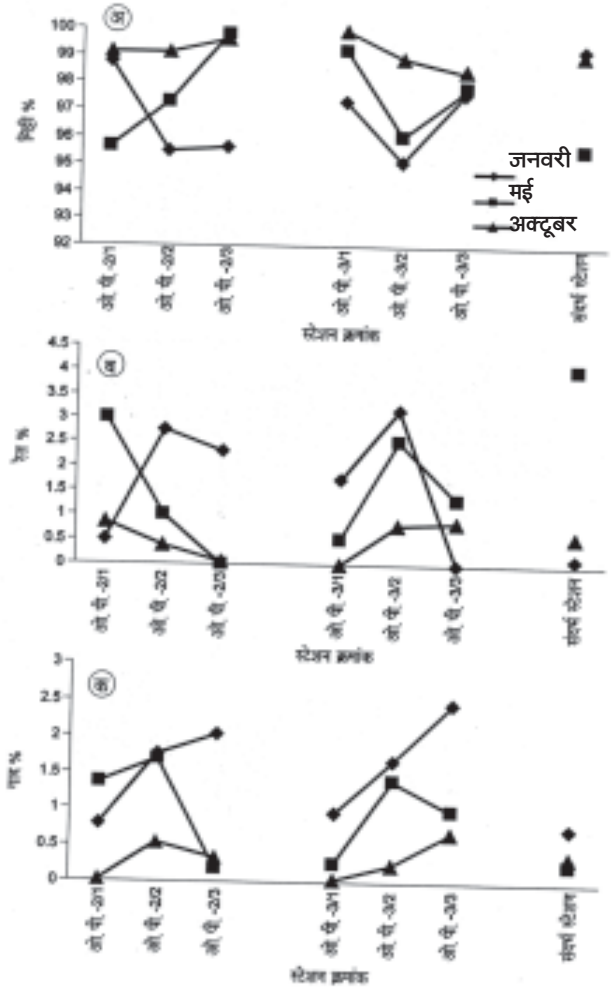

चित्र 3. ओ.पी.-02 और ओ.पी.-03 प्रोफाइल के साथ और संदर्भ स्टेशन पर जनवरी (♦), मई (■) और अक्टूबर (▲), 2006 के दौरान हुए तलछट के औसत आकार में बदलाव.

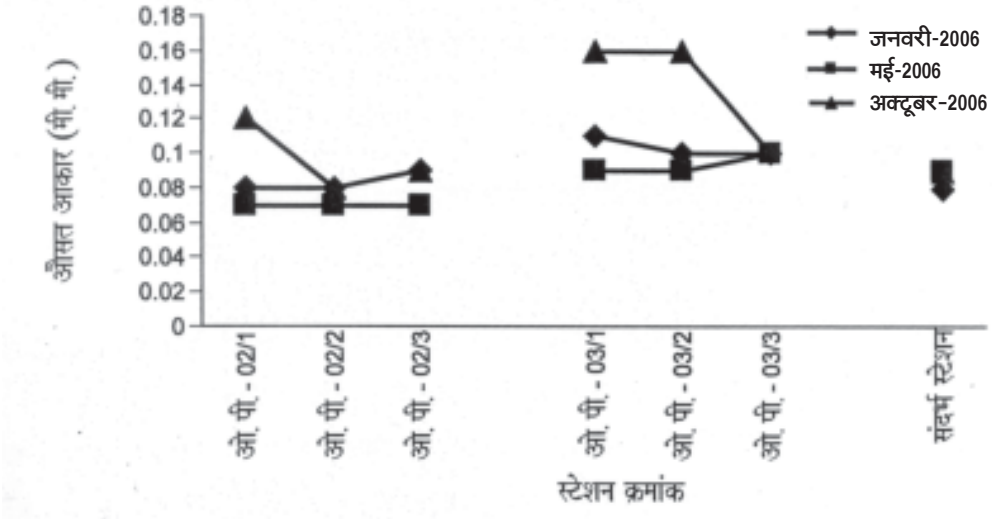

टिप्पणियां

1. शनि का रहस्यमय चंद्रमा, टाइटन

शनि का रहस्यमय चंद्रमा, टाइटन कुछ-कुछ पृथ्वी जैसा है. टाइटन पर फैले नदियों के जाल की वजह से वहां की जमीनी सतह पर पृथ्वी जैसी भौगोलिक समानताएं देखी गई है. लेकिन यथार्थ में ये नदियां पानी की नहीं, तरल मीथेन गैस की है. आश्चर्यजनक बात यह है कि पृथ्वी की तरह ही टाइटन की सतह भी बड़े-बड़े क्रेटरों से मुक्त है. इसका अर्थ यह हुआ कि भौगोलिक गतिविधियां पृथ्वी की तरह ही शनि के इस चंद्रमा की सतह पर भी परिवर्तन करती रहती है. टाइटन के बर्फवाले लैंडस्केप का पता 2004 में चला था, जब शनि की परिक्रमा करने वाले कैसिनी-ह्यूजिंस अंतरिक्षयान ने पहली बार वायुमंडल से ढके टाइटन की सतह को देखा था. इससे पहले वैज्ञानिक टाइटन पर फैले नदियों के अदभुत जाल को देखने में कामयाब नहीं हो पाए थे, क्योंकि वहां का वायुमंडल मीथेन और नाइट्रोजन की वजह से बहुत ज्यादा घना है और पृथ्वी से उसकी सतह का जायजा नहीं लिया जा सकता. जीवन की संभावना वाले टाइटन पर मीथेन की नदियों की खोज के बाद एमआईटी और टेनेसी यूनिवर्सिटी के रिसर्चरों ने शनि के चंद्रमा के भौगोलिक इतिहास की विस्तृत छानबीन शुरू की. उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि टाइटन की सतह पर बहुत कम क्षरण हुआ है, जबकि वह लगभग चार अरब साल से शनि के चक्कर काट रहा है. रिसर्चरों के मुताबिक कम क्षरण के सिर्फ दो कारण हो सकते है. या तो वहां क्षरण बहुत धीमा है अथवा हाल में हुई किसी घटना ने पुरानी भूसंरचनाओं और नदीतलों का लगभग सफाया कर दिया है. रिसर्चरों को इस बात पर भी हैरानी हुई कि सौरमंडल के दूसरे चंद्रमाओं की तुलना में टाइटन पर क्रेटरों की संख्या भी बहुत कम है. उल्लेखनीय है कि सौर मंडल के अधिकांश पिंडों पर उल्कापिंडों की बमबारी की वजह से क्रेटर बने हैं. टाइटन के कम क्रेटरों की तुलना पृथ्वी की स्थिति से की जा सकती है, जहां प्लेट टेक्टोनिक (भूखंडों की हलचल) और ज्वालामुखियों के विस्फोटों ने उल्कापिंडों की टक्कर के निशान लगभग मिटा दिए हैं. एमआईटी के खगोल वैज्ञानिक टेलर पेरोन का कहना है कि पृथ्वी के महाद्वीपों का लगातार क्षरण हो रहा है अथवा उन पर तलछट जम रही है. शायद टाइटन पर भी ऐसा ही हो रहा होगा. टाइटन की सतह पर बदलाव करने वाले कारणों को खोजना एक बड़ी चुनौती है. क्योंकि उपग्रह से लिए गए चित्रों से वहां की भौगोलिक विशेषताओं की एकदम साफ तस्वीर नहीं मिलती. एमआईटी के एक अन्य रिसर्चर वेंजामिन ब्लेक ने टाइटन की तस्वीरों की तुलना पृथ्वी के उन क्षेत्रों से की है, जहां लैंडस्केप में हाल में ही भारी परिवर्तन हुए हैं. इनमें कोआई द्वीप और उत्तर अमेरिका

के कुछ क्षेत्र शामिल हैं. इन क्षेत्रों में नदियों का जाल टाइटन जैसा ही दिखाई देता है. इससे पता चलता है कि हाल ही में भौगोलिक प्रक्रियाओं ने टाइटन की बर्फवाली सतह में परिवर्तन किए हुए होंगे.

एक अन्य अध्ययन में यूनिवर्सिटी ऑफ टेनिसी के रिसर्चरों ने हमारे चंद्रमा की मिट्टी को मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक बताया है. अंतरिक्ष में अपने कदम आगे बढ़ाने के लिए हम चंद्रमा पर स्थायी अड्डे बनाने की बात सोच रहे हैं. कुछ लोग उसकी खनिज संपदा के दोहन की योजनाएं भी बना रहे हैं. लेकिन रिसर्चरों के मुताबिक चंद्रमा की परिस्थितियों को देखते हुए वहां अड्डे बनाना भावी अंतरिक्षयात्रियों के लिए बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य होगा. चंद्रमा की सतह पर धूल की एक बहुत ही मोटी परत जमी है. इस धूल पर अल्ट्रा वायलेट रेडिएशन का भी प्रभाव है. इस धूल में अत्यंत महीन कण हैं, जो सांस लेते समय आसानी से मानव शरीर में प्रवेश कर सकते है. इसका असर एस्वेस्टस और ज्वालामुखीय राख जैसा ही होता है. मनुष्य के लिए यह धूल बहुत ही विषाक्त है. इससे कई तरह के कैंसर उत्पन्न हो सकते हैं. चंद्रमा पर कदम रखने वाले अंतरिक्षयात्रियों ने आंखों, स्किन और सांस नली के चंद्र धूल से प्रभावित होने की शिकायत की थी. यह धूल उनके स्पेस सूट्स पर चिपक गई थी, जो बाद में उनके अंतरिक्षयान में भी आ गई थी. स्मरण रहे मनुष्य ने अब तक चंद्रमा पर तीन-चार दिन से ज्यादा समय नहीं बिताया है. इतनी कम अवधि में भी उसका ज्यादातर समय अंतरिक्ष यान के अंदर या एयरटाइट सूट्स में बीता है. अतः आनेवाले निकट भविष्य में दीर्घकालीन पड़ाव के दौरान तमाम सावधानियों के बावजूद चंद्रमा में विषाक्त धूल के सांस में जाने का खतरा बना रहेगा.

-दीनानाथ सिंह,
एनआरबी, बीएआरसी, मुंबई - 85

2. रतनजोत : बायोडीजल का उत्तम हल

वर्तमान समय में ऊर्जा संकट और तेल की लगातार बढ़ती कीमतों के मद्देनजर रतनजोत की खेती बेहद फायदेमंद है. हालांकि बायो डीजल के मामले में देश को आत्मनिर्भर बनाने के मकसद से सरकार द्वारा अरबों रुपए खर्च किए जा रहे है, लेकिन इसी बीच रतनजोत उगाने के नाम पर जमीनों पर अधिग्रहण करने और इसके अंधाधुंध रोपण तथा धन के दुरुपयोग के आरोप भी समाचार पत्रों की सुर्खियों में हैं. 10वीं पंचवर्षीय योजना के तहत केंद्र सरकार ने रतनजोत की खेती को बढ़ावा देने के लिए 155 अरब रुपयों का प्रावधान रखा था. इस परियोजना का संचालन योजना आयोग स्वयं कर रहा है. इसके लिए योजना आयोग ने देश के 20 राज्यों में 200 ऐसे जिलों की पहचान की है, जिनमें रतनजोत की खेती की जाएगी. इन राज्यों में हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा और तमिलनाडु शामिल हैं. चयनित हर जिले में रतनजोत की खेती के लिए एक करोड़ रुपए दिए जाने का प्रावधान है. केंद्रीय पर्यावरण एवं वन, कृषि एवं सहकारिता तथा पेट्रोलियम मंत्रालय को भी इस मुहिम में शामिल किया गया है. योजना आयोग के मुताबिक वर्ष 2013 तक देश को करीब 20 करोड़ मीट्रिक टन तेल की जरूरत पड़ेगी. अगर देश में रतनजोत का अभियान कामयाब हो जाता है तो कुल तेल की मांग का करीब 50 फीसदी हिस्सा बायो डीजल से पूरा हो सकेगा. इस समय हमारा देश पेट्रोलियम पदार्थों की खपत का 70% हिस्सा विदेशों से आयात कर रहा है. इस पर हर साल करीब 800 अरब रुपए की विदेशी मुद्रा खर्च हो जाती है. विशेषज्ञों के मुताबिक अगर मौजूदा दौर में डीजल में पांच प्रतिशत बायोडीजल मिला दिया जाए तो भारत को 20 अरब रुपयों की विदेशी मुद्रा में बचत होगी. इतना ही नहीं इतने बड़े पैमाने पर रतनजोत की खेती से देश के करीब 19 लाख ग्रामीणों को रोजगार भी मिल जाएगा. इसके बाद उससे प्राप्त तेल परिशोधन और विपणन के काम से भी अन्य लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सकेगा. रतनजोत के बीजों से उपलब्ध बायो डीजल वाहनों के लिए एक बेहतर ईंधन साबित हो रहा है. इसे देखते हुए सार्वजनिक तेल कंपनी इंडियन ऑयल कारपोरेशन और भारतीय रेलवे ने संयुक्त रूप से रेल की पटरियों के आसपास की बेकार पड़ी जमीन पर रतनजोत की खेती करने का अभियान शुरू कर दिया है. रतनजोत से मिले बायो डीजल का दुनिया की नामी कार निर्माता कंपनी मर्सिडीज बैंज अपनी कारों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर चुकी है. बायो डीजल के उत्साहवर्धक नतीजे सामने आने पर इंडियन ऑयल ने न केवल इस वृक्ष की बड़े पैमाने पर रोपण करने का कार्य हात में लिया है. बल्कि रेलवे के साथ मिलकर इसकी योजना भी शुरू कर दी है, साथ ही यह कंपनी तेल एवं गैस संरक्षण पखवाड़े के दौरान किसानों को उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए इसकी खेती करने के लिए प्रोत्साहित भी कर रही है. भारतीय रेलवे ने भी लखनऊ यार्ड में अपने इंजनों में बायो डीजल डालकर उसे उपयुक्त पाया है. इसके अलावा हरियाणा रोडवेज की बसों में भी बायो डीजल मिश्रित ईंधन का इस्तेमाल किया जा रहा है.

रतनजोत (जत्रोफा) लगभग 175 प्रजाति की वनस्पतियों का समूह है. जिसमें झाड़ियां और पौधे सम्मिलित हैं. इसके पौधे भारत, अफ्रिका, उत्तरी अमेरिका, और कैरेबियन जैसे उष्ण क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं. यह एक बड़ा पादप हैं जो झाड़ियों के रूप में अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में उगता है. इस पादप से प्राप्त होने वाले बीजों में 25-30 प्रतिशत तक तेल (बायोडिजल) निकाला जा सकता है. इस तेल से स्कूटर ऑटो रिक्शा, कार आदि चलाये जा सकते हैं तथा जो अवशेष बचता है उससे बिजली पैदा की जा सकती है. जत्रोफा अनावृष्टि-रोधी सदाबहार झाड़ी है. यह कठिन परिस्थितियों को भी झेलने में सक्षम है. इसके बीजों को पीसने पर जो तेल प्राप्त होता है उससे न सिर्फ वाहनों के लिए बायोडिजल बनाया जा सकता है बल्कि सीधे लालटेन में डालकर उसे जलाया जा सकता है, एवं स्टोव्ह में इसका उपयोग भोजन पकाने के काम में लिया जा सकता है. इसके तेल के अन्य उपयोग - जलवायु संरक्षण, वार्निश, साबुन, जैव कीट-नाशक आदि में भी है.

- संजय गोस्वामी
एन.आर.बी, बीए.ए.आर.सी., मुंबई

विज्ञान समाचार

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से

1.पदार्थ विज्ञान

पदार्थो की विद्युत चालकता का गुण वस्तुतः पदार्थ की आण्विक संरचना पर निर्भर करता है. कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जिनकी ताप बढ़ाने पर विद्युत चालकता बढ़ती हैं जैसे सिलिकॉन, जर्मेनियम, सेलेनियम आदि. ऐसे पदार्थ परमशून्य (0 K) ताप पर कुचालक होते हैं, लेकिन जैसे ही इनका ताप बढ़ाया जाता हैं, इनके परमाणुओं में उपस्थित इलेक्ट्रॉन, संयोजी ऊर्जा बेंड से उत्तेजित होकर चालन ऊर्जा बेंड में पहुंचने लगते हैं. इस प्रकार ताप बढ़ने के साथ-साथ चालन ऊर्जा बेंड के इलेक्ट्रॉनों की संख्या भी बढ़ती है और

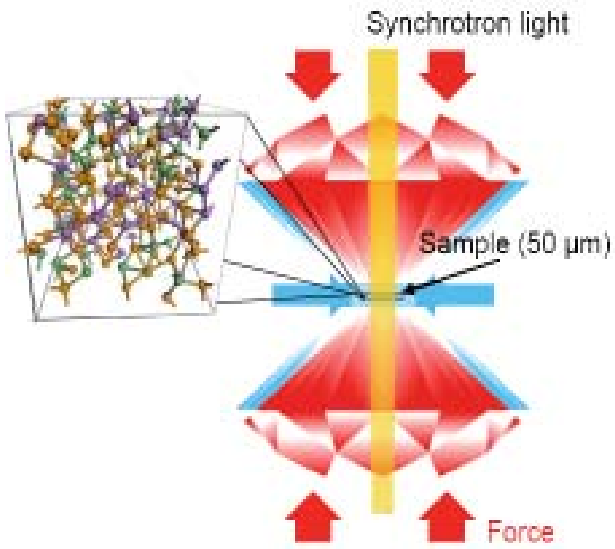

इससे पदार्थ की विद्युतचालकता भी बढ़ने लगती है. हीरा (Daimond) एक ऐसी संरचना से निर्मित है, जिसके कारण यह 2000-3000 K ताप पर भी अपना अर्द्धचालकीय गुण प्रदर्शित करता है और ठोस अवस्थामें भी बना रहता है. जबकि अन्य अर्धचालकीय पदार्थ इस ताप पर गल जाते हैं. अतः हीरे के दोषरहित क्रिस्टलों के बीच अन्य पदार्थो के नमूनों को रखकर उनके भौतिक गुणों, आण्विक संरचना इत्यादि का उच्च ताप व दाब की अवस्था में अध्ययन करना संभव है. उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर भा.प.अ.कें. में डायमंड एन्विल सेल का विकास किया गया है.

डायमंड एन्विल सेल वस्तुतः दो परस्पर विरोधी दिशा में दोषरहित उच्च गुणवत्ता युक्त 1/8 से 1/3 कैरेटवाले हीरे के एकल क्रिस्टल है, जिनका व्यास 6.6 mm तथा जो 50-106 µm की परास में स्थापित किए जा सकते हैं. इस सेल में उच्च दबाव प्रेरित किया जा सकता है. लेसर किरणों द्वारा दोनों हीरों के मध्य स्थित पदार्थ पर फोकसन किया जा सकता है. ऐसे ही इन हीरों के बीच X किरण भी प्रवाहित की जा सकती है. पहले हीरे से X किरण गुजरती है और यह नमूना पदार्थ से होकर दूसरे हीरे के पार हो जाती है. बाहर निकलने वाली इन X-रे किरणों में विवर्तन और प्रतिदीप्ति को माप कर नमूना पदार्थ की संरचना ज्ञात की जा सकती है. जो प्रकाशित अवशोषण होता है, उससे रमन स्पॅक्ट्रम लेकर पदार्थ के आण्विक गुणों का या रासायनिक संगठन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता हैं. इसी प्रकार इन नमूनों के चुंबकीय गुण भी प्राप्त किए जा सकते हैं.

2.गुणवत्ता आश्वासन

तारापुर स्थित बी.डब्ल्यू.आर. (Boiling Water reactor) रिएक्टर के दाबितपात्र SS 304 L ग्रेड धातु के बने होते है जो संक्षारण प्रतिरोधक (<10 MPY) मिश्र धातु है. इसमें लगा वेल्ड SS 308 L आस्टेनाइट स्टेनलेस स्टील के फिलर रॉड का रहता है. जब SS 304 L प्लेट से दाबित पात्र बनाया जाता है तो प्लेट को मोड़कर परिधि के रूप में

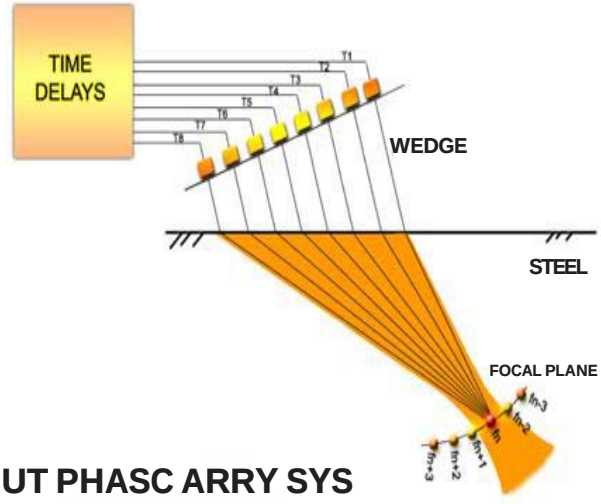

UT PHASC ARRY SYS

वृत्ताकार बनाकर सेल एवं डिश (Dishedend) को जोड़ते हैं. वेल्ड दाबित पात्र अनुदैर्ध्य और वृताकार वेल्ड बन जाता है जिसे C-वेल्ड भी कहते है इस प्रकार के जोड़ (वेल्ड) के आंतरिक दोषों का पता लगाने के लिए अल्ट्रासोनिक परीक्षण किया जाता है, क्योंकि बंद पात्र में रेडियोग्राफी हेतु रेडियोस्रोत और फिल्म रखने की जगह नहीं रहती है. इस प्रकार के वेल्ड की गुणवत्ता नियंत्रण हेतु कोड (ASME) के अनुसार अविनाशी परीक्षण करना आवश्यक रहता है. क्योंकि उस स्थान पर दबाव बहुत अधिक होता है. इस परीक्षण को करने के लिए उच्च आवृत्ति (~ 4 MH_z) के अल्ट्रासोनिक फेज सरणी (Phase arrey) तकनीक से वृताकार वेल्ड के ऊपर निकले हुए किनारों की ओर एंगिल बीम प्रो का इस्तेमाल कर वेल्ड के अंदरूनी भाग में स्थित दोषों को इन पराश्रव्य तरंगों द्वारा पता लगाया जाता है (ASTM मानक A-577 एवं 578 के आधार पर). पराश्रव्य ध्वनि-तरंग, धातु के अंदर समान गति से जाती है. जैसे, स्टेनलेस स्टील में इन ध्वनियों की गति 5350 मी/से है, जो पदार्थ के घनत्व के साथ बदल जाती है. जैसे ही अंदर कोई दोष यथा खाली जगह (होल), कोटरन, या अन्य अधातु पदार्थ (Inclution), दरार, पोरोसिटी आदि से यह तरंग गुजरती है, वैसे ही इन दोषों की जगह से ध्वनि तरंग परावर्तित हो जाती है, तथा इन तरंगों की प्रतिध्वनि की ऊंचाई में बदलाव आ जाता है, जिससे यह दोष देखे जा सकते है और दोष के स्थान का पता भी B अथवा C-scan करने पर लग जाता है. भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में गुणवत्ता आश्वासन प्रभाग के वैज्ञानिकों ने एक ऐसे ही वेल्ड निरीक्षण मेनिपुलेटर का निर्माण किया है जो उपरोक्त पराश्रव्य (अल्ट्रासोनिक) परीक्षणों पर आधारित है. यह विधि दाबित रिएक्टर पात्र के वेल्डों के निरीक्षण के लिए अत्यधिक कारगर है. इस यंत्र को दाबित पात्र के गुणवत्ता नियंत्रण हेतु यू टी मशीन, तारापुर परमाणु बिजली घर-1 में सफलतापूर्वक स्थापित किया गया है. इसका मॉक-अप टेस्ट भी सफलतापूर्वक किया जा चुका है.

3. भौतिक विज्ञान

1. इंडस में किरणपुंज रेखा विकास गतिविधि के एक भाग के रूप में खगोल भौतिकी और पर्यावरण विज्ञान से संबंधित अणुओं के वर्णक्रमिक अध्ययन के लिए उच्च विभेदन युक्त निर्वात पराबैंगनी रेखीय किरणपुंज का कमीशन किया गया.

2. इंडस में पृष्ठ, तनुफिल्मों और बहुपरतों के अभिलक्षण मापन के लिए प्रतिदीप्त मापन के साथ EXAFS रेखीय किरणपुंज का भी संवर्धन किया गया.

3. तूतीकोरिन स्थित भारी पानी संयंत्र में 1 AMU

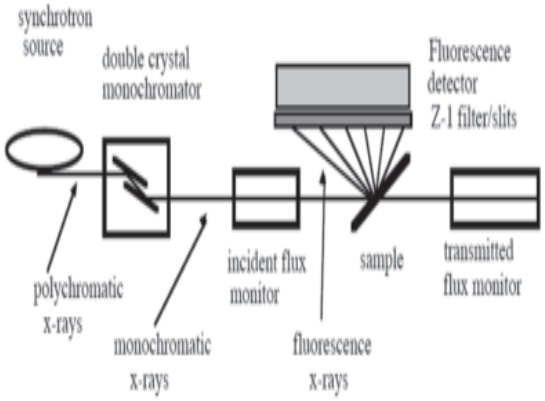

Schematic XAFS experiment

विभेदन और 150 AMU द्रव्यमान रेंज वाले एक चतुर्ध्रुवी द्रव्यमान स्पेक्ट्रामापी का संविरचन और स्थापना की गई.

4. रसायन विज्ञान

1. उच्च अम्लीय माध्यम में प्लूटोनियम की अल्फा सक्रियता के मॉनीटर के रूप में विकसित नैनो-डायमंड फिल्म की संभाव्यता अध्ययन एवं इसका विकास सफलतापूर्वक पूरा किया गया.

2. सरल और किफायती हाइड्रोजेल आधारित पदार्थ विकसित किया गया, जिसमें साइट्रिक अम्ल भारित कपास गेज के साथ संयुक्त एगारोज जेल निस्सरित करनेवाले नाइट्रोजन आक्साइड शामिल हैं. इस पदार्थ में उत्कृष्ट रोगाणु प्रतिरोधी गुणधर्म है और अल्सर-जनित त्वचा के संक्रामणों में ड्रेसिंग मटेरियल के रूप में इसके अनेक उपयोग है.

3. मिश्रित रोगाणु कणिकाओं का उपयोग करके जैव-विनाइट्रीकरण पर अध्ययन से पता चला कि 1.5 C/N अनुपात पर एसीटेट की आपूर्ति कर 4050 मि.ग्रा. तक NO-N/L (18,000 mg/L NO_3 के समतुल्य) का उपचार किया जा सकता है. इसके 6 लीटर आयतनवाले (प्रयोगशाला पैमाना अनुक्रमण) बैचों को रिएक्टरों में प्रदर्शित किया गया.

5. खाद्य प्रौद्योगिकी

1. आलू के चिप्स जैसे कार्बोहाइड्रेट से भरपूर तले हुए खाद्य पदार्थ में न्यूरोटॉक्सिन और संभावित कैंसरजनक एक्रोलेमाइड पदार्थ अत्यन्त उच्च स्तर पर मौजूद होना रिपोर्ट किया गया है. तलने के दौरान अमीनों अम्ल एस्प्राजीन के साथ खाद्य पदार्थ में उपस्थित शर्करा की घटती हुई मात्रा (ग्लूकोज की अभिक्रिया होने पर) से इस यौगिक की उत्पत्ति

होती है. खाद्य पदार्थों को अंकुरित होने से रोकने के लिए किरणित किए गए आलुओं से तैयार चिप्स में एक्रीलेमाइड

की मात्रा का मापन किया गया जो इसके संगत अकिरणित आलू के सॅम्पलों की अपेक्षा कम पाई गई.

2.किरणित करने से फलों और सब्जियों में इनके कटने के बाद सतह के भूरा रंग हो जाने में कमी आती है. पहली बार जब काटने से पहले पकाने के लिए तैयार कद्दू (ऐश गोर्ड) पर अध्ययन किया गया तो यह देखा गया कि विकिरण प्रक्रिया के दौरान अपने पुर्ववर्ती (प्रिकर्सर) पदार्थ से निकले गामा रिसाइक्लिक अम्ल, कटे हुए फलों और सब्जियों का रंग भूरा बनाने में सहयोगी एन्जाइम पॉलीफेनॉल आक्सीडेज का प्राकृतिक अवरोधक के रूप में कार्य करता है.

6. नाभिकीय-कृषि

कृषि के क्षेत्र में, दो नई विकिरण प्रेरित उत्परिवर्ती फसलों की किस्में जारी की गई. अरहल दाल की नई प्रजाति TJT-501 नाम से पहली किस्म, महाराष्ट्र में खेतों के लिए जारी की गई. 115 दिन में पकनेवाली TG47 नामक अन्य बड़े बीज तथा उच्च ओलिक अम्ल युक्त एवं अधिक शाखाओं वाली मीठी मूंगफली की किस्म आंध्रप्रदेश में खेती के सफल उत्पादन के बाद वाणिज्यिक फसल के रूप में उपयोग करने की अधिसूचना जारी की गई.

वस्त्र, खाद्य एवं कागज उद्योगों के बहिःस्राव उपचार संयंत्रों (ईटीपी) में उत्पादित जैविक उत्पादों की बृहत मात्राओं के उपचार के लिए निसर्ग प्रौद्योगिकी का सफलतापूर्वक विस्तार किया गया. इस तरह के चार संयंत्र स्थापित किए गए है.

7.जैव प्रौद्योगिकी

एक महत्वपूर्ण जांच से पता चला कि बहुत से ट्यूमर प्रतिरोधी प्राकृतिक यौगिकों के एक जनक अणु 1,4-नेप्थोक्विनोन (एनक्यू) ने 4 Gy गामा विकिरण की एक खुराक से चूहों के लिम्फोसाइटों और आंत की कोशिकाओं को बचाया. चूहों में, 2m/kg NQ दिए जाने से (इन-वाइवो) विकिरण प्रेरित अस्थि-मज्जा अनुपात में सुधार कर इसे पुरानी स्थिति में लाया गया. इन संभवित क्रियाविधियों में रेडॉक्स ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर Nrf-2 (नाभिकीय फैक्टर E2 संबंधित फैक्टर-2) का सक्रिय शामिल है.

8. पर्यावरण सर्वेक्षण और विकिरण संरक्षा

ज्ञातव्य है कि कुछ वर्ष पूर्व फुकुशिमा नाभिकीय दुर्घटना के कारण विभिन्न रेडियोन्यूक्लाइडों के वायुमंडल में और प्रशान्त महासागर में निस्सरण की दरों के प्राथमिक आकलन, भारत में विकसित पर्यावरणीय मॉडलों का प्रयोग करके ही निकाले गए थे. अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी को इस बारे में सूचित किया गया था. इस प्रकार के उच्च ऊर्जा पर्यावरण में γ किरणों की मात्रा ज्ञात करने हेतु स्टैंड अलोन (स्वावलंबी) विकरणमापकों का विकास भा.प.अ.केंद्र में हुआ.

मोबाईल नेटवर्किंग (जीएसएम), स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क (लैन) तथा प्रकाशित तंतु आधारित संचार चैनलों के लिए भूमंडलीय प्रणाली के लघु संदेश सेवा (एसएमएस) का उपयोग करके विवृत्त क्षेत्र प्रस्थापन के लिए और ऊर्जायुक्त पर्यावरणीय विकिरण मॉनीटर (ईआरएम) को आंकड़ा संचार सुविधा के साथ प्रचालित किया गया. पर्यावरण में गामा विकिरण स्तर में वृद्धि के कारण उत्पन्न नाभिकीय आपातकाल की स्थिति में, ये स्टैंड-अलोन (स्वावलंबी) स्वचालित प्रणालियां, मुंबई स्थित किसी सेंट्रल स्टेशन को पार्श्व पर्यावरणीय विकिरण आंकड़े भेजते हैं और इस तरह से ये एक पूर्व चेतावनी प्रणाली के रूप में कार्य करते हैं. ईसीआईएल के साथ एक समझौते (MOU) के अंतर्गत इन इकाइयों का औद्योगिक उत्पादन भी शुरू किया है.

रेडॉन (Rn) के कारण संचित डोज के प्रत्यक्ष मॉनीटरन के लिए अंतःश्वसन डोजीमापी बैजों का विकास किया गया तथा इन बैजों को देश के भीतर लगभग 2000 स्थानों में और विभिन्न विदेशी संस्थानों के अनुरोध पर यूरोप में लगभग 1000 स्थानों में स्थापित किया गया है

सार्वजनिक क्षेत्रों से होकर रेडियोसक्रिय पदार्थों के

परिवहन के दौरान इसकी संरक्षा में वृद्धि करने के लिए अनुसंधान एवं विकास प्रयासों के परिणामस्वरूप पॉली यूरीथेन फोम (पीयूएफ) का सफलतापूर्वक विकास किया गया, जिसे परिवहन पैकेजों

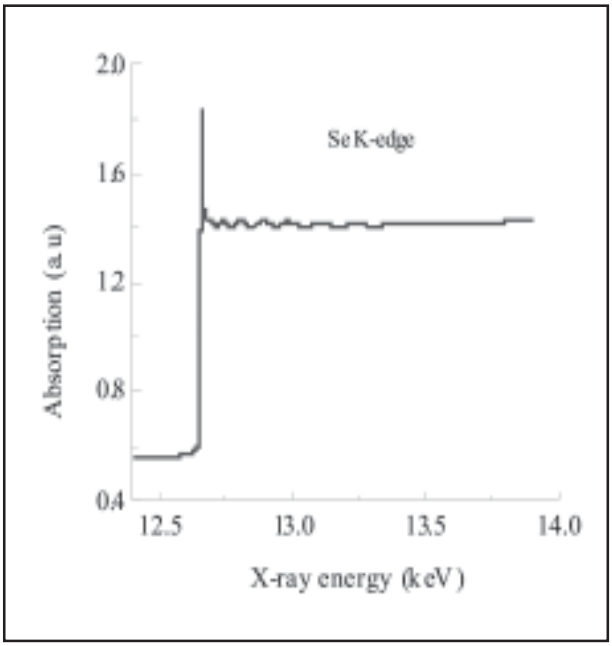

में तापीय परिरक्षण और संघट्ट सीमक (इपैक्ट लिमिटर) के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है. न्यूट्रान रेडियोग्राफी के क्षेत्र में सायरस रिएक्टर में एक समर्पित तीव्र किरणपुंज सुविधा का उपयोग करके न्यूट्रॉन रेडियोग्राफी को अपनाते हुए पहली बार वास्तविक काल में सीसा गलाने का प्रतिचित्रण किया गया. यह प्रायोगिक आंकड़ा आग में निमग्न किए जा रहे किसी भुक्तशेष ईंधन ट्रांसपोर्ट कास्क की परिकल्पिक दूर्घटना के दौरान सीसे की मॉडलिंग के लिए प्रयुक्त कम्प्यूटर कोडों का मान्यकीकरण आसान बनाता है.

इंस्टीट्यूट ऑफ प्लाज्मा रिसर्च (आईपीआर), गांधीनगर और आरएमपी, मैसूर में विकिरण मानीटरन प्रणाली और प्रशिक्षित आपातकाल अनुक्रिया दलों (ERTs) के साथ मिलकर आपातकाल अनुक्रिया केंद्रों (ERCs) की स्थापना की गई है. इससे देश में नाभिकीय एवं विकिरण आपातकाल स्थिति की पूर्व तैयारी एवं अनुक्रिया के लिए कुल ईआरसी दलों की संख्या 20 हो गई है.

नाभिकीय आपदा से निपटने की तैयारी और अनुक्रिया पर दिशानिर्देश तैयार करने के लिए राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) को भा.प.अ.के. द्वारा तकनीकी सहयोग प्रदान किया गया.

9. अपशिष्ट प्रबंधन सुविधा

ठंडे क्रूसिबल प्रेरण गालक (सीसीआईएम) का प्रयोग करते हुए कांचीकरण प्रौद्योगिकी अनुकारित अपशिष्ट भरण प्रयोगों को सफलतापूर्वक संपन्न किया. यह इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है.

कलपाक्कम के केंद्रीकृत अपशिष्ट प्रबंधन सुविधा में मद्रास परमाणु बिजलीघर के सामूहिक शीतलक चैनल प्रतिस्थापन से थब-नलिकाओं के पुनः प्राप्तन, आयतन को कम करने और इनके निपटान के लिए परमाणु ऊर्जा विभाग में पहली बार एक अभियान शुरू किया गया है.

सीजियम-आपेक्षित क्राउन ईथर के संश्लेषण और किलोग्राम पैमाने तक पदार्थ निर्माण के स्वदेशी उत्पादन के लिए एक प्रक्रम विकसित किया गया है. निम्न और मध्यवर्ती स्तर के द्रव अपशिष्टों से ^{105}Ru, ^{99}Tc, ^{144}Ce जैसे विशिष्ट आइसोटोपों के निष्कासन के लिए मनके (बीड) के रूप में अकार्बनिक आयन-एक्सचेंजर मीडिया विकसित किया गया है.

(साभार बी.ए.आर.सी.न्यूजलेटर)

संकलन : संजय गोस्वामी,
एनआरबी भापअके, मुंबई

परमाणु

सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म कण, समवत पदार्थ जैसा
कण गत कणिका की मूलतम इकाई है।
दृश्यमात्र समूहों में, यों अदृश्य दृष्टिगत,
तात्विक पदार्थ की ये, प्रथम इकाई है।
सृष्टि के विस्तार की ये, मूलतम इकाइयाँ है,
ये ही कण ठोस, द्रव, गैसों में समाये है।
तत्व सृष्टि के रहस्य, परमाणु, परमाणु
जड़ से जगत में ये, चेतन जगाये है।

रंगहीन परमाणु, रंगों के सजाते साज,
सूर्य किरणों में वायु, नील-वत दिखाये है।
है प्रकाश के सखा ये, विकिरण प्रकीर्ण कर
दृश्यमान नहीं पर, दृश्यों को रचाये है।
परमाणु जानने के यत्न जिसने भी किये,
मिले प्रतिबिम्ब पर, छबि नहीं पायी है।
इन प्रतिबिम्बों से ही, मिली जो समझ हमें,
स्वल्प स्वसमझ से, करत ये लिखाई है।

-डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

शुभकामना

'वैज्ञानिक' के पूर्व संपादक केंद्र से ससम्मान सेवानिवृत्त

वैज्ञानिक के भूतपूर्व संयोजक संपादक डॉ.गोविंद प्रसाद (गो.प्र.) कोठियाल (उत्कृष्ट वैज्ञानिक तथा पूर्व अध्यक्ष कांच एवं प्रगत सिरामिक प्रभाग भा.प.अ.के. मुंबई) लगभग 44 वर्षो की सेवा पूरी करके दिनांक 31.12.12 को केंद्र से ससम्मान सेवानिवृत्त हो रहे हैं. आपकी सेवा उपलब्धियों को देखते हुए आपको केंद्र द्वारा 2 वर्ष का सेवाविस्तार भी प्रदान किया गया था.

डॉ.गो.प्र. कोठियाल भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के प्रतिष्ठित प्रशिक्षण विद्यालय के 13वें बैंच (भौतिकी) से है, और उन्होंने विज्ञान अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी, दोनों ही क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया है. उनका कार्य मुख्यतः विशेष प्रकार के कांच एवं कांच सिरामिक संबंधित शोधों का था. उन्होंने इन पदार्थों से नाभिकीय ऊर्जा प्रतिरक्षा तथा अंतरिक्ष क्षेत्रों में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों एवं उनसे निर्मित युक्तियां तैयार करने में सहयोग दिया तथा लगभग 180 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित किये. आप कुछ वर्षों तक हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के उपाध्यक्ष भी रहे.

एक प्रभावी विज्ञान संचारक के नाते डॉ.कोठियाल नाभिकीय तथा अन्य जन सामान्य संबंधित विषयों की वैज्ञानिक जानकारी/ज्ञान के संचार तथा लोकप्रियकरण की दिशा में स्वयंसेवी भाव से लगातार कार्य करते रहे हैं. आपने हिंदी एवं अंग्रेजी भाषाओं के माध्यम से 'वैज्ञानिक साहित्य सृजन करने के उद्देश्य से अनेक विज्ञान संबंधी लोकप्रिय लेख / समीक्षाएं, विज्ञान पत्र / पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं तथा कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों तथा आकाशवाणी से भी वार्ताएं प्रस्तुत की हैं. आपको जनवरी 2011 में वर्ष 2009 के उत्कृष्ट विज्ञान संचार हेतू INS द्वारा 'विज्ञान संचारक' पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

डॉ.कोठियाल हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भापअ केंद्र द्वारा प्रकाशित 'त्रैमासिक पत्रिका' 'वैज्ञानिक' के 1991 से प्रमुख संपादक रहे और इस दौरान 40 से अधिक विचार प्रेरित करनेवाले एवं सामयिक संपादकीय लिखे. आप नाभिकीय इंजीनियरी शब्दकोश तैयार करने के कार्य से भी जुड़े रहे, तथा परमाणु ऊर्जा विभाग के वार्षिक प्रतिवेदनों के हिंदी रूपांतरण का कार्य भी किया. समय-समय पर विज्ञान संचार एवं लोकप्रियकरण हेतु आपको कई अन्य पुरस्कार/सम्मान जैसे विज्ञान वाचस्पति, राजभाषा भूषण पुरस्कार, उत्कृष्ट संपादक इत्यादि से सम्मानित किया गया हैं. केंद्र से सेवानिवृत्ती के अवसर पर 'वैज्ञानिक परिवार' की ओर से आपको वैज्ञानिक में उल्लेखनीय योगदान हेतु अनेक बधाइयां तथा भविष्य के सुखद एवं निरोगी सुदीर्घ पारिवारिक जीवन के लिए शुभकामनाएं .

- सं.मं.

बाल किशोर पन्ना

विज्ञान प्रश्न मालिका - 1

हां, अता पता ज़रूर पूछो पर इन पशु-पक्षियों के गुण जल्द बूझो!

*मित्रो, अनेक पशु-पक्षी सैकड़ों-हजारों वर्षों से हमारे साथी रहे हैं. जी हां, कुत्तों से हमारी दोस्ती 10 हजार वर्षों से तथा बिल्ली से हमारी मित्रता 5 हजार वर्षों से रही है. इसी तरह तोता, मैना और मोर जैसे पक्षी, तो हाथी, घोड़ा तथा ऊंट जैसे पशु भी हजारों वर्षों से हमारी जिंदगी का अटूट हिस्सा रहे हैं, है न ! शेरो-टाइगरों की मौजूदगी ने हमारे देश को अद्‌भुत ख्याति दी है. पर सवाल आज यह है कि क्या इतने लंबे समय के बाद भी हम इन पशु-पक्षी साथियों का स्वभाव-आचरण (**Ethology**), या उनकी तकलीफें-जरूरतें आदि को समझ पाये हैं. यही जानने के लिये इन विविध प्राणियों पर यह रोमांचक प्रश्नमालिका तैयार की गयी है जिससे हमें इन साथियों के प्रति हमारी स्वयं की समझ का पता चले.*

इस विज्ञान प्रश्नमालिका में कुल 10 प्रश्न हैं, हर प्रश्न के तीन-तीन उत्तर 'क', 'ख' तथा 'ग' विकल्पों में आपके सामने हैं जिनमें से आपको सही विकल्प चुनना है. इन चुने हुए विकल्पों का मिलान फिर आप इसी अंक में अन्य किसी पृष्ठ पर दिए गए जवाबों से कर सकते हैं.

1. हालांकि ग्लोबल वॉर्मिंग ने आज इन्हें विलुप्त कर दिया है पर 20 वीं सदी के आखिरी दशक तक सुनहरे मेढकों (Golden Toad) को अप्रैल-जून के दौरान असंख्य लोगों ने देखा व इनकी 'टर्र टर्र' की मोहक ध्वनि का आनंद भी लिया है. इन्हें लोग ओरेंज टोड या फिर मोंटवर्दे शहर की पहाड़ियों में मौजूदगी के कारण मोंटवर्दे टोड भी कहते हैं. बताइए, ये किस देश में पाये जाते रहे हैं?

(क) कोस्टा रिका (ख) ब्राजील (ग) फ्राँस

2. काली-सफेद पट्टियों वाला जेब्रा हमारा चिरपरिचित प्राणी है. बताइए कि इसकी पट्टियों की असली सच्चाई क्या है?

(क) जेब्रा मूलतः पूरा सफेद है जिस पर काली रोयेंदार पट्टियां होती हैं.

(ख) जेब्रा मूलतः पूरा काला है जिस पर सफेद रोयेंदार पट्टियां होती हैं.

(ग) यह काला-सफेद ही है, इस पर कोई रोयेदार पट्टियां नहीं होतीं.

3. गाय के बच्चे को हम बछड़ा कहते हैं, तो कुत्ते के बच्चे को पिल्ला, है न! तो बताइए कि शेर के बच्चे को हम क्या कहते हैं?

(क) सिंह-शिशु (ख) कब-कब (cub-cub)

(ग) शावक

4. पिल्ले छह माह की आयु में ही वयस्क हो जाते है. 42 दाँतों वाला हमारा यह दोस्त 450 नस्लों में उपलब्ध है. अब बताइए कि इनकी कौन सी नस्ल सूंघने की शक्ति में सर्वश्रेष्ठ है?

(क) ब्लड हाउंड, (ख) डिंगो (Dingo), (ग) जर्मन दीपर्ड

5. थलचर स्तनपायिओं में खरगोश के दूध में ही सबसे अधिक वसा पायी जाती है, इसी कारण हम अपने पालतू खरगोश के लिए अधिक वसायुक्त दूध खरीद लाते है. बताइए मादा खरगोश के दूध में वसा की मात्रा का प्रतिशत कितना होता है?

(क) 4-7% (ख) 8-10% (ग) 14-17%

6. अभयारण्य का असली अर्थ है वह सुरक्षित वनक्षेत्र जहां पर....

(क) वन्य पशु-पक्षी सुरक्षित महसूस करें.

(ख) पेड़-पौधों को कटने-उजड़ने का डर न हो.

(ग) उपरोक्त (क) व (ख) के साथ-साथ वन्यजीवों व पेड़-पौधों को कुदरती सहजीवन का अभयदान मिले.

7. घड़ियाली आंसू यानी नकली आंसू, ऐसी कहावत तो हम सभी ने सुनी है, है न! अब इन विकल्पों में सही वैज्ञानिक तथ्य कौन सा है?

(क) घड़ियाल आंसू बहाने में असमर्थ है क्योंकि उसमें अश्रुग्रंथि ही नहीं होती.

(ख) उसमें अश्रुग्रंथि होती है, आंसू भी असली होते हैं.

(ग) उसमें अश्रुग्रंथि नहीं होती, फिर भी आंसू असली होते हैं.

8. कुत्ते और बिल्ली दोनों का औसत गर्भकाल (Gestation period) बराबर होता है, यह जाना माना तथ्य है, परंतु कितना?

(क) 11 दिन (ख) 64 दिन (ग) 95 दिन

9. कई पक्षी उड़ पाने में असमर्थ हैं, अर्थात पक्षी होते हुए भी डेढ़ किलो का अंडा देने वाला शुतर्मुर्ग उड़ नहीं पाता. कुछ और पक्षी जो उड़ पाने में समर्थ नहीं, वे हैं....

(क) ऐमू व डोडो (ख) किवी तथा पेंगुइन

(ग) ये सभी (यानी क और ख मिला कर)

10. अन्य चमगादड़ों के अनाथ बच्चों को सहर्ष गोद ले लेने वाले स्तनपायी चमगादड़ अपने पिछले पैरों के जरिये गुफाओं, पेड़ों, कंदराओं आदि में उल्टे लटके रहते हैं. 1000 के करीब किस्मों वाले इन चमगादड़ों की आराम करते वक्त आखिर उल्टे लटके रहने की मजबूरी क्या है?

(क) ताकि उड़ते कीड़े मकोड़ों को आसानी से पकड़ सके.

(ख) दुश्मनों पर बेहतर नजर रख पाने के उद्देश्य से

(ग) इनकी टांगे/पैर इतने मजबूत नहीं होते हैं कि वे घंटों तक इनके शरीर का वजन उठाए रख सकें.

डॉ.देवकी नंदन,
बी-707, प्रगति अपार्टमेंट्स, प्लॉट 5 सी, सेक्टर 11,
द्वारका, नई दिल्ली-110075

बुद्धि कौशल्य - (3)

यहां कुछ सरल समस्याएं आपके ध्यानाकर्षण के लिए प्रस्तुत हैं. आप इनके उत्तर हमें भेज सकते हैं. कम से कम चार समस्याओं के शुद्ध उत्तर देने वाले पाठकों में से प्रथम दस के नाम वैज्ञानिक के अगले अंक में प्रकाशित किये जायेगें तथा सभी प्रश्नों के सही हल भेजनेवाले तीन प्रतियोगियों को पुरस्कृत भी किया जायेगा. उत्तर भेजनेवाले कृपया अपना स्पष्ट पता भी साथ में भेजें. अच्छा होगा यदि ये उत्तर हमें ई मेल द्वारा भेजे जाएं. सबंधित ई-मेल के पते नीचे दिए गए हैं. उत्तर प्राप्त होने की अंतिम तिथि 31 दिसंबर 2013

(सं.मं.)

1) पूर्ण संख्याओं के समुच्चय अर्थात (...-2, -1, 0, 1, 2, 3,...) में तीन क्रमिक संख्याओं से बने ऐसे समूह बताइए, जिनमें उन समूहों में उपस्थित संख्याओं के योग का वर्ग उन संख्याओं के घनों (Cubes) के योग के समान होता हो. ऐसे कुल कितने समूह इस समुच्चय में संभव है.

2) 100 मीटर लंबाईवाली दौड़ की प्रतियोगिता में अरूण ने वरूण को 5 मीटर से जबकि वरूण ने गरूड़ को 20 मीटर से पराजित किया. क्या आप बता सकते है अरूण ने गरूड़ को कितने मीटर से पराजित किया?

3) आपको 72 वर्गसेमी की एक कलाकृति बनानी है, जिसके ऊपर और नीचे (दोनों ओर) 1.5 सेमी. तथा दायी एवं बायी ओर 2 सेमी के हाशिये (खाली जगह) छोड़नी है. क्या आप बता सकते हैं, इसके लिये आपको कम से कम कितने वर्ग से.मी. कागज (पेपर) की आवश्यकता रहेगी?

4) किसी एक गांव के विकलांगों की सूची में 80% लोग लंगड़े, 78% लोग बहरे, 76% लोग अंधे तथा 74% लोग गूंगे है. आपको बताना है कि इस सूची में कितने प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो चारों प्रकार की अपंगता से ग्रसित है?

5) पृथ्वी आदि ग्रह पिण्ड गुरूत्वाकर्षण बल (या क्षेत्र) निर्माण करते है, जो अंतरिक्ष में दूर-दूर तक फैल जाता है, तथा दूरी बढ़ने पर इसकी तीव्रता कम होती जाती है (किन्तु शून्य केवल अनंत दूरी पर ही हो पाती है). अतः पृथ्वी के आसपास ऊपर या नीचे सभी स्थानों पर किसी वस्तु का शून्य भार संभव नहीं होना चाहिए. जबकि पृथ्वी से छोड़े गये अंतरिक्ष यानों की भ्रमण कक्षा में अंतरिक्ष यात्री (या सामान) भार हीनता को अनुभव करते रहते है. क्या आप बता सकते है कि अंतरिक्ष यान में यह भारशून्यता कैसे आती है?

ईमेल :
skumar13d@gmail.com,
j.c.vyas@gmail.com

प्रस्तुति : डॉ.सुरेशकुमार एवं डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

भौतिकी वर्ग, भा.प.अ.के., मुंबई

बुद्धि कौशल्य (2) के प्रश्नों के समाधान

हमें प्रसन्नता है कि अनेक पाठकों के बुद्धि कौशल्य (2) के संबंध में पत्र तथा ई-मेल प्राप्त हुए, लेकिन खेद की बात यह भी है कि हमें किसी भी पाठक से सभी प्रश्नों के शुद्ध हल प्राप्त नहीं हुए. पाठकों द्वारा किये गये प्रयत्नों की हम प्रशंसा करते है, विशेषकर निम्नलिखित पाठकों के प्रयास सराहनीय श्रेणी के रहे (जिनके कुछ प्रश्नों के उत्तर बिलकुल सही थे),

1. **श्री. जय प्रकाश सिंह** (रिएक्टर नियंत्रण प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र मुंबई),
2. **श्री. सागर दिल चौहान** (एएमडी कॉम्पलेक्स, सेक्टर-5, प्रतापनगर, सांगानेर, जयपुर),

यहां हम अन्य पाठकों की सुविधा के लिए बुद्धि कौशल्य (2) के समाधान विस्तार से दे रहे हैं. ध्यान रहे, उत्तर लिखते समय आपको ये विस्तार दिखाने की आवश्यकता नहीं है, केवल अन्य पाठकों की समझ के लिये ही ये विस्तारित समाधान दिये जा रहे हैं. -सं.मं.

प्रश्न 1. माना की रमेश की जेब में X रुपये है, तो उसके द्वारा क्रय किये गये सामान की कीमत इस प्रकार होगी :

X/2 (आटा), X/3 (दाल), X/4 (सब्जियां) तथा X/5 (मसाले)

अतः सब सामान की कीमत

X/2 + X/3 + X/4 + X/5

= (30+20+15+23)X /60 = (77/60) X होगी.

परंतु रमेश के पास तो X रु.ही है, अतः स्पष्ट है कि (77X/60) - X = (77X-60X)/60 = 17X/60 रुपए रमेश के पास कम पड़ रहे है. अतः 17X/60 रु. उसे महेश से उधार लेने पड़ेंगे

यदि X/60 की धनराशी को पूर्णांक में व्यक्त करना है, तो X का मान 60 या इसका कोई भी पूर्ण संख्या गुणक याने 120, 180 इत्यादि होना चाहिए. इसमें सबसे छोटी राशी 60 ही है. अतः X का मान 60 रुपये होगा, और इस आधार पर महेश से उधार लिये धन का मान 17 रु. होगा.

प्रश्न 2. माना की कार की गति υ कि.मी./घं.है, और यह T घंटों में 60 किमी की दूरी तय करती है. अतः

वेग (υ) X समय (T) = तय की गई दूरी, के हिसाब से

$$\upsilon . T = 60 \qquad -(1)$$

कार की गति को 20 किमी/घं. कम करने से कार का नया वेग (υ–20) किमी/घं. हो जाएगा, जबकि उपरोक्त दूरी (60 किमी) चलने में लगने वाले नए समय का मान बढ़कर (T+0.5) घंटे हो जाएगा. अतः नयी शर्त से

$$(\upsilon-20) \times (T+0.5) = 60$$

या $\upsilon T - 20\,T + 0.5\upsilon - 10 = 60 \qquad -(2)$

किंतु $\upsilon\, T = 60$ होने से समीकरण (2) का नया रूप होगा.

$$\upsilon - 40\,T = 20 \qquad -(3)$$

साथ ही $T\,\upsilon = 60$ से ही $T = (60/\upsilon)$

अतः T का यह मान समीकरण (3) में रखने पर

υ - 40 $(60/\upsilon) = 20$

जिसको सरल करने पर (अर्थात υ से दोनों पक्षों में गुणा कर फिर से लिखने पर)

$$\upsilon^2 - 20\upsilon - 2400 = 0 \qquad -(4)$$

इस समीकरण (4) के गुणनखंड करने पर

$$(\upsilon-60)\,(\upsilon+40) = 0$$

अतः $\upsilon = 60$ कि.मी/घं. या - 40 कि.मी/घं.

क्योंकि -40 कि.मी./घं. गति का मान आगे जाने के लिये योग्य नहीं है

अतः $\upsilon = 60$ कि.मी./घं. सही गति है.

समीकरण (4) से सीधे भी υ का मान प्राप्त हो सकता है. लेकिन उत्तर 60 कि.मी./घं. ही रहेगा.

प्रश्न 3. यह समस्या पृथ्वी की सतह पर पड़नेवाले वायुमंडलीय दबाव या दाब से संबंधित है, और इसी पर आधारित है. समुद्री सतह के आसपास सामान्यतः वायुमंडल का दबाव पारे के 76 से.मी.ऊंचाई के कॉलम अर्थात लगभग 100000 $=10^5$ पास्कल के बराबर होता है. पारे का धनत्व 13.6 ग्रा./घनसेमी. होने से इसी दबाव के समकक्ष पानी के कालम की ऊंचाई लगभग 10.33 मीटर के आसपास आती है. (क्योंकि पानी का घनत्व 1ग्राम/घनसेमी है) यदि नीचे वाले पाइप की लंबाई उपरोक्त लंबाई से अधिक हो, तो कोई भी पंप (सही प्रकार से काम करते रहने पर भी) 10.34 मीटर या इससे गहराई वाली सतह से पानी को ऊपर की ओर खींच पाने में समर्थ नहीं होगा. वास्तव में सभी पंप अपनी स्वयं कि सतह से पानी बाहर (ऊपर) की ओर फेंकने का ही कार्य करते हैं. पानी को नीचे की सतह से पंप तक धकेलने का कार्य वायुमंडलीय दबाव से ही होता है. पंप स्वयं पानी खींचने का कार्य नहीं करते, बल्कि यह कार्य

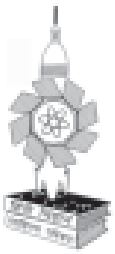

वायुमंडलीय दबाव के कारण (प्राकृतिक रूप से) होता है. इसीलिये सभी पंप निर्माता नीचे वाले पाईप की लंबाई को उपरोक्त मान 10 मी.से कम ही रखते है, जो लगभग 8 मीटर के आसपास रहता है.

प्रश्न 4. यह सरल ज्यामिती का प्रश्न है,

पृथ्वी सूर्य का चक्कर एक दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में लगभग 365 दिन में लगाती है. जबकि चन्द्रमा पृथ्वी का एक चक्कर 27 दिन में पूरा कर लेता है.

लेकिन 27 दिन के इस चक्कर लगाने वाले समय में पृथ्वी भी तो अपने स्थान से लगभग $(27/365)X360^0$ के कोण से आगे बढ़ जाती है. परिणाम स्वरुप सूर्य और पृथ्वी को जोड़नेवाली नयी सीधी रेखा की दिशा वाली अवस्था में (यही स्थिति पूर्णिमा की अवस्था निर्माण करती है) चन्द्रमा को इतने ही अंश अर्थात $(27x\ 360^0/365)$ अधिक चलना पड़ेगा, जिसमें लगभग 2.5 दिन का अतिरिक्त समय लगता है. इसीलिये हम पृथ्विवासियों को चन्द्रमास का अंतराल (प्रथम पूर्णिमा से अगली पूर्णिमा तक का समय) 27 दिन से अधिक का प्रतीत होता है. यहां चित्र में 27^0 के कोण को अधिक स्पष्ट रुप से

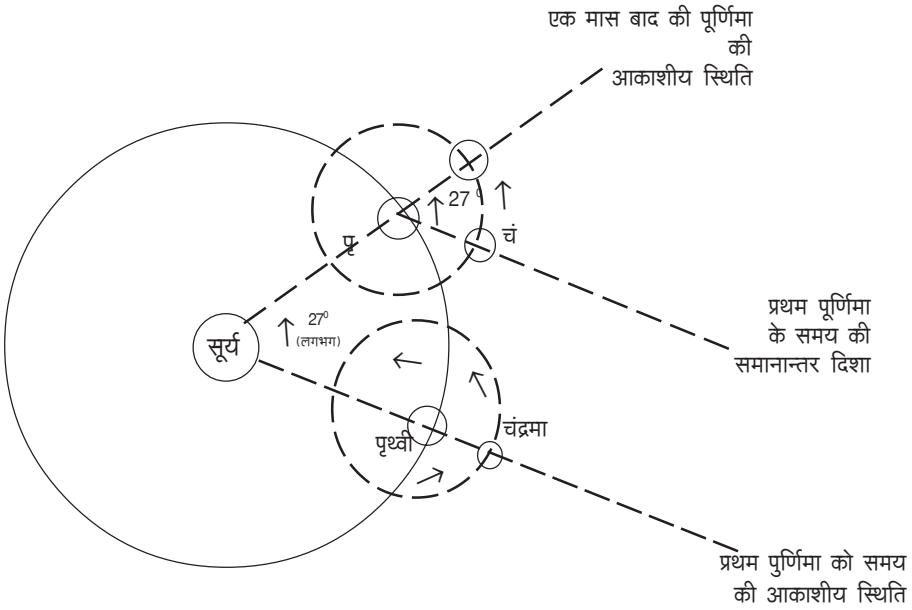

दिखाने के लिए बड़ा करके दिखाया है. यहां महत्वपूर्ण बात यह कि उपरोक्त तथ्य की समझ तथा ग्रह और उपग्रहों की पृथ्वी से सही दूरियों के आधार पर ही आर्यभट्ट (499 ई.) नामक भारतीय खगोलज्ञ इस महत्वपूर्ण नतीजे पर पहुंचे थे कि पृथ्वी भी अन्य सौर ग्रहों की तरह आकाश में लटका हुआ एक ग्रह है, और यह सूर्य का चक्कर भी लगाती है. जो उस समय की एक क्रांतिकारी खोज थी.

प्रश्न 5. यह प्रश्न भौतिक शास्त्र के पूर्ण-आन्तरिक परावर्तन के नियम पर आधारित है. ध्वनि सीधी रेखा में चलती है और पृथ्वी की सतह गोलीय है. यदि ध्वनि की तरंगे पानी की ऊपरी सतह से क्रांतिक कोण से अधिक मान के आपतन कोण बनाती हुई दिशा से टकराती है, तो ये तरंगे पानी में ही पूर्णरूप से परावर्तित हो जाएंगी. पानी का घनत्व हवा से बहुत अधिक है, पानी में ध्वनि का वेग 1500 मी. प्रति सेकंड के आस-पास होता है, जबकि वायु में ध्वनि की गति लगभग 300 मी. प्रतिसेकंड है अतः क्रांतिक कोण का मान (300/1500 रेडियन या लगभग) 11^0 के आसपास होता है. इससे अधिक कोण बनानेवाली सभी ध्वनियां, पानी में ही पूर्णतः परावर्तित होती रहेगी और इसके कारण अन्य व्हेल इन्हें प्रथम व्हेल से सीधी रेखा में न रहते हुए भी आसानी से सुन सकेंगी. याद रहे, लंबी दूरी पर कोण का मान स्वाभाविक रूप से 11^0 से अधिक ही रहता है, अतः ध्वनि की पर्याप्त तीव्रता पानी में लंबी दूरीयों तक बनी रहेगी. इसके साथ ही पानी की प्रत्यास्थता भी ध्वनि की तीव्रता को लंबी दूरी तक बनाए रखने में सहायता करती है. **- सं.मं.**

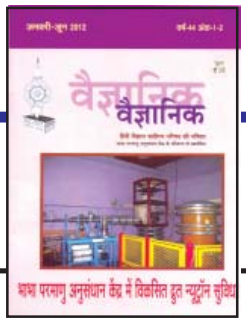

म नो ग त

ज्ञानवर्द्धक व उपयोगी 'वैज्ञानिक'

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका 'वैज्ञानिक' प्राप्त हुई, और प्राप्त होते ही पत्रिका पढ़ गया. पत्रिका में प्रकाशित 'जलीय पर्यावरण में भारी धात्विक तत्व लेड का खतरनाक स्तर', 'नाभिकीय ऊर्जा की अपरिहार्यता', 'शैवालों से जैव-ईंधन', 'वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा संभावित दुष्प्रभाव : एक आकलन', 'मरु क्षेत्र की महत्वपूर्ण औषधीय वनस्पतियां', 'सेहत के लिए वरदान अदरक' तथा 'क्यों आता है बुढ़ापा?' आदि लेख/टिप्पणियां अच्छी हैं. पत्रिका में 'भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र से विज्ञान समाचार' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित विज्ञान समाचार ज्ञानवर्धक और उपयोगी हैं तथा बुद्धि कौशल्य (1) एवं बुद्धि कौशल्य (2) के सभी प्रश्न सामान्य लोगों की बुद्धि को तेज करने में मदद करते हैं. पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की कामनाओं सहित. धन्यवाद के साथ.

*- **एच.सी.तिवारी,** सहायक निदेशक (राजभाषा) विरल पदार्थ परियोजना, भापअ केंद्र मैसुर*

वर्तनी की अशुद्धियों पर ध्यान दें

एक सुखद संयोगवश 'वैज्ञानिक' पत्रिका (अप्रैल-दिसंबर 2011, वर्ष-43 अंक-2-4) देखने को मिली. इसके 'मधुमेह : कारण और उपचार', 'सेहत के लिए वरदान हे शहद', 'वैज्ञानिकों के जीवन से' आदि लेख पढ़कर प्रसन्नता हुई. इसके कवर पृष्ठ 2 पर 'रचनाकारों से विशेष निवेदन' भाषाशुद्धि के लिए प्रशंसनीय है. फिर भी इसी पृष्ठ पर क्रमांक 11) में बाजपेई की जगह बाजपेयी होना चाहिए. इसी प्रकार कवर पृष्ठ 3 पर रूचकर तथा रूचिकर की जगह रुचिकर और वरियता की जगह वरीयता होना चाहिए. संपादकीय की पंक्ति चार में 'जीवन के लिये' में लिए, पृष्ठ 66 पर सूनामी की जगह सुनामी, पृष्ठ 81 पर 'माइकल फ़ैराडे' के अंतिम पैरे की प्रथम पंक्ति में 'पानी पानी' की जगह 'पानी-पानी' पृष्ठ 82 पर, 'प्रो.ए.सी.बनर्जी' में नीचे से ऊपर चौथी पंक्ति में 'रुप' की जगह रूप शब्द होना चाहिए.

मैं एक हिन्दी-साहित्यकार हूँ और शुद्ध हिन्दी लिखने का प्रयत्न करता हूँ, इसलिए उपर्युक्त थोड़ा-सा विवेचन सूचनार्थ प्रस्तुत किया है, वैसे पत्रिका बहुत अच्छी है. - **मोहन उपाध्याय,** 26/117, क्रिश्चियनगंज, विकासपुरी, अजमेर-305001

☐ आपके विवेचन एवं सुझाओं के लिए धन्यवाद. आगे भी आप पत्रिका देखते/पढ़ते रहें, हम प्रयत्नशील रहेंगे कि भविष्य में इस प्रकार की अशुद्धियां न हो. साथ ही आशा करते है कि हमें आगे भी आपका रचनात्मक सहयोग मिलता रहेगा. -सं.मं.

सराहनीय प्रयास

वैज्ञानिक अंक जन-जून 2012 प्राप्त हुआ, धन्यवाद! मैं संपादक के प्रयास, परिश्रम और कर्त्तव्यनिष्ठा की हार्दिक प्रशंसा करना चाहूंगी. क्योंकि, इस अंक में 'वैश्विक जलवायु परिवर्तन' पर एक उत्कृष्ठ लेख पढ़ने को मिला. धरती की सुंदरता उसके स्वास्थ्य एवं स्वच्छ पर्यावरण से होती है. लेकिन पृथ्वी की सूरत दिन-प्रतिदिन बदसूरत होती जा रही है. पृथ्वी पर मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की आबादी के बीच संतुलन की खाई गहरी हो रही है. जिससे पृथ्वी का भौतिक एवं पर्यावरणीय स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है. हम अपनी सुख-सुविधा के लिए उन्हीं प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट कर रहे हैं जो प्रकृति द्वारा एक व्यवस्था के रूप में विरासत से हमें मिले थे. प्राकृतिक आपदाएं, बाढ़, सूखा, भूकंप आदि इसके प्रमाण हैं. आज संपूर्ण विश्व के समक्ष वैश्विक ऊष्णता, ग्लेशियरों के सूखने, ओजोन परत में छिद्र, प्रदूषण इत्यादि की गंभीर पर्यावरणीय समस्याएं खड़ी हैं. जिनका शीघ्र समाधान पृथ्वी के अस्तित्व के लिए ढूंढ़ना होगा. ऐसा लगता है कि

खाना-पीना-सांस लेना दूभर हुआ संसार में,
पूरा विश्व अब भी लगा है प्रकृति पर अत्याचार में.
हम प्रकृति के हैं विनाशक, हमीं से उद्धार होगा,
इस धरा पर फिर से एक दिन स्वच्छ वातावरण निर्माण होगा.

आपकी पत्रिका उत्कृष्ट एवं खोज पूर्ण शोध विज्ञान लेखो, बुद्धि कौशल्य द्वारा वैज्ञानिकों, छात्रों और पाठकों को विज्ञान के द्वार पर ला खड़ा करती है. अगले अंकों की प्रतीक्षा है. हार्दिक शुभकामना सहित,

*- **डॉ.हेमलता पन्त,** वैज्ञानिक, एस.बी.एस.आर.डी,. इलाहाबाद-211 019*

आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय
आधुनिक रसायन शास्त्र के भारतीय पुरोधा

भारत में आधुनिक रसायन विज्ञान की जड़े जमाने और सुपोषित करने वाले प्रमुख वैज्ञानिकों में आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र (प्र.च.) राय का नाम सर्वाधिक आदरणीय मनस्वियों में से एक है. उनका जन्म 2 अगस्त 1861 में खुलना (अब बांग्लादेश) में हुआ. स्मरण रहे, उस समय भारत की प्रभुसत्ता ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इंडिया कंपनी से सीधे अपने हाथों में ले ली थी. आचार्य प्र.च.राय की शिक्षा ईश्वरचंद्र विद्यासागर (1820-1891) द्वारा स्थापित मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट में हुई, जहां उनको रसायन शास्त्र पढ़ने की रूचि जाग्रत हुई. एक मेधावी छात्र होने के कारण उन्हें गिलक्रिस्ट छात्रवृत्ति (Scholarship) के लिए चुन लिया गया. छात्रवृत्ति से मिले धन की सहायता से प्र.च.राय एडिनबरा (स्कॉटलैंड, यू.के.) पहुंचे और 1887 में डी.एससी. (D.Sc.) की उपाधि प्राप्त की. उनके डी.एससी. शोध प्रबंध का विषय था, 'कापर (तांबा) व मेगनीशियम वर्ग के कांजूगेट सल्फेट'.

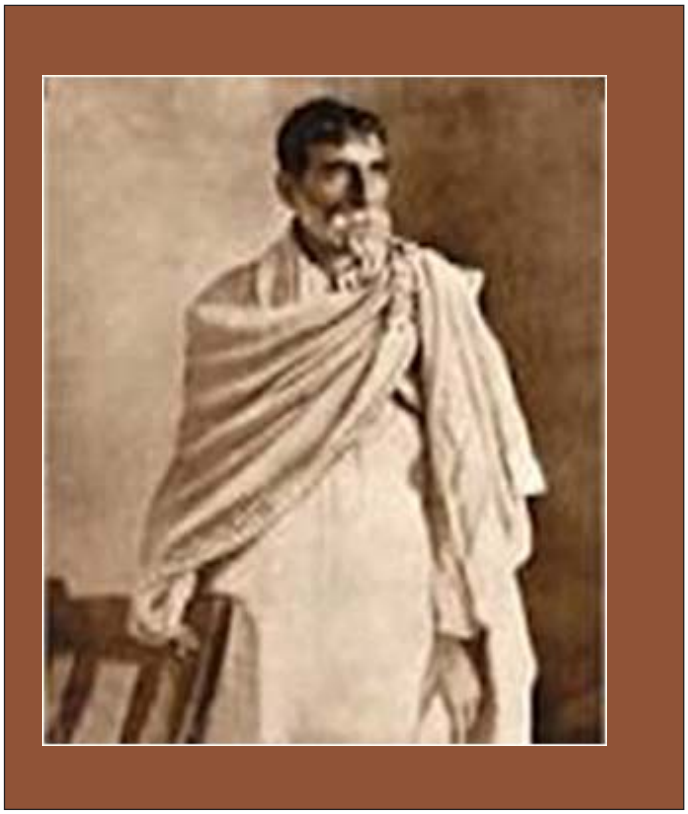

भारत लौटकर उन्होंने प्रेसीडेंसी कालेज, कोलकाता (तब कलकत्ता) में व्याख्याता (रसायन विज्ञान) का पद संभाला और बाद में इसी महाविद्यालय में रसायन विज्ञान विभाग के अध्यक्ष का कार्य भी तल्लीनता से करते रहे. कोलकाता विश्व-विद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी के आग्रह करने पर वे विश्वविद्यालय के विज्ञान और तकनीकि (प्रोद्योगिकी) महाविद्यालय के पालित प्रोफेसर नियुक्त किये गये, और 1916 से 1936 तक रसायन विज्ञान पढ़ाने के साथ-साथ शोध कार्य में भी लगे रहे. उनका विज्ञान और तकनीकि से लगाव यह देखकर लगाया जा सकता है कि वे महाविद्यालय के रसायन विभाग में ही एक कक्ष में रहते थे, जो अब एक छोटे से संग्रहालय के रूप में परिवर्तित हो चुका है. प्राचीन भारतीय विज्ञान को लेकर उन्होंने सन् 1902 में 'हिन्दू रसायन का इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा. उन्होंने लगभग 101 शोध पत्र प्रकाशित किए (स्मरण रहे, तब शोध पत्र का प्रकाशन एक चुनौती होता था).

आचार्य प्र.च.राय एक उत्कृष्ट और मेधावी वैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि एक सहृदय महा-मानव भी थे. अनेक विद्यार्थियों की महाविद्यालय में पढ़ने की फीस कई बार उन्होंने अपनी जेब से चुकायी. आचार्य प्र.च.राय एक सच्चे और कर्मठ देशभक्त थे. देश में उपस्थित कच्चे पदार्थ (Raw Materials) बाहर न जाये, इसके लिये उन्होंने बंगाल केमिकल्स एवं फार्माच्युटिकल वर्कस् (Bengal Chemicals and

आचार्य प्रफुल्लचंद्र राय द्वारा स्थापित मानिकतला (कोलकाता) स्थित वर्तमान बंगाल केमिकल एवं फार्माच्यूटिकल लिमिटेड कंपनी के मुख्य द्वारा का एक दृश्य.

Pharmaceutical Works) की स्थापना की, जिसकी शुरुआत 1893 में उनकी निजी बचत के धन से हुई. स्मरण रहे, 1902 में यही संस्था एक लिमिटेड कंपनी बनी, जो तत्कालीन ब्रिटिश भारत की इस क्षेत्र में काम करने वाली पहली रसायनिक पदार्थ बनाने वाली कंपनी थी. बाद में इसी कंपनी की तीन और शाखाएं पनिहटी (पश्चिम बंगाल), मुंबई और कानपुर में प्रारंभ हुई. वर्तमान में यह कंपनी भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीयकृत की जा चुकी है और अब बंगाल केमिकल एवं फार्माच्यूटिकल लिमिटेड के नाम से तीन डिवीजनों में विस्तारित होकर कार्य कर रही हैं. डॉ.महेन्द्रलाल सरकार (1833-1904) द्वारा स्थापित एवं चन्द्रशेखर वेंकटरमन, डा. जगदीश चन्द्र बोस इत्यादि, अन्यान्य महान वैज्ञानिकों द्वारा पल्लवित इंडियन असोसिएशन फॉर कल्टीवेशन ऑफ सायंस (Indian Association for Cultivation of Science) संस्थान में डा. जगदीश चन्द्र बोस के साथ मिलकर प्रो.प्र.च.राय पढ़ाने का कार्य भी करते थे. उन्होंने डा.मेघनाथ साहा आदि वैज्ञानिकों के साथ मिलकर भारतीय विज्ञान समाचार संघ (Indian science news association) बनाया और विज्ञान एवं संस्कृति (science and culture) नाम की पत्रिका का 1935 से प्रकाशन भी आरंभ किया. सन् 1944 तक आचार्य प्र.च.राय स्वयं इस संस्था के अध्यक्ष रहे और यह पत्रिका अब भी प्रकाशित हो रही है.

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय की 151 वीं जन्म तिथि पर उनके द्वारा किये गये महान कार्यों का स्मरण कर भारतीय वैज्ञानिक जगत गौरव का अनुभव करता है. वैज्ञानिक पत्रिका एवं हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद इस महामानव, महान वैज्ञानिक और देशभक्त शिक्षक को इस अवसर पर हम श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं.

प्रस्तुति - डॉ.जगदीश चंद्र व्यास

सन् 2012 गणित वर्ष

(डॉ. श्रीनिवास रामानुजन् की 125 वीं जन्म तिथि पर)

डा. श्रीनिवास रामानुजन् का जन्म इरोड, तमिलनाडु (भारत) के एक अति निर्धन परिवार में हुआ था. अपनी विलक्षण गणितीय प्रतिभा के कारण डा. श्रीनिवास रामानुजन् विश्व-विख्यात गणितज्ञों में से एक माने जाते है. गणित के प्रति अगाध प्रेम के कारण रामानुजन की अन्य विषयों में रूचि न के बराबर थी. यहां तक की इसी कारण से उनको कालेज की छात्रवृत्ति से भी हाथ धोना पड़ा. गणित विषय में अप्रत्याशित सफलताओं को प्राप्त करने के बावजूद कला इत्यादि अन्य विषयों में वे असफल रहे और दो बार के प्रयत्नों के बाद भी उन्हें तत्कालीन बी.ए. (स्नातक) की डिग्री न मिल पायी. लेकिन, किसी तरह चैन्नई (तब मद्रास) में उन्हें लिपिक की नौकरी मिल गयी, और साथ ही साथ गणित में उन्होंने स्वपठन और अभ्यास जारी रखा. सन् 1911 में उन्होंने अपने कुछ परिणामों को प्रकाशित करवाया तथा 1913 में इन परिणामों को कैंब्रिज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जी.एच. हार्डी के पास भेजा. प्रारंभ में हार्डी को इन परिणामों में कुछ खास नजर नहीं आया, किंतु गहराई से अध्ययन करने पर हार्डी ने उनके कार्य की सराहना की. इधर भाग्य से मद्रास विश्वविद्यालय ने इन्हीं परिणामों के आधार पर उन्हें छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया और इस छात्रवृत्ति की सहायता से रामानुजन् 1914 में कैंब्रिज पहुंचे. वहां हार्डी से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ और तब हार्डी ने रामानुजन् के गणितीय ज्ञान की गहराई को समझा. एक बार तो प्रो. हार्डी ने यहां तक कहा कि यदि रामानुजन् के साथ मेरी तुलना की जाय तो मैं अपने आपको सिर्फ 25 अंक दूंगा, जबकि रामानुजन् का स्तर 100 पर होगा.

एक बार ऐसे ही किसी अन्य व्यक्ति ने हार्डी से अंक 1729 के बारे में पूछा, तो हार्डी ने कहा कि यह एक साधारण सा अंक है. किन्तु रामानुजन् ने तपाक से कहा कि यह ऐसा विशिष्ठ अंक है जो दो अलग-अलग पूर्ण संख्याओं के घनों के योग से प्राप्त होने वाले अंकों की श्रेणी में सबसे छोटा अंक है. ये संख्याए 1,12 तथा 9,10 है, अर्थात्

$$1^3 + 12^3 = 9^3 + 10^3 = 1729.$$

गणित में अब 1729 को 'रामानुजन् हार्डी अंक' के नाम से जाना जाता है. रामानुजन् के अध्ययन का स्तर इतना गंभीर था कि 1916 में, जो शोध प्रबंध उन्होंने बी.ए. की डिग्री (कैंब्रिज से) प्राप्त करने के लिए लिखा था, उसी प्रबंध पर उनको पीएच.डी.(Ph.D.) प्रदान की गई. डा. रामानुजन् पहले भारतीय थे, जिन्हें 1918 में लंदन की रॉयल सोसाइटी का सदस्य (फेलो ऑफ रॉयल सोसायटी, लंदन) चुन लिया गया. डा.रामानुजन् के कार्यों का विस्तार इतना व्यापक है, कि सन् 2002 के बाद उनके कुछ प्रमेयों का कम्प्यूटर प्रोग्रामों की भाषा विस्तार में अनुप्रयोग हो रहा है. यहां इस महान विभूति के 125 वें जन्म वर्ष पर, (संभवतः उनके द्वारा बनायी गयी) एक 4X4 आंकिक वर्ग संख्यायुति से आपका परिचय कराते हैं, जो इस प्रकार है.

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	86	23	11

आप देख सकते है, इस साधारणसी दिखनेवाली सारणी में अनेक खुबियां छिपि हैं. जैसे हर आड़ी या खड़ी पंक्ति के सभी अंकों का योग 139 है. सभी कोनों के वर्ग की संख्याओं का योग भी 139 है. इसके अलावा 2 X 2 के जो अन्य चार वर्ग बनते है, उनके सब अंकों का योग 139 है. यही नहीं, ऊपरी और नीचे की पंक्तियों के मध्य के अंकों के योग भी 139 ही है. इसी प्रकार बीच के 2 X 2 वर्ग की संख्याएं भी 139 के बराबर ही है. इस अदभुत आंकिक वर्ग संख्यायुति की अनेक विशेषताओं को ठीक से दर्शाने के लिए हमनें इन वर्गों को गहरा भरकर चिन्हित किया है. इन रंगों से भरे सभी वर्गों में ज्यामितीय सममिति (Symmetry) स्पष्ट-रूप से दिखाई देती है. यहां आप जांच करके देख सकते है कि नीचे दी गई प्रत्येक आकृति में गहरे रंगीन किये गये वर्गों के सभी अंकों का योग 139 ही आता है. स्वयं 139 संख्या को $3^0 3^1 3^2$ भी लिखा जा सकता है.

सबसे विशिष्ट बात इन वर्गों में सबसे ऊपर की पंक्ति की संख्याएं है जो डा.रामानुजन् की जन्म तिथि 22 दिसंबर (12), 1887 को भी दर्शाती है (22,12,18-87).

इस अदभुत व्यक्तित्व के स्मरणार्थ (125वें जन्मवर्ष पर) भारत सरकार ने वर्ष 2012 को गणितवर्ष घोषित किया है.

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	86	23	11

22	12	18	87
88	**17**	**9**	**25**
10	24	89	16
19	86	23	11

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	86	23	11

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	**17**	**9**	**25**
10	**24**	**89**	**16**
19	**86**	**23**	**11**

22	**12**	18	87
88	**17**	9	25
10	**24**	89	16
19	**86**	23	11

22	12	**18**	87
88	17	**9**	25
10	24	**89**	16
19	86	**23**	11

22	12	18	**87**
88	17	9	**25**
10	24	89	**16**
19	86	23	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	86	23	11

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	86	23	11

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	24	89	16
19	**86**	**23**	**11**

22	12	18	87
88	17	9	25
10	**24**	**89**	**16**
19	**86**	**23**	**11**

-प्रस्तोता : जगदीश चंद्र व्यास

रचनाएं आमंत्रित

'वैज्ञानिक' हेतु लेख भेजते समय कृपया निम्न बातें ध्यान में रखें :

- लेख का विषय नया हो जो पाठकों में अधिक ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा बढ़ाये
- लेख मौलिक, अप्रकाशित तथा पठनीय हो, साथ ही साथ भाषा सरल, बोधगम्य और रूचकर हो।
- नव लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए युवा एवं नव लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा तथा उन्हें वरीयता प्रदान की जायेगी।
- कृपया अनुवादित लेख न भेजें।
- लेख टंकित किया हुआ अथवा स्पष्ट हस्तलिपि में दोनों ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ कर कागज के एक ओर ही लिखें।
- विषय वस्तु समझने के लिए यदि चित्र आवश्यक हों तो उन्हें अलग से सफेद कागज पर काली रोशनाई से खींच कर लेख के अंत में संलग्न कर दें।
- अस्वीकृत रचनाएं डाक-टिकट लगा लिफाफा संलग्न होने पर ही वापस की जायेंगी।
- पत्रिका को अधिकाधिक रूचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए आप सभी सुधी पाठकों के सुझावों का स्वागत है।
- पत्रिका में वैज्ञानिक विषयों पर लिखी गई पुस्तकों की समीक्षा हेतु पुस्तक की कम से कम एक प्रति अवश्य भेजी जानी चाहिये।

"रचनाएं भेजने का पता"

श्री जयप्रकाश त्रिपाठी,
पीप्री.,एफ.आर.डी.(F.R.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail : jtripath@barc.gov.in

डॉ.जगदीश चंद्र व्यास,
टी.पी.डी.(T.P.D.),
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 085
E-mail :j.c.vyas@gmail.com

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभिक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को' (ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने', 'मैंने', 'उनका', 'हमसे

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये - **उदाहरण** - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें।

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये','लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि।

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए।

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह। 'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये।

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये । 'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग) । उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें।

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि।

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा, ङ.('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं।

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि।

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है। जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे।

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं। जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी,उत्तरदायी आदि। इन्हें अस्थाई, बाजपेई , उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक।

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये। जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि।

13) संख्यां को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - **1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10**

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, भा.प.अ.केंद्र, ट्रांबे, मुंबई-85 के लिए **डॉ.जगदीश चंद्र व्यास**, द्वारा संपादित एवं **श्री विपुल सेन** द्वारा निर्भय पथिक प्रकाशन (फोन : 24153784, 32201260) में मुद्रित व प्रकाशित ।